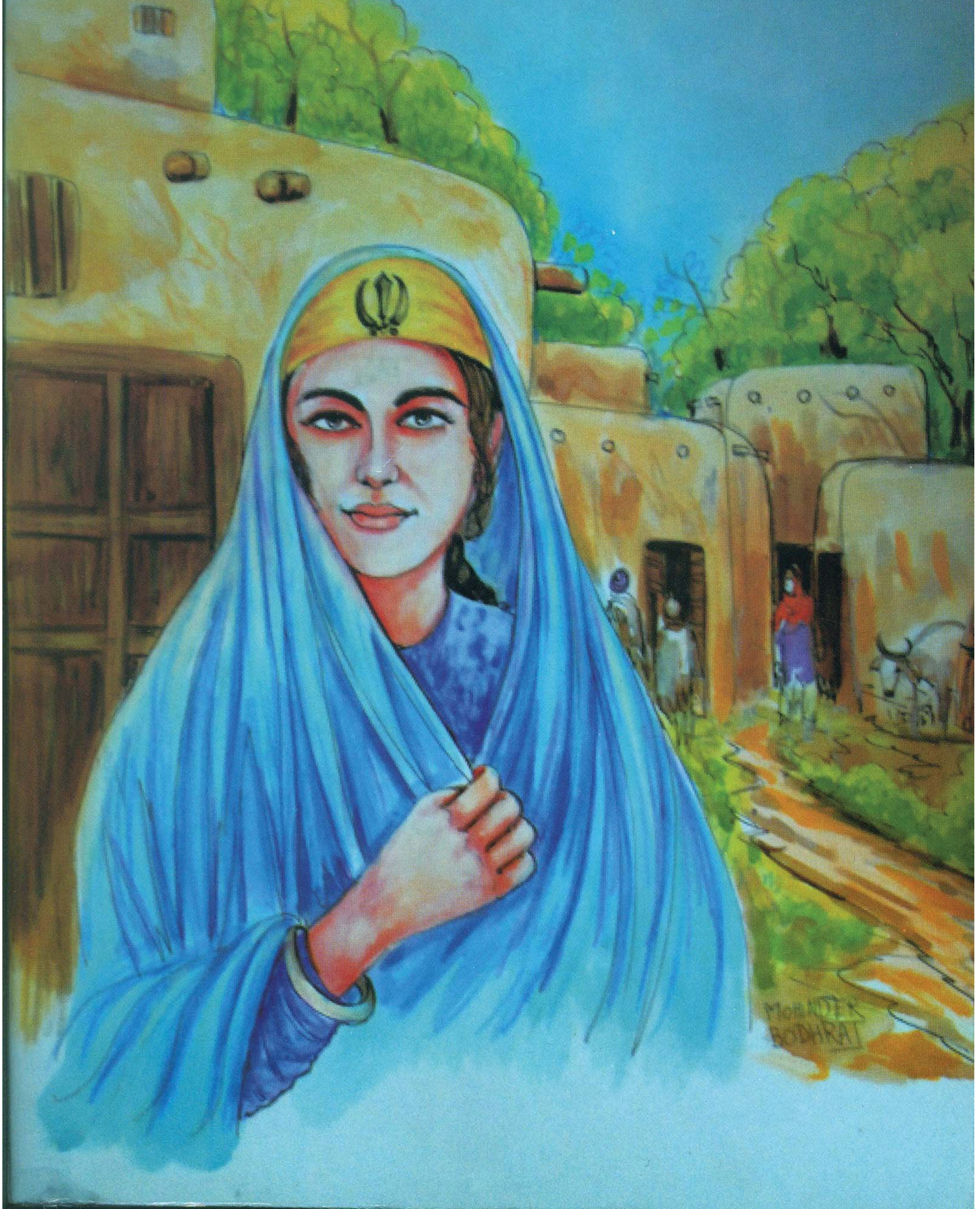
सतवंत कौर

भाई साहिब भाई वीर सिंह



एक ओंकार श्री वाहेगुरू जी की फतह

कहु नानक गुरि बंधन काटे।
बिछुरत आनि मिलाइआ ।।

सतवंत कौर की जीवन कथा

लेखक

भाई साहब भाई वीर सिंह

हिन्दी रुपान्तर

डॉ॰ महीप सिंह

भाई वीर सिंह साहित्य सदन

नयी दिल्ली—1100 01

Satwant Kaur

Bhai Vir Singh

Translated by Dr. Mahip Singh

ISBN : 978-93-80854-89-2

प्रथम संस्करण 1984

द्वितीय संस्करण, नवंबर 2012

प्रकाशक :

भाई वीर सिंह साहित्य सदन

भाई वीर सिंह मार्ग, नयी दिल्ली–110 001

Printer :

Print Media

1331, Chowk Sangatrashan,

Paharganj, New Delhi - 110055

मूल्य : 84/-

आमुख

आधुनिक पंजाबी साहित्य के जनक सन्त कवि भाई साहब डॉ॰ वीर सिंह जी द्वारा रचित 'सतवंत कौर' नामक रचना को हिन्दी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हमें अपार प्रसन्नता हो रही है। इस रचना में एक ऐसी सिख कन्या की कथा का वर्णन किया गया है जिसने असह्य कष्ट सहते हुए अत्यन्त वीरता, बुद्धिमत्ता और धैर्य के साथ अपने धर्म का पालन किया।

भाई साहब की इस महान रचना ने वर्षों तक असंख्य लोगों का मार्ग–दर्शन किया है और उन्हें सच्चाई और धर्म के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी है। हमारा विश्वास है कि इस कृति का हिन्दी अनुवाद उन सभी को प्रेरणा, उत्साह और सद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देगा जो इसका पारायण करेंगे।

मार्च 1984

भाई वीर सिंह साहित्य सदन
नयी दिल्ली

सतवंत कौर

: १ :

बलु छुटकिउ बंधन परे कछू ऩ होत उपाय।
कहु नानक अब ओट हरि गजि ज्यों होहु, सहाय ।।

हे अकाल पुरूष ? मैं क्या करूं ? इतने कष्टों के मुंह में क्यों आ गयी। तू क्षमाशील है, क्षमा कर ? क्षमा कर ? मैं क्या करूं, हाय ? मैं क्या करूं, क्या करूं मैं ? श्री वाहेगुरू! यह क्या तूफान उठा है? कुछ भी समझ नहीं आ रहा है। मैं जा रही हूं, करतार, मैं जा रही हूं, उफ़...हाय, कलगीवाले! ...कृपा...।

हाय! मैं क्या करूं, क्या करूं? अब तो प्राण निकलने वाले हैं।

मैं किन दुखों मे घिर गयी। मैंने जो किया था, सब सामने आ रहा है। हे दया ! तुम कितनी क्रूर हो चुकी हो ! मैंने दया ही की थी कि मैं फंस गई। अब कोई रास्ता नहीं है। हे प्राण पखेरू तू ही पिंजरे को छोड़ निकल। उफ़! फिर डूबने लगी, मैं चली।...(अचेत हो गयी)

(होश संभालकर) उफ़...हे करतार...जल्द मुक्त करो, हाय! मैं कहां तड़प रही हूं? मेरे घर इस समय जगमग हो रही है, पिताजी कथा कर रहे हैं, प्यारी मां, मेरी आखों के तारे मेरे भाई, प्राणों से प्यारी मेरी बहनें कथा सुन रही हैं। अब सभी अरदास (प्रार्थना) कर रहे हैं, मेरे देवता समान भाई के गालों पर मोती जैसे आंसू बह रहे हैं, कितना कोमल हृदय है, गुरू का कितना प्यारा है। उसे सतगुरू प्राणों के समान प्यारे हैं। वाह वाह!! अब सभी शब्द–कीर्तन में तल्लीन हो गये हैं। ओह! आवाज आ रही है, ध्यान से सुनूं।

'खेत जु मांडिउ सूरमा अब जूझन को दाउ।'

कितनी प्यारी धुन है ! हैं ! मैं तो सो गयी थी, नहीं, अब तो मैं बावली सी हो गयी हूं, मैं क्या बड़बड़ा रही हूं, क्या पगली–सी बक रही हूं? कोई दया नहीं दिखाता। कन्या पर भी क्या कोई अत्याचार करता है? हाय! मैंने तो तुम्हारी रक्षा की और तुमने ही मुझे फंसा

दिया। अच्छा...गुरू भला करे। धन्य गुरू मैं कलगीवाले के सहारे सब दुःखों को सह लूंगी। मैं कितने दुःख झेल चुकी हूं भोगते हुए वक्त तो बीत गए, किन्तु याद पाते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कैसे छल से मुझे बन्दी बनाया गया। हाय...। फिर डूबने लगी हूं।

(हड़बड़ाकर आखें खोलकर) हे ईश्वर ! किस तरह मेरी मुश्कें कस दी गयी और गौओं की तरह मुझे कैदियों के झुंड में झोंक दिया गया। कहां खन्ना कहां काबुल? अत्याचारियों के बन्धन में पड़ मैंने इतनी लम्बी यात्रा किस प्रकार पूरी की? किन्तु देश–बहनों की संगति में दुःख बीत गये। इतना तो था ही कि दो मिलकर रो लेती थीं, रोटी बना लेती थीं, पर अब तो साथ में रोने में भी कोई साथी नहीं। पशु समान सब बिक गयीं। पिताजी कहा करते थे कि मानव–पुत्र अमुल्य होता है, परन्तु यहां वह गधे से भी सस्ता बिक रहा है। अच्छा ! सब कुछ अकाल पुरूष की इच्छानुसार ही बीत गया। अब इस नयी विपदा का सामना कैसे करूं? मैं परसों से भूखी हूं। हाय, तीन दिनों से कुछ खाया–पिया नहीं। मैं भोजन की थाली की ओर कैसे टुकर–टुकर देख रही हूं। चार बोटियां और आधी रोटी पड़ी है। भूख बुरी तरह बेहाल किये है। ऐसे लगता है पेट में छुरियां चल रही हों। मन कहता है–खा ले। खा लूं, क्या सचमुच खा लूं? हाय कैसे खा लूं? यह हलाल मांस है। पता नहीं किस का मांस है? मैं सिख की बेटी हूं–मैं सिंहणी हूं। मैं कैसे खा लूं? रे मन ! क्या खा लूं? प्राण बेशक जाएं पर धर्म न जाए। अब क्या हो? पता नहीं प्राण बचाने के लिए दूषित अन्न खा लिया जाता है या नहीं। अगर मैं जानती कि ऐसा समय भी आयेगा तो मैंने ये सभी बातें पहले से पूछ ली होतीं। पर किसे खबर थी यह सब होगा? मैं क्या करूं? खाऊं या न खाऊं? फिर डूबने लगी हूं–हाय मैं चली...(हड़बड़ाकर आंखें खोलते हुए) मुझे कुछ नहीं सूझता। मुझे धर्म पालन करना है, करना ही है। अगर खा लूं तो पता नहीं धर्म रहेगा या नहीं। यदि न खाऊं तो मेरा विश्वास है कि धर्म नहीं जायेगा। रे मन ! इन मांस की बोटियों को फेंक दें। जो हो सो हो। हे 'कुअन्न' जा परे हट मेरी आंखों के सामने से (बोटियों को दूर फेंककर) चढ़ती कला वाले इस शेर बच्ची को शेर बनाओ, पर हाय मैं तो डूबने लगी हूं...मैं चली, मैं चली (कहती कहती बेहोश होकर गिर पड़ी।

: २ :

एक सच्चे सिख की बेटी, विदेश में, भूख से व्याकुल, घर से बाहर बेहोश पड़ी है। घर के भीतर लोग इन्तज़ार में हैं कि अभी भोजन करके आ रही होगी। पर जब देर हो गयी तो नौकरों का जमादार बाहर आया और यह सोचकर कि वह जान बूझकर पड़ी हुई है, उसे मारने लग गया। भूख से बेहाल हुई वह चीखने लगी। थर–थर कांपती, डगमगाती, आंखों के सामने अंधेरा हो जाने से ठोकरें खाती, अन्दर गयी। रसोई घर के सारे जूठे बर्तन उसके सामने मांजने के लिए रख दिये गये। किन्तु वह फिर डूबने लगी।

उस समय मालिक का नन्हा बच्चा रसोईघर में आ पहुंचा और नौकरों से लाड़ से बतियाने लगा। उधर जब नौकर ने सतवंत कौर को बेहोश देखा तो फिर मारने लगा। किन्तु नन्हें बच्चे को उस पर दया आ गई। वह कांप उठा और लड़की को नौकर से छुड़ाकर दूसरे कमरे मे ले गया। एक गुच्छा अंगूरों का लाकर उसके आगे रख दिया और बोला : 'अच्छी बहन, इसे खा लो और रोओ नहीं'। इस तरह लाड़–प्यार से उसे अंगूर खिलाकर अपनी मां के पास गया और उस लड़की के रोने और नौकर के मारने का पूरा वृतान्त कह सुनाया। बालकों की वाणी में अद्‌भुद प्रभाव होता है। बच्चे की बातें सुनकर मां के हृदय में भी कुछ दया आ गयी और उसने लड़की को अपने पास बुला लिया और नौकरों को हुक्म दिया कि अब वह उनके बीच नहीं रहेगी। मेरे कमरे में सोया करेगी और मेरे पास मेरी निजी सेवा में रहेगी।

सतवंत कौर को अंगूर खाकर कुछ होश आ गया था। परन्तु फिर भी अत्यधिक थकान एवं टूटन के कारण वहीं बैठे–बैठे ही उसे नींद आ गयी। रात बीती, दिन चढ़ा, सभी उठे, सतवंत भी उठी। बच्चा फिर अंगूर लेकर आ गया और लड़की को देखकर बोला–'खाओ' मां ने बच्चे का यह रूख देखकर बच्चे को खेलाने वाली का काम उसे सौंप दिया। गृहिणी समझ गयी कि यह हमारे घर का मांस नहीं खाती। वह उसे खाने के लिए फल दे देती और उसे स्वंय रोटी बना लेने की छूट भी दे दी। पड़ोस में एक 'सहजधारी' का घर था। वहां

आने–जाने और वहां से खा–पी लेने की छूट भी उसे मिल गयी। सो, उस बालक को खेलाने में सतवंत कौर नौकरों के अत्याचार से तो बच गयी परन्तु उनकी भाषा न समझ पाने के कारण उसे गृहिणी और बच्चे के गुस्से की आशंका हर समय बनी रहती। शेर की बेटी, इतनी कठिन विपत्ति मे भी निराश नहीं हुई। ईश्वर ने उसे जिस स्थिति में डाल दिया था, उसी में स्वंय को ऊंचा, सुखी और उत्साही बनाने की चिन्ता में जुट गयी। पड़ोस के 'सहजधारी' परिवार के साथ उसने आत्मीय संबंध ज़ोड़ा और वहां की बोली भी सीखने लगी। थोड़े समय में ही उसे वहां की बोली समझ में आने लगी। इस कन्या की विनम्रता, मधुरता और शील स्वभाव ने दुखी गृहिणी के हृदय में भी उसके प्रति सहानुभूति बढ़ायी। धीरे–धीरे गृहिणी की कृपा दृष्टि बढ़ने लगी। इसका कारण यह था कि मालकिन मायके की ओर से अभावग्रस्त थी और दुनिया में पति के सिवाय कोई भी उसका सगा संबंधी नहीं था। पति बड़ा कुकर्मी था। वह कुकर्मों में हमेशा लिप्त रहता था। इसीलिए गृहिणी (फातिमा) बहुत दुःखी रहती थी। फातिमा कुछ स्वाभिमानी थी। दुःखों से उसका मन टूटा नहीं था। अपितु उन्होंने उसे एक दृढ़ता ही प्रदान कर रखी थी। पति के प्रेम में कमी होने के कारण ससुराल के अन्य सम्बन्धियों में भी उसे पूरा आदर नहीं मिलता था और नौकर–चाकर तथा गोलियां बान्दियां भी उसकी कम परवाह करती थी। बच्चा ही एकमात्र आंखों का तारा था, उसी से वह मन बहलाती थी। वही लाल संसार में उसकी खुशियों का एक–मात्र आधार था। आठों पहरों में जब कोई खुशी की घड़ी आती तो वह अपने लाड़ले के प्यार में विहवल हो जाती। सतवंत कौर के शील स्वभाव और प्यार भरे स्वाभाविक व्यवहार के परिणाम स्वरूप बालक का (जिसे प्यार से 'गनी' कहते थे) उसके साथ बहुत लगाव हो गया और इसी लगाव को देखते हुए फातिमा सतवंत की ओर अधिक झुक गयी। फातिमा की उदासी के समय सतवंत का न ऊबना, उसके चिड़चिड़े स्वभाव से दूर न हटना, ये अन्य कारण थे जिनसे कि वह सिख कन्या एक विधर्मी महिला को अच्छी लगने लगी थी।

: ३ :

फातिमा ने चिरकाल तक अपने पति की अनीतियों को सहन किया परन्तु एक दिन काबुल की पटरानी से मिल कर उसने काबुल के अमीर तक पति के बुरे कामों की खबर पहुंचा दी, अमीर ने उसे बुलाकर बुरी तरह फटकारा फटकार खाकर सीधा हो जाने के बजाय खान साहब इस बात की खोज में लग गये कि अमीर साहब तक इस खबर को पहुंचाने वाला कौन है? और आखिर उसे मालूम हो गया कि यह काम उसकी पत्नी का ही है।

यह समाचार पा एक दिन रात के समय नशे में चूर वह फातिमा के कमरे में पहुंचकर तलवार खींच ली। सौभाग्य से फातिमा जाग रही थी। पति के हाथ में तलवार देखते ही वह चीख पड़ी। उधर सतवंत कौर भी जाग गयी। उस दरिन्दे को पत्नी पर तलवार ताने हुए देखकर सिख कन्या में धर्म भावना जागृत हो गयी। उसने झटपट पिछली तरफ होकर खान की टांग को इस तरह छटका दिया कि वह चारों खाने चित्त जा पड़ा और उसके हाथ से तलवार छूट गयी। कन्या ने धराशायी खान को इस तरह दबाया कि वह दोबारा उठ न सके। इस हिम्मत को देखकर पठानिन को भी हौसला आ गया और उसने भी उसे दबा लिया। दोनों ने मिलकर उसकी मुश्कें कस दीं। कुछ देर बाद नशे में धुत वह बेहोश हो गया और वहीं खर्राटें भरने लगा, और रात बीतने लगी। परन्तु सुबह होने से पहले दोनों ने उसकी मुश्कें खोल दीं जिससे सुबह होने पर रात की बात उसे याद न आए। और सचमुच वही नशे की टूटन के बाद जागने पर उसे रात की बात याद नहीं आई। उसने और शराब पी और बाग की ओर चला गया। इधर सारा दिन खुशी से बीता। रात को खान घर पहुंचा तो बीवी को देखकर उसे फिर याद आया कि अमीर साहब को इसी ने खबर पहुंचाई थी। उसने फिर वार किया, परन्तु बहादुर सिंहणी और फातिमा आज पहले से ही तैयार थीं। हिम्मत और हौसले से काम लिया। सिंह कन्या की सहायता से पठानिन फिर बच गयी।

तीसरे दिन वह घर ही नहीं आया और फिर कई दिन तक नहीं आया। यों ऐयाशी में वह अपना और सरकारी रूपया बर्बाद

करता रहा। मालिक के कहने का भी असर न हुआ। शराब एक ऐसा विकार नहीं है जो लगने पर जल्दी छूट जाती है। यह ऐसी आकर्षक वस्तु है कि एक बार मुंह लग जाने पर इसकी लत छूटती नहीं। जो लोग इसके दीवाने हुए वे जान, माल, इज्जत, धर्म, लोक–परलोक, सब कुछ न्योछावर करके भी लौट न पाए।

यही हाल खान का भी हुआ। जब तक खूब दौलत रही, निर्वाह होता रहा और विरोधी भी खामोश रहे। निजी सम्पत्ति के खत्म हो जाने पर वह सरकारी खज़ाने पर भी हाथ डालने लगा। ऐसी स्थिति में क्या हो? धीरे–धीरे मित्र भी शत्रु बन गये और शत्रु बदला लेने का मौका देखकर वार करने लगे, यहां तक कि सरकार को गबन का पता भी चल गया। खानसाहब पकड़े गये और हवालात पहुंच गये। घर–बार जब्त हो गये पर फातिमा को (अमीर साहब से उसका दूर अथवा निकट का कोई संबंध होने के कारण) मकान मिला रहा तथा गुज़ारे के लिए कुछ रूपये मिलते रहे। शेष सब सम्पत्ति सरकारी खजाने में जमा हो गयी। एक खास हाकिम जांच के लिए नियुक्त हुआ। जांच–पड़ताल में कई कमियां पायी गयीं। जिस पर शत्रुओं ने भी बढ़ावा दिया, और हुक्म हो गया कि गबन के जुर्म में खान साहब को कत्ल किया जाए।

खान साहब को कत्ल किये जाने का हुक्म सुनते ही फातिमा के हाथों के तोते उड़ गये। पति के कुकर्मों से वह दुखी थी, परन्तु उसकी मृत्यु वह कभी नहीं चाहती थी। वह बड़े कड़े दिल के जाति वालों में से थी पर उसका हृदय कोमल था, और सतवंत की संगति ने उसे और कोमल कर दिया था। और यह शिक्षा दे दी थी :

'जे पिर बहु घर हंढणा सत रख नारे' (वा॰ भा॰ गु:)

सो, वह बेचारी यह सुनते ही चिन्ता के समुद्र में डूब गयी। कोई हमदर्द नहीं, कोई आत्मीय नहीं–वह किसे अपना दु:ख बताए? किस की सहायता ले? एक सिख लड़की है, वह भी परदेसी और गुलाम। पर डूबते को तिनके का सहारा। सो, इसी को अपनी सहेली और हमदर्द मान अपने मन की व्यथा कह सुनाई और रो रोकर पूछा कि

की खैर नहीं है? सतवंत ने दुःख बांटा और फिर सोच–सोचकर समझाया कि भावी अमिट है और जो होनहार है सो होकर रहेगा। उद्यम और यत्न जरूरी है। बड़ी रानी तक आपकी पहुंच है। उसे मिलो और बड़े–बूढ़ों का वास्ता दो। हो सकता है उसके दिल में दया आए और वह अमीर से कहकर क्षमा दिलवा दे। संभव है तीर निशाने पर बैठे और आपका पति मुक्त हो जाए। फातिमा को सुझाव पसन्द आया और उसने बेगम से मिलने का यत्न किया। दूसरे दिन ही उसके महल में गयी। बेगम ने आदर से उसे अपने पास बैठाया और प्यार से उसके दुख का कारण पूछा।

फातिमा ने सारा हाल सुनकर कहा–'खुदा रसूल के वास्ते अमीर साहब से सिफारिश करो कि वह मेरे घर वाले को जान बख्श दें। बेगम का दिल भर आया और उसने दिलासा देते हुए कहा कि–'फातिमा, तू उदास न हो। मैं पूरा यत्न करूंगी कि तेरा पति छोड़ दिया जाए। अल्ला पर भरोसा करो।' फातिमा घर लौट आई। अपनी सिख सखी को सारा हाल सुनाया। जब रात हुई तो नींद कहां? फातिमा विचारों में डूबी बावली सी बड़–बड़ाती, जागती–सोती और ऊंघती रही, परन्तु सतवंत कौर विचारों के ऐसे घोड़े दौड़ाती रही जैसे कोई सयाना व्यक्ति कठिनाइयों में पड़ जाने पर उपाय सोचता है। अन्ततः उसने यह निष्कर्ष निकाला कि बेगम के कथन का प्रभाव अमीर पर अवश्य होगा परन्तु यदि प्रभाव न पड़ा तो? इन विचारों में सतवंत इस क़दर डूबी कि मन में आशा–निराशा का द्वन्द्व मच गया। उस के विचार आशा को दृढ़ता प्रदान करने के उपाय सोचते और निराशा को हटाते, पर निराशा खत्म होती नहीं दिखती थी। इस प्रकार की सोचों में डूबी सतवंत कौर खुद ही बोल उठी–'हे निराशा, अगर तू इस तरह खत्म नहीं होती तो तू मेरे प्राणों पर अपना पैर टिका दे और उस के बदले मेरे प्रयत्नों के रास्ते में बाधा न बन, अदला बदली कर लें। यह कहते ही उसे महसूस हुआ कि उसे रास्ता मिल गया है। उसने मन ही मन निश्चय कर लिया कि जो कुछ सुबह उठकर उसे करना है–इसकी पूरी योजना मानो बन गई हो।

सुबह उठकर वह गृहिणी के पास गयी। उसे उठाया, कपड़े पहनवाये धीरज बंधाया और उसे यह समझा कर बेगम के पास भेजा कि यदि उसके पति की जान नहीं बख्शी जा सकती तो बेगम अमीर से इतनी आज्ञा ले दे कि वह अपने पति को मरने से पहले मिल सके। जैसे भी हो यह बात बेगम से मनवा ले। मुझे पूरा विश्वास है कि अमीर साहिब इस बात को मान लेंगे टूटे दिल से परन्तु कष्टों से पीड़ित प्रजा की उस दशा की भांति जो वर्षा के अंत तक यह आशा बांधे रखती है कि शायद अभी वर्षा हो जाए, फातिमा दिल को दिलासा देती हुई पालकी में बैठकर और अमीर के घर पहुंची। बेगम ने आदर से उसे बैठाया, कुशल क्षेम पूछी। फातिमा ने अदब से उत्तर दिया परन्तु मतलब की बात सामने आयी तो बेगम ने सिर पकड़ कर कहा—बीबी जितना जोर मुझमें था मैं सब लगाकर थक गयी हूं किन्तु अमीर साहब एक नहीं सुनते। कहते हैं कि तेरे पति का कत्ल होना जरूरी है, इसलिए कुछ नहीं किया जा सकता। जब फातिमा ने यह सुना तो उसके पैरों तले से जमीन खिसक गयी। थोड़ी—बहुत जो आशा थी वह भी टूट गयी। वह अचेत होने को थी कि समय का ध्यान करके वह सम्भल गयी और दूसरी विनती की। बेगम ने कहा कि इसके लिए वह अवश्य अमीर को मना लेगी। उसे तसल्ली हुई और वह बेगम से विदा लेकर घर लौट आयी और सतवंत कौर को सब हाल सुनाया। उस बहादुर लड़की के चेहरे का रंग नहीं बदला, वह वैसी की वैसी ही रही। उसने धैर्य से पूछा कि क्या आपने दूसरी विनती की थी? फातिमा बोली—"हां, बेगम ने कहा था कि अमीर के महल में आने पर उसे इस बात पर रजामन्द कर लेगी, और दोपहर तक संदेश भिजवा देगी। यह सुनकर सतवंत दूसरे कमरे में जाकर पाठ करने लगी। वह पाठ करने में इतनी एकाग्र हो गयी कि दोपहर के दो बज गये। तभी फातिमा ने उसे बताया कि अमीर ने उसे अकेले मिलने की आज्ञा दे दी है। उसने कहा कि चूंकि परसों उसका कत्ल हो जाना है इसलिए वह कल ही उसे मिल ले। बेगम ने यह भी कहलवा भेजा है कि जेल के अधिकारियों को यह आज्ञा दे दी गयी है कि वह कल कभी भी अपने पति से मिल सकती है।

सतवंत कौर ने कहा—बीबी! यह अच्छा ही हुआ है, अकाल—पुरूष भली करेंगे।

फातिमा ने कहा—अब क्या भली करेंगे? अब तो कोई उपाय नहीं रहा है, अब क्या होगा?

सतवंत कौर ने कहा—बीबी ! तुम कुछ न करो। मैं बेशक अनुचित रूप से कैद में पड़ी हूं, बेशक मुझे छल से फांसा गया है, परन्तु मैं सिंहणी हूं, और मैंने तुम्हारा नमक खाया है। आपने विपत्ति में मुझसे प्यार किया है। इसलिए मैं आपके लिए जीवन न्यौछावर करने में भी संकोच नहीं करूंगी। आप पूछिए कुछ नहीं, जैसा मैं कहूं वैसा करते जाइए। पालकी का इन्तज़ाम करें। जिससे कि परदे में वहां पहुंचा जा सके।

ऐसी ही बातें होती रहीं। दूसरे दिन सुबह होते ही पालकी कैदखाने पहुंची। पालकी कैदी की कोठरी में उतारी गयी। सिपाही और पालकी उठाने वाले सभी बाहर चले गये। कैदी को भी यह खबर थी कि जिस पत्नी को उसने सदा दुख दिये वह उससे मिलने आयी है। इस समय शराब तथा अन्य पदार्थों का नशा उतर चुका था, वह सूखकर कांटा हो चुका था, आंखों में गड्ढे पड़ गये थे, अब तो उसे यह भी समझ आ गया था कि वह बहुत बड़ा पापी है, और उसके कर्मों का फल देने के लिए उसके सिर पर तलवार लटक रही है।

: ४ :

एक तंग कोठरी में खान साहब हैं और पालकी पड़ी हुई है। पालकी में से एक सुन्दर जवान औरत निकली और निकलते ही कमरे के भीतर चली गयी। फिर चारों ओर फुर्ती से देखकर, तसल्ली करके कि आसपास कोई नहीं है, उसने कहा—'वक्त बड़ा नाजुक है। बात करने का समय नहीं। आप मर्दाने कपड़े उतार कर जनाने पहन लीजिए जो मैं साथ लेकर आई हूं और आप पालकी में बैठ जाइए। किसी को कुछ पता नहीं चलेगा। इस तरह औरत के वेश में आप घर पहुंच जायेंगे। तब पालकी से उतरते ही वेश बदल कर हिन्दुस्तान चले जाना। शेष विचार घर पहुंच कर कर लेना, जल्दी करो।"

ख़ान हक्का–बक्का रह गया कि यह क्या हो रहा है? मौत के मुंह से निकलने का रास्ता निकल आया। बहुत प्रश्न पूछने चाहे, परन्तु उस लड़की की तत्परता ने उसे कुछ न पूछने दिया। औरत का वेश बदल, बुर्का पहन कर वह पालकी में बैठ गया। कुछ समय पश्चात् सेवक आये और पालकी उठाकर चल दिये। पहरेदारों को भला क्या सन्देह हो सकता था कि इतने समय में क्या घटित हो गया है? बेखटके पालकी उठवा और कोठरी को ताला लगाकर सहज स्वभाव सभी विदा हो गये।

दूसरे दिन कत्ल का समय आ गया। बाहर के मैदान में तैयारी की गयी। जल्लाद तलवार लेकर पहुंचा। दो सिपाही कोठरी में से कैदी को लिवा लेने के लिए गये। किन्तु क्या देखते हैं कि वहां कैदी तो है ही नहीं, बल्कि एक युवती बैठी है और मर्दाने कपड़े पास ही पड़े हैं। हक्के–बक्के होकर उन्होंने दारोगा को आवाज दी। उसने भी विस्मित होकर यह आश्चर्य देखा और अपने होंठ काटे और दांत पीसे। परन्तु निडर स्त्री डरी नहीं, गंभीरता से उनके चेहरों की ओर ताकती रही।

दरोगा : हे स्त्री, तू कौन है? और खान साहब कहां हैं।

स्त्री : मैं वह हूं जो कल पालकी में बैठकर आयी थी। और खान साहब पालकी में बैठकर चले गये हैं। आप उनकी जगह मुझे कत्ल कर दीजिए।

दरोगा : गज़ब ! कहर इल्लाही, ए औरत, तूने तो अंधेर कर दिया। मर्दों के कान काट लिये, अक्ल पर पर्दे डाल दिये। तुझे यह सजा मिलनी चाहिए कि तुझे अभी टुकड़े–टुकड़े करके फेंक दिया जाये।

स्त्री : ठीक है, मैंने तो अपना नमक हलाल किया है। एक जान बचायी है। आप जो भी सजा चाहें, दें मेरे लिए सुखदायी होगी। चलाओ तलवार और मारो एक ओरत को।

दरोगा : ठीक ! ...अच्छा। ऐ क्या मैं एक औरत के खून से अपने हाथ रंगू। नहीं, नहीं, कभी नहीं, मैं अपने हाथ औरत के खून से नहीं रंगूंगा। किन्तू मैं मालिक को क्या मुंह दिखाऊंगा। इतना अनुभवी

व्यक्ति औरत से धोख खा गया। अगर तुझे मारूं तो कायर, अगर छोड़ूं तो नमक हराम, मालिक को बताऊं तो उल्लू।

स्त्री : हे बुजुर्ग दारोगा ! घबराओ नहीं, आपके मालिक ने कहा था कि पालकी बन्द आए और बन्द चली जाए। इसलिए इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। तुम मालिक को जल्दी खबर करो। जैसा हुक्म हो, मैं सहन करने को तैयार हूं क्योंकि यदि मुझे प्राण प्यारे होते तो मैं मौत के कुएं में खुद न गिरती। मैं मरने के लिए अभिशप्त हूं। मैं किसी दुःख से, किसी तरह की मौत से नहीं डरती। जो बहादुर शस्त्र धारण करके युद्ध को जाता है, वह दुःखों को दाएं हाथ में और मौत को बाएं हाथ में रखकर जाता है। मैं बहादुर हूं क्योंकि मैंने एक जान बचायी है। किसी ने बेकसी में मुझे प्यार किया था। मैंने उसके साथ नेकी के बदले प्राणों की बाजी लगाकर नेकी की है।

इस तरह की बातें सुनकर दारोगा हक्का–बक्का रह गया। बहुत कुछ सोचा परन्तु कुछ समझ न आया। आखिर दरबार में हाजिर हुआ और वजीर साहब के जरीये सारा किस्सा अमीर साहब तक पहुंचाया। अमीर साहब को सुनकर विस्मय हुआ और हुक्म दिया कि उस औरत को जिसमें कुर्बानी का इतना माद्दा है, दरबार में हाजिर करो। उसी वक्त दारोगा दौड़कर गया और औरत को दरबार में हाजिर किया। भरी सभा में अकेली औरत अदब के साथ सिर झुकाए खड़ी थी। अमीर साहब ने पूछा 'तू कौन है? और यह क्या माजरा है जो तुमने इस तरह अपनी जान जोखिम में डाली है?

स्त्री : मैं पंजाब देश की एक सिख लड़की हूं। आपके जुल्म ने मुझे बन्दी बनाया, पशुओं की तरह कैद करके मुझे यहां पहुंचाया और पशुओं की तरह मण्डी में बिकवाया। इस कहर में बिककर मैं खां साहब के घर पहुंची जिसे आपने कत्ल की सजा दी और उसकी पत्नी फातिमा की सेविका बनी, जबकि वह मेरा मालिक नहीं, मैं उसकी दासी नहीं, मैं एक बेगुनाह दुखिया हूं, मजलूम हूं। पर फिर उसकी पत्नी के नेक सलूक के प्रति अहसानमंद महसूस करके मैंने उसके पति की जान बचाना पुण्य कार्य समझा और उसे मुक्त कराने की कोशिश की। परन्तु कोशिश कारगर न हुई। आखिर आपसे यह आज्ञा प्राप्त की कि फातिमा खां साहब से मिल सकती है। वह औरत

डरपोक है और उसे प्राणों से मोह है। इसलिए उसकी जगह मैं स्वयं बन्दी खाने गयी। खां को स्त्री वेश में बाहर भेज दिया और स्वयं पुरूष वेश में उसकी जगह पर बैठ गयी। फिर मैंने पुरूष के वस्त्र उतार कर, स्त्री के वस्त्र पहन लिये जो मैं साथ ले गयी थी।

अमीर : ऐ दिलेर औरत ! तू बहुत बहादुर है। तुमने वह काम किया है जो कोई नहीं कर सकता। तेरे करतब पर मैं हैरान हूं। परन्तु तू सिख की लड़की है, इसलिए तुम्हें मारना ही ठीक है। किन्तु तुम्हारी बहादुरी का इनाम न दूं, तो मेरी हेठी होती है। इसलिए मांगो, मैं तुम्हें क्या दूं।

स्त्री : मुझे किसी वस्तु की इच्छा नहीं। मुझे कुछ नहीं मांगना। हां, कुछ पूछना चाहती हूं।

अमीर : क्या पूछना चाहती हो?

स्त्री : मैं यह पूछना चाहती हूं कि सिखों पर इतनें जुल्म क्यों होते हैं? क्या सिख आदमी नहीं?

अमीर : सिख आदमी तो हैं, पर लुटेरे हैं। पंजाब पर मेरे कब्जा करने के रास्ते में बाधक हैं। वैसे वे काफिर हैं, इसीलिए उन्हें मारता हूं।

स्त्री : सिख लुटेरे नहीं हैं। लुटेरे तो तेरे हाकिम हैं जो पंजाब की प्रजा को लूटते हैं। तुमने बिल्लियों को दूध की रखवाली पर रखा हुआ है। हाकिमों और चौधरियों के पास अनेक तरीके हैं जिनसे वे देश को लूटते हैं और प्रजा को सताते हैं। सिख उनसे प्रजा की रक्षा करते हैं। जब दुहाई मचती है तो दोष सिखों के सिर मढ़ देते हैं और बेगुनाहों को पकड़ कर मार देते हैं। कोई फरियाद नहीं सुनता। जिससे फरियाद की जाती वह स्वयं वही उपद्रवी निकलता है। सबसे बड़े उपद्रवी दिल्ली वाले हैं जो बूढ़े शेर की तरह हैं जो अपनी जगह से हिल नहीं सकता। प्रजा की दूसरी पहुंच आप द्वारा स्थापित हाकिमों तक है, परन्तु वे भी वैसे ही हैं। आप जितनी बार भी पंजाब–हिन्दुस्तान में गये, प्रजा को लूट–लूटकर नष्ट किया और अपनी जेबें भरकर काबुल का रास्ता पकड़ा। सिखों से आपकी दुश्मनी ठीक नहीं। यदि न्याय की दृष्टि से देखें तो सिख जालिम हाकिमों को सजा देते हैं। उन्हें लूटते हैं और उन्हें तबाह करते हैं।

पंजाब हमारा घर है, हमारा देश है। आपको हमारे देश को लूटने, उस पर राज करने का कोई हक नहीं। अपने घर को संभालने के लिए सिखों का आपसे लड़ना कोई अपराध नहीं। मैंने सच कह दिया है और निडर होकर कहा है। जो मौत से निडर है वह किसी से क्यों डरे? मुझे मार देने की ताकत आप में है, सो मैं खुद मौत के मुंह में आई हूं मेरी एक ही इच्छा बाकी थी कि आपके कानों में यह सच्ची बात पड़ जाए, सो मैंने डाल दी। अब सच के बदले जो सजा देना चाहो दो, मैं हाजिर खड़ी हूं। मौत मुझे आलिंगन में लिए खड़ी है। मैं मौत की गोदी में बैठी हूं, इसलिए मैं निडर हूं। प्राणों से मोह मनुष्य को कायर बनाता है। प्राणों को न्यौछावर करके व्यक्ति वीर बनता है। आप बहुत शक्तिशाली हैं। मैं कैदी हूं। परन्तु मैं सिख की लड़की हूं। बहादुरों के घर में जन्मी पली हूं। मैं सच्च से प्यार करती हूं। अब हुक्म दो जिससे कि मेरा सिर धड़ से जुदा हो जाए।'

दरबार के मुसाहिब (दरबारी) जो अमीर साहब के सामने थर–थर कांपते थे और बिना पूछे कोई काम नहीं कर सकते थे, इस दिलेर लड़की के वचन सुनकर हैरान रह गये कि यह किस उच्च संसार की रहने वाली और किस मिट्टी की बनी है, जो इतने शक्तिशाली बादशाह के सामने निडरता से बोलती है। अमीर साहब को कुछ–कुछ गुस्सा आया था, कुछ–कुछ दया और कभी–कभी प्यार भी उमड़ रहा था। बहुत देर तक विस्मित रहने के बाद अमीर ने पूछा, 'ऐ दलेर औरत, तू कैद में कैसे पड़ गयी? यह समझ, यह हौसला और कैद!'

स्त्री : अमीर साहिब क्या बताऊं? आपका एक फौजी अफसर घोड़ा दौड़ाये जा रहा था कि वह एक पुराने कुएं में गिर गया। मैंने उसे गिरते हुए देख लिया था। गांव से आदमी बुलवा कर उसे बाहर निकलवाया। आठ–दस दिन उसका इलाज किया और अपने घर रखा। स्वस्थ होकर वह लुधियाना चला गया जो हमारे गांव से कुछ ही दूरी पर है। एक दिन उस अफसर का संदेश मेरे पिताजी के पास पहुंचा कि आपकी लड़की की मेहरबानी के प्रति मैं आभारी हूं, मेरी बेगम उससे मिलना चाहती है। अगर आप उसे भेज दें तो अच्छी बात है। मेरे पिता ने इन्कार कर दिया। लगभग दस दिन बाद वह

अपनी पत्नी सहित हमारे गांव आ गया। उसकी पत्नी मुझे मिलने आयी। उससे मेरा स्नेह सम्बन्ध हो गया। एक दिन मैं उससे मिलने उसके खेमे में गयी। तब उन्होंने मुझे कैद कर लिया और मुझे लेकर भाग निकले। वह स्त्री जो स्वयं को उसकी पत्नी बता रही थी, उसकी पत्नी नहीं बलिक कोई और थी। इसलिए वह स्त्री तो खिसक गयी। उस दुष्ट ने मेरे साथ विवाह का प्रस्ताव रखा। दूसरे दिन आपने अपने देश को कूच कर दिया और उस दुष्ट को डेरे से आगे भेज दिया, हड़बड़ी में मैं पीछे रह गयी। आपके सिपाहियों ने मुझे बंदी समझ अन्य कैदियों में मिला दिया जो हमारे देश में से (स्त्री–पुरुष) बन्दी बनाये गये थे। आपका ही आदेश था कि कुछ गुलामों को पकड़ कर ले चलो। मैं भी औरों की तरह यहां बेच दी गयी। उस दुष्ट का फिर पता नहीं लगा कि कहां गया। आज आपके दरबार में उसकी सूरत फिर नजर आयी है।

अमीर : वृह कौन है?

स्त्री : (उंगली उठाकर) वह।

अमीर : (उसकी ओर मुंह करके) तुम्हें धिक्कार है ! मेहरबानी का यह बदला। तुम पर खुदा की लानत।' और भी बहुत–सी गालियां अमीर ने उसे दी। फिर दारोगे की तरफ मुंह करके कहा कि इस लड़की के प्राणों को बख्श दो और उसकी जगह इसे गोली से उड़ा दो।

स्त्री : अमीर साहब ! इनके प्राण बख्श दो। इनके मर जाने से मेरे दु:ख कम नहीं होंगे। खान साहिब की जगह मुझे प्राणदण्ड दीजिए क्योंकि अब और दु:ख सहने की ताकत मुझमें नहीं है। मुझे प्राणदण्ड देना ही इस समय पुण्य है, क्योंकि मेरे जाने से मुझे दु:खों से छुटकारा मिल जाएगा। इन शब्दों का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि अमीर का दिल भी पसीज गया, उसने कहा–'हे स्त्री ! जो तेरा मन करे मांग, मुझे तुम पर दया आ रही है।'

स्त्री : मेरी फातिमा के स्वामी खान साहब की जान बख्श दो और कैद खाने के दारोगा को कोई सजा मत दो। बस और मुझे कुछ नहीं चाहिए। अगर आपको बहुत ही दया आ रही है तो मुझे मेरे घर पहुंचा दो।

अमीर : ऐ शेर दिल लड़की ! तेरे गुण देखकर मेरी अक्ल दंग रह गयी है। तेरी पहली दो इच्छाएं मंजूर हैं परन्तु तेरी तीसरी इच्छा कबूल नहीं क्योंकि तेरे जैसी जां–निसार लड़की मिलनी कठिन है। तुम्हारे सभी कष्टों के बदले अब मैं तुम्हारे लिए सुखों का भण्डार खोल देना चाहता हूं, तुम मेरी बेगम बनकर रहो और जीवन की मौज लो।

इतना कह उसने इशारा किया, झट–पट सिपाही उसे दरबार से बाहर ले गये और उसे रनिवास में पहुंचा दिया। दासियां हाजिर हो गयीं। एक सुन्दर भवन रहने को मिला। धन–पदार्थ, गहने कपड़े सब उसके आगे रख दिये गये। सतवंत कौर जो पांच रूपये में बकरी की तरह दासी बनकर बिकी थी, आज महलों में पहुंच गयी है।

: ५ :

सतवंत कौर महल में पहुंच गयी किन्तु वहां क्या किया ! क्या वह खूब रोई और उदास हो गयी? हां ! पहले तो कुछ उदास हुई, परन्तु फिर उसके चेहरे पर चमक आ गयी जैसे सूरज के आगे से बादल हट जाने पर धूप चमक उठती है। दृढ़ मन से तथा निश्चिंत होकर वह महल में जाकर बैठ गयी। कपड़े बदल लिए, वेश बदल लिया। दासियों को अपनी आज्ञा के अधीन कर लिया। महल के सभी कमरों को घूम–फिरकर झट–पट देख लिया। जिससे कि कोई यही समझे कि वह सदा से इसी महल में रहती है। दासियों को अलग–अलग कामों में लगा दिया और आप अकेली कुछ विस्मयकारी–कार्य करती रही। रात हुई, अमीर साहिब महल में आये और आकर बैठ गये। सतवंत कौर को देखकर प्रसन्न हुए। समझदार मालिन भी फूलों की टोकरी ले आयी। निकाह पढ़ने के लिए काजी भी आ गया कि अचानक सारा कमरा धुएं से भर गया। अमीर साहिब भी घबड़ा गये, सतवंत कौर भी घबड़ा गयी। घबड़ायी भी ऐसे कि कभी इधर देखती कभी उधर देखती। फिर उसने एक कमरे का दरवाजा खोला। धुएं का एक बादल ही उधर को आ गया और दूसरे ही पल आग की तेज लपटें कमरे ही तरफ आई और उधर भी आग फैल गयी। ऐसे अवसर पर अफरा–तफरी और हलचल मची कि किसी को कुछ नहीं सूझ रहा था। सब अपने–अपने प्राण

बचाने के लिए भाग रहे थे। दासियां कहां और सेविकाएं कहां, अमीर साहिब कहां और सतवंत कौर कहां। इस आग और उसकी तपिश ने सारे महल के पहरेदारों और फौजियों में भी भगदड़ मचा दी। सब उधर को भागे जिधर अमीर साहिब के होने की संभावना थी। सतवंत कौर भी इस भगदड़ में, अपना दाव बचाती हुई, कभी चुप और कभी शोर मचाती हुई बादशाह के महल से बाहर निकल गयी। बहुत देर बाद आग बुझी और सब अपनी–अपनी जगह पर पहुंचे। अमीर ने लड़की के बारे में पूछा परन्तु कोई उत्तर न दे सका। क्रोधित होकर अमीर ने लड़की को तलाश करने की आज्ञा दी। आस–पास ढूंढ़ा, परन्तु कहीं पता न लगा। अब जले हुए मकान की खोज शुरू हुई, राख को हटाया गया। किन्तु न तो सतवंत कौर मिली और न ही उसकी कोई हड्डी पसली। अमीर साहिब बहुत घबराये। सभी नौकर चाकर चकरा गये। किसी की भी अक्ल काम नहीं कर रही थी कि यह सब क्या हो गया? सभी सोच रहे थे, और फिर सिर धुन–धुनकर रह जाते थे।, बाद में कुछ बुद्धिमानों ने कहा–"कहीं वह महल से बाहर तो नहीं निकल गयी।" इसलिए चारों तरफ घुड़सवार दौड़ाये गये। कुछ सवार हवा की तरह उड़ गये, दूर–दूर तक ढूंढ़ आये। एक सवार को पास ही सतवंत कौर का जला हुआ रेशमी दुपट्टा मिल गया, एक जला हुआ गहना भी नज़र आया। जब ये चीजें अमीर साहिब के पास पहुंचायी गयीं और पहचान की गयी तब सभी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उसके कपड़ों को आग लग गयी होगी। घबराकर वह दौड़ी होगी और किसी गड्ढे–खंदक में गिर गयी होगी। इसलिए फिर से और अधिक ध्यान से उसकी तलाश शुरू की गयी।

अब इधर का हाल सुनिए कि सतवंत कौर महल से निकलकर एक उजाड़ और सुनसान जगह पहुंची और एक जगह बैठकर सोचने लगी, "मैंने यह क्या किया? अच्छा ही किया। दुष्ट के पंजे से निकल आयी। मैं तो अबोध लड़की थी। ऐसी अक्ल वाली बातें कहां से सीख गयी? जरूरतों ने उसे सब कुछ सिखा दिया। कठिनाइयों और मुसीबतों ने उसे चतुर बना दिया था। परन्तु अब सोचने वाली बात यह है कि कहीं मैंने कोई पाप तो नहीं किया?

पहले मैंने अपनी प्यारी फातिमा के पति की जान बचायी, कोई पाप नहीं किया। जिसका नमक खाया हो उसका भला करना ही चाहिए। पिता जी कहा करते थे कि सिखों का धर्म है कि काम करें, और कमाकर खायें। यदि नौकरी करें तो मालिक के पानी की जगह अपना खून बहायें। मैं किसी की नौकर तो नहीं थी, फिर भी धर्म का ही पालन किया। दूसरा काम मैंने आज महल को आग लगाई परन्तु आग लगाने से मैंने किसी के प्राणों को कोई कष्ट नहीं दिया। मैंने महल के सभी कमरे इस प्रकार खाली करवा दिये थे कि किसी को कष्ट न पहुंचे। मकान जल गया, परन्तु यह पाप नहीं है। मैंने अपना सतीत्व बचा लिया मुझमें इतना साहस कहां था? इतनी बुद्धि कहां थी? यह सब तो अकाल–पुरूष की कृपा है। अब सोचने की बात यह है कि अब मुझे क्या करना है? इस समय मैं स्वतन्त्र हूं, मैं पंजाब कैसे पहुंचूं? इतनी दूरी कैसे पार करूं? कहां काबुल और कहां पंजाब? इतना रास्ता कौन तै करे? फिर रास्ता भी कठिन है, खूंखार लोग हैं, रास्ते में चोर डाकूओं का भय। इतना रास्ता तय करना किसी अकेले के वश की बात नहीं। मैं क्या करूं? फातिमा के घर गयी तो वे आश्रय नहीं देंगे, कहेंगे यह बादशाह की गुनाहगार है, शायद उसे फिर पकड़वा दें। और कोई परिचित भी नहीं, जानकार भी नहीं, किसके आगे फरियाद करूं? किसका आश्रय लूं? हे अकाल–पुरूष ! मैं कहां फंस गयी। तुम बड़े दयालु हो, कोई उपाय करो और मुझे इस संकट से बचा लो। मेरा शरीर ही चला जाए जिससे इन दुखों से तो छुटकारा मिले।

सतवंत कौर इस तरह विचारों में बहुत देर तक खोयी रही, परन्तु उसे कुछ भी नहीं सूझा। उसे एक ही रास्ता नज़र आया कि फातिमा के घर जाकर प्रयत्न करे, शायद दया करके वह उसकी कुछ सहायता करें। उसे इस बात का पूरा विश्वास था कि खान साहिब अमीर के डर के कारण उसकी सहायता नहीं करेंगे। परन्तु उसे फातिमा पर कुछ भरोसा था, इसलिए वह विचार करने लगी कि वह ऐसे समय पर उनके घर पहुंचे जिससे कि सिर्फ फातिमा से ही उसकी मुलाकात हो। इस तरह से सोचती हुई वह उनके घर पहुंची तो घर के दरवाजे बंद थे। वह घर के बाहर एक छज्जे के नीचे सिर

नीचा किये मुंह सिर लपेट कर कुछ ऐसे पड़ रही जैसे कि मानो कोई पत्थर पड़ा हो। लगभग तीन घड़ियां बीत जाने पर उसने घोड़ों की टापों की आवाज सुनी। दूर रोशनी नजर आयी। सतवंत कौर का कलेजा मूंह को आ गया। वह समझ गयी कि उसे खोजता हुआ ही कोई आ रहा है। यह सोचकर वह वहां से उठ बैठी। वह एक पुराने से मकान के सामने जा खड़ी हुई। उस मकान का आगे बढ़ा हुआ एक ऊपर हिस्सा ओट में था और खाली था, परन्तु उस पर चढ़ना कठिन था। सतवंत कौर देख रही थी कि यह जगह बचाव की है, परन्तु उस पर चढ़ने का कोई तरीका नहीं था। जान बड़ी प्यारी वस्तु है। अपना बचाव अपने आप निकाल लेती है अपने ऊपर के तीन कपड़ों को बांधकर एक किनारे उसने एक पत्थर बांधकर उस बढ़े हुए स्थान को खम्भे की तरफ इस तरह फेंका कि दूसरा किनारा उसके हाथ आ जाए। कपड़े को पकड़कर पैर दीवार के साथ लगाकर वह ऊपर चढ़ गयी और छिपकर बैठ गयी। अब सतवंत कौर नीचे का हालचाल देख सकती थी किन्तु उसे कोई नहीं देख सकता था।

उसी पल उसने देखा कि कुछ सवार मशालें लिए हुए उधर ही आ रहे हैं। उन्होंने खान साहिब का दरवाजा खुलवाकर पूछा कि सिख लड़की इधर तो नहीं आयी। उन्होंने घर की तलाशी भी ली, पत्ता–पत्ता पड़ताला, प्रत्येक कोना और हर जगह देखी किन्तु सिख लड़की की उन्हें गन्ध भी नहीं मिली। वे थक–टूटकर चले गये। सतवंत कौर सांस रोके सब देखती रही। उसका दिल धड़क रहा था डर चिंता से वह घिरी हुई थी और उसके मन में निराशा और आशा का द्वन्द्व चल रहा था। तारे गिनते एवं चिन्ता करते–करते रात का अन्धकार कुछ कम हुआ तथा पों फटने का समय आ गया। सतवंत कौर ने देखा कि खान साहब बंदूक लेकर, चार–पांच नौकरों के साथ घर से निकले हैं। उनके चले जाने के बाद दो–तीन नौकर बाजार की ओर गये। सतवंत कौर समझ गयी कि अब घर में कोई पुरूष नौकर नहीं होगा। औरतें होंगी। यही समय है जब वह फातिमा से मिल सकती है। यह सोचकर वह नीचे उतरी। कपड़े समेट लिए। अपने चेहरे को छिपाकर सिर पर कपड़ा लपेटे हुए वह चुपचाप सांस

रोके अन्दर चली गयी। सेविकाओं से नजर बचाती हुई वह फातिमा के कमरे में घुस गयी। बच्चा सोया हुआ था, परन्तु फातिमा जाग रही थी।

उस विचित्र सूरत को देखकर फातिमा डर गयी और चीखने–चिल्लाने लगी कि तभी सतवंत कौर ने इशारा किया और जल्दी से कपड़ा हटाकर चेहरा दिखा दिया जिससे फातिमा की तसल्ली हुई। परन्तु वह हैरान हो रही थी। उसने तो सुना था वह अमीर की बेगम बन रही है। वह यहां मेरे पास कैसे आ गयी? रात सिपाही इसी को ढूंढ़ते हुए आये थे। आश्चर्य से वह पूछने लगी, "तू यहां कैसे?"

सतवंत कौर : आपके पास सिर छुपाने आयी हूं।

फातिमा : क्या तुझे अमीर साहिब ने निकाल दिया है?

सतवंत कौर : नहीं, मैं तो भाग कर आयी हूं।

फातिमा : क्यों बेगम बनना मंजूर नहीं हुआ, इसलिए भागी हो।

सतवंत कौर : मैं सिख लड़की हूं, मेरा शरीर पवित्र है। मैं किसी की जोर जबरदस्ती से धर्म नहीं छोड़ सकती।

फातिमा : (आश्चर्य से) सतवंत तेरे जैसी दासी हिन्दुस्तान से कभी नहीं आयी। तुम तो काजी–मुल्लाओं से भी अधिक दीनदार हो। तेरी बुद्धि तो लुकमान से भी अधिक है। तुमने मुझ पर उपकार किया है। मैं तेरी ऋणी हूं, कुछ सेवा बताओ। मैं तुम्हारे काम आ सकूं।

सतवंत : मैंने कुछ नहीं किया। जो कुछ हुआ वह आपके भाग्य से हुआ। मैं आपकी शुक्रगुजार हूं जो आप मुझ पर इतनी कृपा कर रही हैं। अब मुझ पर दया करने का समय है, क्योंकि मैं अमीर के घर से भागकर आयी हूं। मुझे पकड़ने के लिए उसके आदमी घूम रहे हैं। मुझे अपने घर में कुछ समय के लिए इस तरह छुपा लीजिए कि आपके बिना किसी और को पता न चले।

फातिमा : "ठीक है। आधी रात सरकारी सवार यहां भी तुम्हें ढूंढ़ने आये थे। मैं तुम्हारी सहायता खुशी से करूंगी और तुम्हें छिपाने का पूरा इन्तजाम कर दूंगी। तुम घबराओ नहीं।" इतना कहकर फातिमा ने अपने कमरे के साथ का दरवाजा खोला और वहां किसी और

दिशा को खुलने वाले तख्ते को किसी खास ढंग से हिलाकर परे किया और अन्दर जाकर कहा कि सतवंत कौर यह कमरा तेरे रहने के लिए है। यहां कोई नहीं आता और न ही इस कमरे का किसी को पता है। यह हमारे बड़े बूढ़ों द्वारा समय असमय छिपने के लिए बनवायी हुई चोर जगह है। मैं सुबह–शाम, दोपहर जब भी समय मिलेगा बाहर के दरवाजे बंद करके तेरे पास आकर बैठ जाऊंगी और मेरे सिवाए यह भेद कोई भी नहीं जानेगा। तुझे खाने के लिए फल या जो तुम चाहोगी, मैं पहुंचाया करूंगी। यदि तुम घर से बाहर जाना चाहो तो आधी रात को ले जाया करूंगी। और भी जो कुछ कहो मैं तुम्हारे लिए करने को तैयार हूं। तुमने मुझ पर बड़ा उपकार किया है, मैं उसका बदला कभी नहीं चुका सकती। तू धन्य है, तेरा जन्म धन्य है। तुमने तो मुझे बिना दाम मोल ले लिया है। पहले तो तू मेरी दासी थी, मैं तेरी मालकिन थी। अब तुम मेरी मालकिन हो और मैं तुम्हारी दासी हूं। तेरी कृपा से मेरा उजड़ा हुआ घर बस गया। तेरी कृपा से मेरे पति की जान बच गयी, तेरी कृपा से मेरा पति मेरा हो गया जो अब मुझे बहुत प्यार करता है, तेरी कृपा से हम संसार में मुंह दिखाने लायक बन गये। अब तुझे मेरी जरूरत पड़ी है, मेरा शरीर, मेरी दौलत सब तेरे लिये हाजिर है।

सतवंत कौर : प्यारी मालकिन जी ! मेरा रोम रोम आप पर न्यौछावर है जो आपने मुझ पर उपकार किया है और इतनी सांत्वना दी है। आप धन्य हैं। आपने मुझ पर इतनी कृपा की है। शुक्र है अकाल–पुरूष का, मैं भी आपको अधिक तकलीफ नहीं दूंगी। मैं अकेली बैठी दिन रात बिता लूंगी, ऊबूंगी नहीं। आठ पहरों में एक बार आप आ जायें तो बहुत है। एक आध सेर अंगूर और कुछ दूध आदि दे दिया करना। मेरे लिए इतना ही बहुत है, परन्तु इतनी कृपा करना कि किसी दूसरे को कानों–कान खबर न हो, न तो आपके पति को न किसी नौकर को यहां तक कि बच्चे को भी इस बारे में कुछ न बताना क्योंकि भेद खुलने पर न केवल मुझ पर विपत्ति आयेगी बल्कि आप लोग भी बड़ी विपदा में फंस जाएंगे।

फातिमा : रब भला करेगा। यह एक और दरवाजा है, यदि तुम्हें लगे कि कोई मुसीबत आ रही है। तो इसे खोल लेना। यहां से बाहर

जंगल के लिए एक सुरंग निकलती है। आगे कुछ पत्थर हैं, परन्तु वहां से रास्ता बन जाता है। इधर से जल्दी से निकल जाना।

: ६ :

अब सतवंत कौर अपनी बनायी कैद में ही बंद हो गयी। सारा दिन वह कमरे में ही बिताती। उसने किये का बदला खूब निभाया। खरीदी हुई दासी की उसने खूब सेवा की। फातिमा को इस बात पर हैरानी होती कि वह तो एक पल भी अकेली नहीं बैठ पाती। किन्तु यह लड़की आठों पहर अकेली कैसे रह लेती है? बहुत सोचा परन्तु समझ नहीं पाई। एक दिन उसने पूछ ही लिया—बीबी ! क्या कारण है कि तुम सारा दिन अकेली रह कर भी उदास नहीं होती हो?

सतवंत कौर : बीबी ! मैं अकेली कभी नहीं रही।

फातिमा : (हैरान होकर) तेरे पास आता हुआ कोई दिखायी तो नहीं देता।

सतवंत कौर : ठीक है, परन्तु जो मेरे पास रहता है, वह आंखों से दिखता नहीं है।

फातिमा : (डरकर) ओह ! वह कौन है? क्या तूने कोई भूत प्रेत वश में किया हुआ है।

सतवंत कौर : नहीं जी, भूत नहीं, बीबी ! मेरा गुरू मेरे साथ रहता है।

फातिमा : (अधिक हैरान होकर) गुरू कहां रहता है और कैसे?

सतवंत कौर : बीबी ! मैं गुरू की वाणी का पाठ करती हूं और मेरे पिताजी बताते थे कि जहां वाणी का पाठ मन लगाकर किया जाता है, गुरू वहीं होता है। यह वाणी भी गुरू का प्रत्यक्ष रूप है।

फातिमा : वाणी गुरू कैसे हो सकती है?

सतवंत कौर : यह तो मुझे मालूम नहीं परन्तु हमारे धर्म का नियम है कि वाणी गुरू है। किन्तु इतना तो मैं भी जानती हूं कि वाणी पढ़ते समय मन प्रसन्न रहता है और कोई चिंता या दुःख मन में नहीं रहता। अकेलापन महसूस नहीं होता। इसमें मैं समझ जाती हूं कि गुरू मेरे पास है क्योंकि गुरू और परमेश्वर का रूप आनन्दस्वरूप है। जब वाणी पढ़कर मुझे आनन्द मिलता है तो इससे स्पष्ट है कि गुरू मेरे

साथ है। जिस तरह ठंडी पवन से जल के अस्तित्व का हम अनुमान कर लेते हैं वैसे ही मन में आनन्द की अनुभूति होने से मैं समझ लेती हूं कि वाणी गुरू ही है और यह लक्षण गुरू महाराज के ही हैं। बीबी जी ! इसीलिए मैं कभी स्वयं को अकेली नहीं समझती। साथ ही हमारे गुरू सर्वव्यापक हैं क्योंकि हम अरदास में कहते हैं–'सब थाईं होंहि सहाय'। हमारे गुरू सभी जगह हमारे सहायक हैं। हां, उस समय मैं घबड़ा जाती हूं जब वाणी छूट जाती है, या जब मैं मन लगाकर पाठ नहीं कर पाती। परन्तु प्रार्थना करते, विनती करते और मन लगाकर पाठ करते समय दिल लग जाता है और दिल लगते ही आनन्द आ जाता है। यह सब पिता जी की कृपा है। पिता जी को परमेश्वर सदा सुखी रखें।

यदि मुझे बचपन से ही ये सब शिक्षा न देते जा आज इन दुःखों को मैं कैसे सहन कर सकती?

फातिमा ने मधुरता से पूछा–बीबी ! क्या तुम पर पिता जी की यह कृपा माता–पिता के वात्सल्य भाव का परिणाम है या तुमने कुछ ऐसा काम किया था जिससे उन्होंने तुम्हें इन शिक्षाओं का पात्र समझा।

सतवंत कौर : बीबी जी, आप ऐसी बातें क्यों पूछती हैं? मैंने पहले कभी आपसे ऐसी बातें नहीं सुनी थीं।

फातिमा : मुझे कुछ समझ नहीं है परन्तु बचपन में मैंने ऐसी बातें सुनी थीं। मेरे पिता फकीरों का सम्मान किया करते थे और जब भी कोई फकीर हमारे घर आता, मैं भी उनके वचनों को कभी–कभी सुन लेती थी। परन्तु मैंने पिता जी से कोई लाभ नहीं उठाया। इसीलिए मैं तुमसे पूछती हूं कि तुमने कैसे लाभ उठा लिया?

सतवंत कौर : बीबी ! हमारे धर्म में माता–पिता का यह कर्त्तव्य है कि वे अपनी सन्तान को धर्म की शिक्षा दें। उनका धर्म केवल पालना–पोसना ही नहीं बल्कि सज्जन, नेक और धर्मपरायण बनाना भी है। इसीलिए मुझे जो कुछ मिला है, पिताजी की कृपा से मिला है, मेरे गुणों के कारण नहीं। हां, एक दिन मैंने पिता जी को यह कहते सुना था कि 'सतवंत कौर ! मैं तुझे देखकर भगवान को धन्यवाद देता हूं और मुझे बहुत प्रसन्नता होती है।' यह बात उस दिन हुई थी जब मैंने लगभग एक साल के परिश्रम से पंच ग्रंथी की पोथी हाथ

से लिखी थी। वह पोथी एक जरूरत मंद विधवा ने मुझसे मांगी थी और मैंने दयावश उसे दे दी थी। यह बात सुनकर पिता जी बहुत प्रसन्न हुए थे। हमारे धर्म में किसी को पोथी देना बहुत बड़ा पुण्य है, परन्तु मुझे इस बात का पता बहुत बाद में लगा।

फातिमा : बीबी ! मैं अब समझी कि सुख–दुःख में तुम परास्त क्यों महसूस नहीं करती। दुःख में भी कैसे प्रसन्न रहती हो और अकेले में भी क्यों नहीं घबड़ाती हो। क्या मैं तुम्हें यह कह सकती हूं कि मुझे भी इस सुख में भगीदार बना लो।

सतवंत कौर : मुझे आपसे किसी बात का छुपाव नहीं है, यदि आपकी आत्मा को इससे शीतलता मिले तो मैं उपस्थित हूं। परन्तु एक बात है–आप इसके लिए खुद को तैयार कर लीजिए।

फातिमा : जैसा कहो!

सतवंत कौर : ऐसा करो, प्रतिदिन वाणी की एक तुक मुझसे सुन लिया करो और उसका अर्थ समझ लिया करो। तुक अच्छी लगने पर याद कर लिया करो। जो अवगुण या कमियां आपको खुद में नजर आयें उनको दूर करने का प्रयत्न करो। ऐसा स्वभाव बनाओ जिससे दूसरों को दुःख न पहुंचे।

जब फातिमा ने यह उपदेश सुना तो वह उसके कहने के अनुसार चलने का प्रयत्न करने लगी। इधर सतवंत कौर ने उसको जपुजी साहिब की एक पंक्ति रोज कंठस्थ करवाना प्रारम्भ कर दिया। वह उसे अर्थ समझाती और याद करवाती थी। बड़ी मुश्किल से उसे पंक्ति याद होती और समझने में भी उसे कठिनाई होती। परन्तु सतवंत कौर के अथक परिश्रम ने सब कठिनाइयों को हल कर दिया और बहुत समय के परिश्रम के बाद उसे जपुजी साहिब कंठस्थ हो गया। अब सतवंत कौर ने उसे पाठ करने की विधि सिखाई। फातिमा जब पाठ करती तो उसे आनन्द मिलता। सदा के लिए सुखी रहने और दूसरों का भला करने की इच्छा जागती। उसके मन में सतवंत कौर के लिए सम्मान बहुत बढ़ गया। वह उसे एक ऊंचा फकीर समझने लगी और उसकी सेवा करके खुद को धन्य समझने लगी। सतवंत कौर समझती कि यह सब गुरू की कृपा है, उसी का प्रताप है कि बन्दिनी को भी वह कैसा सुख पहुंचा रहा है नहीं तो पांच

रूपये में बिकी लड़की किसी बावर्ची खाने में बर्तन मांज रही होती। यह गुरू की वाणी का प्रताप है कि मुझे कैद में भी सुख और शोभा प्रदान की है। गुरू महाराज ने नाम की महिमा कितनी सुन्दर कही है, धन्य गुरू, धन्य नाम, धन्य वाणी–

छूटत नही कोटि लख बाही॥ नामु जपत तह पारि पराही॥
अनिक बिघन जह आइ संघारै॥ हरि का नामु ततकाल ऊधारै॥
अनिक जोनि जनमै मरिजाम॥ नाम जपत पावै बिस्राम॥
हऊ मैला मलु कबहु न धोवै॥ हरि का नामु कोटि पाप खोवै॥
ऐसा नामु जपहु मन रंगि॥ नानक पाईऐ साध के संगि॥3॥
(गऊड़ी–सुखमनी–2)

: ७ :

फातिमा की दूसरी सौत का मन बहुत दुःखी था। वह दिन रात मनसूबे बनाती कि किस तरह फातिमा को दुःख दे। जब से सतवंत कौर ने फातिमा के पति की जान बचायी थी, तब से खान ने सभी बुरे काम करने और शराब पीनी छोड़ दी थी, दूसरी पत्नी के घर जाना भी छोड़ दिया था। उसे केवल खर्चा दे देता था। वह समझ गया था कि उसकी बर्बादी का कारण यही दूसरी पत्नी है जिसने कि घर के खर्चे अन्धा–धुन्ध बढ़ाकर वासना–विलास में लिप्त करके उसे राज्यद्रोही बना दिया था। बेहद खर्चे की वजह से वह इतना बेईमान बन गया कि मालिक के सामने भी उसे तरह–तरह के छल करने पड़ते थे। नौबत यहां तक आ गयी थी कि उसके कत्ल का हुक्म हो गया था। उसे दूसरी पत्नी के अवगुणों ने पीड़ित किया परन्तु फातिमा के गुणों ने उसे आकर्षित किया क्योंकि खान के सख्त जुल्मों और जोर जबरदस्ती की दशा में भी फातिमा शर्म–धर्म में दृढ़ रही और सदा पति की सेवा करने का प्रयत्न करती रही। बाद में पति को बचाने के लिए जो प्रयत्न उसने किये, वे भी सब उसे मालूम हो गये थे और सतवंत कौर की हिम्मत का कारण भी वह अपनी पत्नी को ही समझता था। इन्हीं गुणों के कारण फातिमा उसे फरिश्ते के समान लगती थी और दूसरी पत्नी ठीक शैतान की तरह लगती थी जिससे कि अब उससे खान को गहरी घृणा हो चुकी थी।

दूसरी पत्नी का नाम जेनब था। वह एक छोटे घराने की लड़की थी और बुरे लोगों के बीच ही उसका पालन–पोषण हुआ था। परन्तु सुन्दर होने के कारण खान साहब ने उसे स्वीकार कर लिया था। उस स्त्री का हृदय चेहरे की तरह सुन्दर नहीं था। इसी कारण सयाने लोग कहते हैं कि सूरत पर मोहित होना बड़ी भूल है–गुरू महाराज भी फरमाते हैं :

सूरति देखि न भूलु गंवारा।
मिथन मोहारा झूठु पसारा।
(मारू म : 5)

बहुत से नौजवान केवल सुन्दर पत्नी की खोज करते हैं, परन्तु केवल सुन्दरता कुछ दिन अच्छी लगती है। जब पहले चाव के दिन गुजर जाते हैं तब पति–पत्नी के गुण ही सुखी जीवन का आधार बनते हैं। यदि गुण न हों तो गौर वर्ण की पत्नी भी बुरी लगती है। गुणों की सुन्दरता प्राप्त करना सबसे बड़ी सुन्दरता है। चेहरे की सुन्दरता को ही अच्छाई का एक मात्र लक्षण नहीं समझ लेना चाहिए जो कि एक फुंसी से भी बिगड़ सकती है या शीतला के एक आक्रमण से भी कुरूपता में बदल सकती है परन्तु गुणों की सुन्दरता सदा साथ निभाती है। महाराज जी का कथन है :

गुण कामण करि कँतु रीझाइआ।।

इस तरह सुन्दर जैनब के अवगुणों ने और उसके कुरूप हृदय ने पति को उससे जब दूर कर दिया तब वह कुटिल स्त्री अपनी चालाकियों से अपनी सौत और पति से बदला लेने की योजनायें बनाने लगी। सबसे पहला काम उसने यह किया कि एक भेदी चालाक औरत को जो उसका सब भेद जानती थी, सौत के घर किसी बहाने से नौकर रखवा दिया। इसका नाम सैद था। सैद बहुत चालाक औरत थी। नौकर होते ही, उसने फातिमा की इस तरह सेवा की जिससे कि वह उसके सभी भेद जान ले ओर वह उसके हाथों में खेलने लगे। सैद जब नौकर रखी गयी थी तभी फातिमा ने सतवंत कौर को इस संबंध में बता दिया था, परन्तु सतवंत कौर ने कोई

विशेष ध्यान नहीं दिया। कुछ दिनों के बाद जब भी फातिमा मिलने आती, सैद की कुछ–न–कुछ बड़ाई करती। इससे सतवंत कौर को कुछ खटका हुआ। वह गहरी सोच में डूबने लगी और सोचने लगी कि इतनी नेक, परोपकारी और लायक नौकरानी यहां कहां से आ गयी और इतनी जल्दी सभी भेद कैसे जान गयी। एक ओर तो वह सेवा करती है, साथ ही उसके लक्षण भी स्पष्ट करते हैं कि वह मन की साफ नहीं है।

एक बार फातिमा और खान साहिब आधी रात को अपने कमरे में बातें कर रहे थे, उसी समय सतवंत कौर चुपचाप धीरे से दरवाजा खोलकर अपने गुप्त स्थान से बाहर आयी। अपने दरवाजे के पास खड़ी होकर उसने दीपक की मद्धिम रोशनी में सैद को खड़ी देखा जो कान लगाकर दम्पति में हो रही वार्तालाप सुन रही थी। सतवंत कौर तभी लौट गयी और अगली सुबह ही उसने फातिमा को कह दिया कि 'सैद को घर में रखना उचित नहीं।' जितनी जल्दी उसे निकाल सको, ठीक है। फातिमा का उसे निकालने को मन तो नहीं कर रहा था, परन्तु सतवंत की बात को टालना भी कठिन था। उसने अपने पति से बात की, पति उसकी सेवा पर खुश था, इसलिए बात टालने लगा। जब पत्नी ने बहुत कहा तो उसने उसे निकालने का कारण पूछा। अब फातिमा कारण क्या बताये? परिणाम यह हुआ कि कुछ देर की बातचीत के बाद बात खत्म हो गयी। यह सारी बातचीत कपटी सैद सुनती रही। वह भी समझ गयी कि फातिमा के मन में उसके प्रति कुछ शक हो गया है। परन्तु उसे समझ में नहीं आ रहा था कि उसके सन्देह का आधार क्या है? सैद की सारी चालें इतनी ठोस और रहस्यपूर्ण थीं कि उनका धुआं भी बाहर निकलना कठिन था। बहुत सोचने पर सैद को अपने शकों की ही पुष्टि होती हुई दिखी। सन्देह ये थे कि कई बार फातिमा अचानक गायब हो जाती थी और सारा घर छान डालने पर भी नहीं मिलती थी। वह नौकर–नौकरानियों से पूछती परन्तु कुछ पता न चलता। उस कुटनी का चंचल मन आश्चर्य चकित रहता कि इसमें भेद क्या है। कहीं फातिमा पर पुरूष के पास तो नहीं चली जाती, या किसी जादू से उड़ जाती है या कहीं छुप बैठती है। अब सैद ने अपनी मालकिन

का पीछा करना शुरू कर दिया। वह सारा दिन घर का काम–काज करती परन्तु ध्यान फातिमा में ही रहता। जब फातिमा गायब हो जाती तो वह उसी समय उसे खोजती परन्तु कहीं पता न लगता। घर में ही गायब हो जाने पर उसे पता भी कैसे लग सकता था। एक दिन सैद सारा दिन फ़ातिमा के पीछे–पीछे रही, परन्तु व्यर्थ। रात हो गयी, सब सो गये, सैद दीपक बुझा कर चुपचाप बैठी रही। आधी रात के समय फातिमा उठी। पीछे–पीछे सैद चली। फातिमा दूसरे कमरे में गयी, पीछे–पीछे सैद भी गयी। उसने दीवार में कोई कल–पुर्जा दबाया, दरवाजा खुला और वह उसमें चली गयी। उसके जाते ही दरवाजा बंद हो गया।

अंधेरे के कारण सैद को दिखायी तो कुछ नहीं दिया परन्तु दरवाजे के खुलने और बंद होने की आवाज उसने जरूर सुनी। समय जब तीन पहर बीत गया तो फिर आवाज हुई और फातिमा वहां से निकल कर अपने कमरे में चली गयी। सैद फिर अपनी जगह जाकर सो गयी पर उसे नींद कहां थी? वह सारी रात सोचती ही रही। सुबह होते ही उसने सफाई के बहाने पहला काम उस कमरे की देख भाल का किया जिससे वह आवाज वाली जगह को ढूंढ़ ले, परन्तु सब व्यर्थ। पहर भर वह जुटी रही, पर कुछ सिर पैर हाथ न आया। आखिर थक गयी, उसका सिर दर्द करने लगा, वह चाय का प्याला पीकर लेट गयी।

: ८ :

सतवंत कौर की सुनिए। वह उस कोठरी में समय काट रही थी। परन्तु उसने कभी उसे अपना घर नहीं समझा न ही उसने यह समझा कि उम्र भर उसे इसी कैद में रहना है। पिता का वह घर धर्मशाला की कीर्तन धुन, सतसंगत की शीतलता प्रदान करने वाली वह रौनक (सत्संगियों की वे) मिलन सभाएं जो कई बार तुर्कों के भय से छुपकर भी होती थीं, हृदय को आकर्षिक करती रहती थीं। वह दिन रात अपने देश पहुंचने की धुन में रहती, उपाय सोचती और अकाल पुरूष से विनती करती। इन्हीं दिनों में फातिमा से उसने अपने नाप के मर्दाने कपड़े भी बनवा लिए थे क्योंकि उसे बचाव की

यही एक सूरत नजर आ रही थी कि वह मर्दाने वेश में देश पहुंच जाये। प्रकृति ने उसे लम्बा कद दिया था और चेहरे पर वे हरे रंग के गुदने भी नहीं थे, जो कुछ समय से देखा देखी सिख लड़कियां भी अपनी चमड़ी पर गुदवा लेती थीं। प्राचीन काल में भारतवर्ष की औरतें ऐसी बिन्दी का प्रयोग करती थीं जो धोने पर उतर जाती थी। यह सदा रहने वाले दाग (गुदने) भारत के जंगली लोगों में प्रचलित थे। प्रमाण स्वरूप आज भी प्राचीन अशिक्षित जातियों को देखा जा सकता है जो सम्पूर्ण शरीर को गुदवाकर कई शक्लें बनाकर अपने आपको कुरूप कर लेती हैं। मुसलमानों के शासन काल में उनसे डरकर अपना चेहरा कुरूप करने के लिए और अपने आपको नीच जाति का दिखाने के लिए इस प्रकार के गुदनों का प्रचलन बढ़ गया था। परन्तु खालसा पंथ ने तो गुलामी के सुरंग लगा दी और स्वतन्त्रता का डंका बजा दिया। उस समय कान छिदवाने जैसे गुलामी के जो लक्षण थे, वे प्रारम्भ में ही छोड़ दिये गये और सिंहणियों (सिख नारियों) को इस प्रकार की बिंदी दूर करके अकलंक चेहरे रखने की आज्ञा दी गयी।[1] यदि सतवंत कौर के चेहरे पर यह रोग होता तो यह खतरा था कि मर्दाने वेष में भी उसकी पहचान होजाती।

इधर अब सैद को चैन कहां? रहस्य के समीप तो वह पहुंच ही गयी थी, परन्तु उसकी तह तक नहीं पहुच पायी थी। हर समय उसे एक ही धुन थी कि कब वह अपने मकसद को पूरा करेगी। एक दिन वह कमरे के एक कोने में पड़े मैले कपड़ों के ढेर के नीचे छिप गयी। जब दोपहर के समय फातिमा काम–काज से खाली होकर आयी और सतवंत कौर के कमरे में गयी तो शैतान सैद ने सारा भेद पा लिया और खुशी–खुशी बाहर चली गयी। इस प्रकार उसने कई बार छिप कर सब देखा और पूरी तरकीब उसकी समझ में आ गयी। चाबी की गुप्त जगह उसे पता चल गयी। एक रात जब सब सो रहे थे, उसने दरवाजे को खोलने की चेष्टा की, चेष्टा क्या की, खोल ही लिया। फिर बंद कर दिया। फिर सुबह चार बजे जाकर खोला और

1. किन्तु सिखों की गिरावट के समय कानों में बालियां पहनने की प्रथा फिर लौट आई।

एक कदम अन्दर भी गयी। अन्धेरे के कारण दिखा तो कुछ नहीं किन्तु सांस की मंद–मंद आवाज उसने जरूर सुनी। उसे लगा कि कोई सो रहा है। जरा सा कंपकंपा कर उसने फिर देखा बाहर के कमरे में जल रही अंगीठी की लौ मद्धिम सी उस पर पड़ रही थी, उसे लगा पालथी मारकर बैठी हुई कोई सूरत लगी। जिसे पीठ उसकी ओर होने से पहचानना कठिन था। वह थोड़ी देर खड़ी रही। एक पल बाद उस आकृति को हिलती देखकर वह वापस मुड़ गयी और दरवाजा बंद कर दिया। सतवंत कौर उठी, घबड़ायी कि आज दो बार दरवाजा खुलकर बंद हो गया है और फातिमा नहीं आयी है। अवश्य भेद खुल गया है और किसी तीसरे को पता चल गया है। जब दिन हुआ और फातिमा सतवंत कौर को मिलने के लिए गयी तो–तब उसे उसने कमर कसे हुए और तैयार पाया। यह देख फातिमा आश्चर्य से पूछने लगी कि क्या कारण है? सतवंत कौर ने उत्तर दिया कि अब यहां रहना हम दोनों के लिए दुख का कारण है। किसी तीसरे को रहस्य का पता लग गया है। आज रात को असमय दो बार दरवाजा खुला और किसी अनजान की आहट मैंने सुनी, परन्तु सूरत नहीं देखी। यह कह सकती हूं कि आप नहीं थी। फातिमा ने चकित होकर कहा कि–मैं नहीं थी, पर कैसे पता लगे कि वह कौन था?

सतवंत कौर– बीबी जी ! जब कि मैं परिचित नहीं हूं, सूरत भी नहीं देखी, परन्तु मेरा सन्देह पक्का है कि सब काम आपकी नौकरानी सैद का है। सैद के लक्षण अच्छे नहीं। यह आपके घर में फूट डालना चाहती है।

फातिमा– मुझमें इतनी समझ नहीं, परन्तु सन्देह उस पर मुझे भी है और आपके कहने पर मैंने उसे निकालने का बन्दोबस्त भी किया था, किन्तु खान साहिब नहीं माने, अब उनकी मर्जी के बिना मैं उसे कैसे निकालूं?

सतवंत कौर– मैं नहीं चाहती कि आप अन्याय करें और न ही मैं यह चाहती हूं कि मेरे कारण आप सैद को निकालें.परन्तु आप अपने सुख के लिए इस गंदी उंगली को काट दीजिए। मैं यहां से किनारा किया चाहती हूं। मैं नहीं चाहती कि सैद मुझे फिर यहां देखे।

फातिमा– आपका कहना ठीक है। परन्तु मैं आपसे अलग होना

नहीं चाहती। आप इस कमरे को छोड़ दो। एक और कमरा है जिसकी बनावट इसी तरह की है और आगे जाकर इसी रास्ते के साथ मिल जाता है और उधर से पता भी नहीं लग सकता। मेरे विचार से ठीक यही है कि आप उधर चली जाइए।

सतवंत कौर– अभी यही सलाह नेक है क्योंकि इस समय में सैद को निकालने का मौका मिल जायेगा। सैद ने कुछ–न–कुछ करना है और कभी भी झूठी पड़ सकती है। काफी देर सोच–विचार के बाद यही सलाह ठीक समझी गयी।

सैद ने दूसरे दिन ही खान साहिब को अकेला देखकर शिकायत की–"महाराज आपके घर में कोई गैर आदमी रहता है और आपकी स्त्री का उसके साथ अनुचित सम्बन्ध है और आपको कुछ पता नहीं।" यह सुनते ही खान का हाथ तलवार पर चला गया और वह कड़क कर बोला–"बुलाओ।" सैद फातिमा को ढूंढ़ने गयी परन्तु वह कहीं नहीं मिली। वह समझ गयी कि फातिमा अंदर ही गयी होगी, अच्छा है रंगे हाथों पकड़वाऊंगी तो दोनों का भेद खुल जायेगा। वह दौड़कर गयी और बोली–"आइए खान साहिब और रंगे हाथों पकड़िए।" खां साहिब तमतमाये हुए हाथ में तलवार लिए आगे बढ़े। सैद ने गुप्त दरवाजा खोला और खुशी–खुशी मन में उछलती अन्दर गयी। परन्तु उसकी किस्मत फूट गयी। वहां तो आदमी की गन्ध तक भी नहीं थी। आगे–पीछे देखा भाला किन्तु कहीं कुछ न था। खान साहिब चकराये, घबराये लज्जित हुए और लौट आये। फिर सैद की चोटी पकड़कर घुमाया दो–चार मुक्के लगाये। क्षुब्ध हुए, सिर झुकाये बाहर निकल आये और लगे फातिमा को ढूंढ़ने। शयनकक्ष में गये तो फातिमा को इबादत में बैठा पाया। बेवस हो फातिमा को गले लगा लिया और उसे सारा कच्चा चिट्ठा सुना दिया। फातिमा ने सुनकर कहा–"खान साहिब मैं तो पहले ही कह रही थी कि यह सैद शैतान की औलाद है। हमारा घर खराब करेगी, इसे रखना ठीक नहीं, अब भी इसे निकाल दें तो ठीक है। खां साहिब सहन नहीं कर पाये। दौड़कर गये और सैद को चोटी से पकड़कर घर से बाहर कर दिया। सारे घर में यह बात पता चल गयी। सभी नौकर खुश हुए कि बला टली क्योंकि अब वह सभी पर रौब झाड़ने लगी थी।

: ९ :

दो पहर रात बीत जाने पर फातिमा चुपचाप उठी और दूसरी तरफ से गुप्त द्वार खोलकर सतवंत कौर के पास पहुंची। उसने सतवंत कौर को वहां नहीं पाया तो बहुत आश्चर्य हुआ। कलेजा धक–धक करने लगा, जान मुट्ठी में आ गयी, पैरों के नीचे से जमीन खिसक गयी, हाथों के तोते उड़ गये। एक रंग आता तो एक जाता। मन में सोचती, घबराती, इधर–उधर देखती–भालती, और फिर चिन्ता में डूब जाती। इस तरह की मनःस्थिति में आधा घंटा बीत गया। फ़ातिमा बेसुध सी घड़ी भर पड़ी रही। जब उसकी आंख खुली तो क्या देखती है कि उसका सिर सतवंत कौर की जांघ पर पड़ा हुआ है और वह उसके चेहरे पर पानी के छींटे मार रही है। सतवंत को देखते ही उसका मन खुशी से नाच उठा। उछलकर उठी और उसे पूरा जोर लगाकर गले से लगा लिया। उसका मन उसे छोड़ने को नहीं कर रहा था। काफी देर बाद उसे छोड़ा और फिर बैठकर पूछने लगी कि यह क्या कौतुक हुआ था?

सतवंत कौर– बीबी ! क्या बताऊं। सैद के मामले से चित्त उदासीन हो गया। मैंने सोचा कि बकरे की मां आखिर कब तक खैर मनायेगी। एक दिन तो भेद खुल ही जायेगा। और जब खुलेगा तो विपत्ति आप पर आयेगी। मैं भी फसूंगी। परन्तु मेरा क्या है? मैं तो इस पृथ्वी पर मात्र पांच रूपये मूल्य की वस्तु हूं, मारी गयी तो मारी गयी, परन्तु आप अमीर लोग हैं, हमारे साथ क्यों पिसो। मुझे पनाह देना कोई छोटा पाप नहीं है।

फातिमा– है तो ठीक, परन्तु हमारा भेद कैसे खुल सकता है? इस जगह को कोई नहीं जानता और फिर इसमें से बच निकलने के लिए जंगल को रास्ता है। घर में एक दुष्टों की दुष्टा सैद थी सो वह भी निकल गयी। बाकी नौकर मेरे लिए प्राण तक देने को तैयार हैं।

सतवंत कौर– सच है, परन्तु कुदरत के कारनामें न्यारे हैं। समझदारों की पेश नहीं चलती। इसलिए मैंने चाहा कि आगे का सारा रास्ता देख आऊं। इसलिए बत्ती लेकर चली गयी और दूसरा लम्बा रास्ता जो जंगल में जाता है, उससे सुरंग से बाहर निकल

गयी। जंगल सुनसान पड़ा था। मैं कुछ दूर चली गयी। एक पत्थर की ओट में दो सिपाही बैठे बातें कर रहे थे। मैं खड़ी होकर सुनने लगी। वे मेरी ही बातें कर रहे थे। बादशाह को शक है कि शायद मैं जली नहीं हूं। इसलिए मुझे ढूंढ़ने के लिए पुरस्कार की भी घोषणा की गयी है। ये बातें सुनकर मैं वापस लौट आयी और आकर आपको बेहोश पाया। फिर जल के छीटें मार–मार कर आप को होश में लायी।

फातिमा– आप बहुत हिम्मत वाली हैं।

सतवंत कौर– क्या करूं, दुख झेल–झेलकर मन कुछ कठोर हो गया है।

फातिमा– आप भागकर आयी हैं, परन्तु यहां से अधिक सुरक्षित स्थान मुझे भी कोई नजर नहीं आता।

सतवंत कौर– सच है, इस बात को तो मैं भी समझती हूं। परन्तु मैं केवल प्राणों को ही तो बचाना नहीं चाहती, मैं जीते–जी माता–पिता के दर्शन करना भी चाहती हूं।

फातिमा– क्या पंजाब जाने का संकल्प है?

सतवंत कौर– जी हां।

फातिमा– यह तो बहुत कठिन है, स्त्री जाति, कोई साथी नहीं, फिर बादशाह का डर, पहुंचना बहुत कठिन है।

सतवंत कौर– यह तो मैं भी जानती हूं परन्तु क्या करूं दिल हार मानना नहीं चाहता। मन यही कहता है तू सिख लड़की है, और सिख लड़की के लिए मुसीबतों से सामना करना बड़ी बात नहीं।

फातिमा– बीबी ! आपका हौसला है या कहर? जब कभी हमारा शौहर हिन्दुस्तान लूटकर आता था तो सिखों की बातें सुनकर हम हैरान होते थे कि इतने हिम्मत वाले लोग कहां से पैदा हो गये हैं। लोग आश्चर्यजनक बातें करते रहते थे। हम हंस पड़ते थे और सोचते थे कि यों ही कहानियां हैं परन्तु अब आपको देखकर लगता है कि सिख सचमुच बहादुर, धुन के पक्के और धर्मपरायण हैं।

सतवंत कौर– बीबी ! क्या बताऊं? न हमारे पास राज्य, न किला, न देश, न खजाना। एक परमात्मा का आश्रय है, जिस पर सारा पंथ जान पर खेलता है और शुत्रु भी उनकी बहादुरी की दाद देते हैं।

फातिमा– सच है, मैंने प्रत्यक्ष देख लिया है।

इतने में कुछ आवाज हुई। फातिमा चली गयी और सतवंत कौर दिन होने से पहले ही मर्दाने कपड़े पहनकर पठानी शक्ल बनाकर सुरंग के रास्ते से जंगल में चली गयी।

: १० :

दिन अभी तीन घड़ी बीता था।

काबुल शहर से थोड़ी दूरी पर एक पेड़ के नीचे दो नवयुवक बैठे हुए बातचीत कर रहे थे। वे अपनी लाल पगड़ियों से हिन्दू लग रहे थे।

पहला– फिर मैं क्या करूं?

दूसरा– भाई साहिब मैं क्या बताऊं।

पहला– उधार ही दे दो।

दूसरा– यह तो मुश्किल है।

पहला– मैं फिर अन्न ग्रहण कैसे कर सकता हूं?

दूसरा– इस बात की चिंता मुझे भी है, परन्तु आप प्रतिदिन आ जाया करो।

पहला– इतनी दूर से प्रतिदिन नहीं आ सकता। यदि आप पांच दिन के लिए और दे दो तो मैं दिन–रात लगाकर कंठस्थ कर लूंगा।

दूसरा– मैंने अपने पिता जी से बहुत कहा परन्तु वे नहीं मानते।

पहला– मुझे चोरी करके दे दो।

दूसरा– चोरी कैसे करूं? लोहे के संदूक का ताला कोई तोड़ सकता है क्या?

पहला– अच्छा मेरे भाई ! यदि आप में हिम्मत नहीं थी तो मुझे इसकी लगन ही क्यों लगायी।

दूसरा– बुरा तो नहीं किया, भला ही किया है।

पहला– हां, किसी को अफीम खिलानी सिखाकर फिर डिब्बी में छिपा लेने में कौन–सी भलाई है?

दूसरा– तुम्हीं बताओ, इसमें मेरे वश क्या है?

पहला– ठीक है, किन्तु नशेबाज भी क्या करे?

दूसरा– क्या बताऊं कुछ उपाय भी तो नहीं है।

पहला– अच्छा, आप चार दिन मेरे पास चलकर रहिए।

दूसरा– यह पिताजी नहीं मानते, वे डरते हैं। रात को कह रहे थे कि पंजाब में सिखों के सक्रिय हो जाने की खबर मिली है। अमीर क्रोधित हो रहा है। आशा तो नहीं है, परन्तु यहां के सिखों पर भी मुसीबत आ सकती है। इसलिए लुक–छिप ही गुजारा करना चाहिए।

पहला–अच्छा तो भूख का मारा प्राण ही त्याग दूंगा।

इनकी बातें एक नवयुवक सुन रहा था। वह हाथ जोड़कर आगे बढ़ा और बोला–"मैं बिन बुलाये बोल रहा हूं। परन्तु आपके ही लाभ के लिए। आप पंज–ग्रंथी पोथी मांग रहे हैं। आपको पाठ में रस आने लगा है और यह दे नहीं सकते। आपने एक भूल की है। यदि जपुजी ही कंठस्थ कर लेते तो भी पाठ की बहार लगी रहती। यदि आप मेरी बात स्वीकार करें तो मैं आपकी सेवा कर सकता हूं। जपुजी साहिब, हजारे के शब्द, रहुरास, सोहिला, सुखमनी और आसा दी वार तो मुझे कंठस्थ है, बाकी वाणियां नहीं। यदि इतनी वाणियां चाहिए तो मैं आपको पोथी लिखकर दे सकता हूं।

खुशी की यह खबर सुनकर दोनों ने उसके चरण पकड़ लिए और प्रेम विह्वल होकर बोले, "धन्य जन्म, धन्य जन्म कोई शहीद सिंह आ पहुंचे हैं। धन्य जन्म ! धन्य जन्म ! हम इस पर वारे जाएं, कुरबान जाएं !

नवयुवक– पैर नहीं पकड़ो ! मैं शहीद नहीं हूं। आपका ही सिख भाई और साधु–संगत का सेवक हूं।

पहले व्यक्ति का नाम तोता राम था और सिख बनने को तैयार था और दूसरे का नाम मंगल सिंह था जिसके उपदेश से पहला तैयार हुआ था। तोताराम को उसने पंज ग्रंथी दी थी जो उस समय अमूल्य होने के कारण मंगल सिंह के पिता ने वापस ले ली और फिर नहीं दी। इसी बात पर तोता राम उदास हो रहा था। तभी परमेश्वर ने उसकी सुन ली और उसके पास एक सिख लेखक भेज दिया। अब सलाह यह हुई कि तोता राम उस नवयुवक को अपने गांव ले जायें और उसे अपने घर रखे। परन्तु उन्होंने देखा कि उसके सिर पर सफेद पगड़ी है। इसलिए मंगल सिंह ने अपनी पगड़ी से दो गज

कपड़ा फाड़कर उसे दिया, जिसे कि वह अपने सिर पर लपेट ले। कारण यह था कि काबुल में यह नियम था कि जो मुसलमान नहीं है वह लाल पगड़ी पहने जिससे कि पहचान हो जाए।

दोनों मित्र विदा हुए। तोताराम और लेखक नवयुवक गांव चले गये। गांव जाकर उसने अपने घर में अलग से उसे कमरा दे दिया, कलम, दवात कागज़ भी मंगा दिया। उस सिख नवयुवक ने तीन दिन में ही जपुजी लिख ली। मोतियों जैसे अक्षर देखकर तोताराम बाग–बाग हो गया। उसके प्रति उसके हृदय में प्यार उमड़ा–पड़ रहा था। वह उसका अधिक से अधिक सम्मान करने लगा। महीने भर में वाणी लिखी गयी और पोथी तैयार हो गयी। तोताराम की इच्छा पूरी हो गयी। वाणी का आनंद आ गया और नित्य–नियम का निर्वाह होने लगा। कुछ समय बाद चोरी–चोरी अमृत छक कर तोताराम सिंह सज गया। अब उस नवयुवक का सम्मान दिनों दिन बढ़ने लगा क्योंकि पोथियों की आवयश्यकता हर किसी को थी, परन्तु मिलती बहुत कठिनाई से थी। काबुल में कई बार पंज–ग्रंथी पांच सौ में भी हाथ नहीं आती थी। परन्तु इस मन–मौजी ने बिना पैसे लिए सिर्फ अन्न वस्त्र स्वीकार करके कई पोथियां लिख दीं। इस प्रकार धीरे–धीरे सभी सिखों में उसका यश फैल गया। इसका नाम जसवंत सिंह था। जसवंत सिंह की अच्छी आव–भगत होने लगी। एक दिन एक साहूकार का पिता बिमार था। उसने बेटे से कहा कि कोई ऐसा सिख लाओ जो उसे सुखमनी का पाठ सुनाये। भाग्यवश जसवंत सिंह वहीं था। वे उसको ले गये। जसवंत सिंह ने इतने मधुर स्वर में पाठ किया कि उस साहूकार का तन–मन शीतल हो गया। उसी दिन उसको कुछ फर्क भी पड़ा और कुछ दिनों में ही वह स्वस्थ भी हो गया। उस वृद्ध व्याक्ति को जसवंत सिंह इतना प्यारा लगा कि उसने उसे अपने घर पर ही रख लिया। जसवंत सिंह प्रतिदिन सुखमनी जी का पाठ करता और वह वृद्ध सुना करता। एक दिन वृद्ध कहने लगा कि आपको कोई लालच नहीं है, कोई इच्छा नहीं है? मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं? मेरा मन चाहता है कि आप कोई सेवा मुझे जरूर बतायें।

जसवंत सिंह– मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं, कोई इच्छा नहीं। एक है सो पूरी नहीं हो सकती।

वृद्ध– नहीं, नहीं जरूर बताओ।

जसवंत सिंह– क्या बताऊं? बताने का क्या लाभ?

वृद्ध– नहीं, नहीं जरूर बताओ?

जसवंत सिंह– मेरा मन करता है एक बार पंजाब जाऊं।

वृद्ध– इसमें क्या मुश्किल है? जब भी कोई काफ़िला जायेगा, मैं आपको साथ भेज दूंगा। श्री अमृतसर जी का स्नान करके आनन्द लेकर, जब काफ़िला लौटे तो वापस आ जाना।

जसवंत सिंह– वापस आने का मेरा संकल्प नहीं है।

वृद्ध– परन्तु मेरा जीवन तो आप पर निर्भर हो गया है, आप चले गये तो मैं क्या करूंगा।

जसवंत सिंह– 'छोटा मुंह बड़ी बात' वाली बात है, परन्तु कहे बिना नहीं रह सकता। आपने इतनी उमर बिता ली, सभी आनंद ले लिए, बेटे सयाने हो गये, ब्याहे गये। इन सबाको छोड़ दो और अमृतसर जी चलकर बैठो और अपना अन्त संवार लो।

वृद्ध– बरखुरदार ! कहते तो सच हो परन्तु मैं तो कुटुम्ब में बुहारी के बांध की तरह हूं।

जसवंत सिंह– यच है, परन्तु एक दिन तो इस बांध को टूटना है, चार दिन पहले सही।

वृद्ध– मन तो कभी से करता है, परन्तु इन्हीं बाल–बच्चों की ममता की वजह से रूक जाता हूं परन्तु जब सोचता हूं कि आखिर इन सबको छोड़ना ही है तो फिर मन करता है कि चलूं। इसी से दुविधा में रहता हूं।

जसवंत सिंह– हिचक एवं दुविधा आपको छोड़ने होंगे।

वृद्ध– अच्छा, आज परिवार वालों से बात करूंगा।

उस दिन परिवार में बात चली। भला कौन मानता? बड़े–छोटे, लड़के–लड़कियां सभी रोने लगे 'हम तो बड़े बापू जी को नहीं जाने देंगे।' परन्तु बापू हठ करने लगे। कई दिन इस तरह की हलचल चलती रही। एक दिन वृद्ध के पेट में ऐसा दर्द उठा कि वह असहनीय हो गया वह व्याकुल हो गया। इलाज किया, दर्द दूर

हुआ। परन्तु यह संकल्प पक्का हो गया कि एक बार अमृतसर जी जरूर जाना है क्योंकि इस दर्द ने मौत से साक्षात कार करा दिया था और बता दिया था कि शरीर का कोई भरोसा नहीं है। जो शुभ काम हो, जल्दी ही कर लेना चाहिए। परिवार ने भी यह बात मान ली परन्तु इस शर्त पर कि बापूजी वहीं नहीं रह जाएंगे। वापस लौट आयेंगे।

वृद्ध ने जसवंत सिंह को यह बात बता दी कि मैं वहां से वापस नहीं लौटूंगा। यह बात सुनकर जसवंत सिंह ने कहा–यह बात मुझे पसन्द नहीं है कि उन्हें भ्रम में रखा जाए जबकि आपका संकल्प शुभ है। इस कार्य में स्वार्थ का भाव नाम मात्र को भी नहीं है परन्तु तब भी सच सच ही है और झूठ–झूठ। इसलिए परिवार के साथ सत्य वचन ही कीजिए।

वृद्ध– इस तरह तो ये जाने ही नहीं देंगे।

जसवंत सिंह– फिर आप वापस आ जाना, दो–चार महीने वहां रह लेना।

वृद्ध– क्या आप साथ आओगे।

जसवंत सिंह– मैं वापस आने का वचन नहीं देता। परन्तु यदि वहां पहुंचकर आपको मेरे वहां रहने से आपके साथ लौट आना उचित लगे तब मैं भी लौट आऊंगा। परन्तु यदि आपने ही वहां पहुंचकर कहा कि भाई सज्जन तुम पंजाब में ही रहो तब आपके साथ वापस न लौटने में मेरा कोई दोष न होगा।

: ११ :

उधर बीबी फातिमा को जब घर के काम–काज से फुरसत मिली और वह सतवंत कौर की ओर गयी तो भीतर खाली पाया। पंछी उड़ गया था और पिंजरा खाली पड़ा था। क्या करती? पहले तो कुछ सन्देह रहा परन्तु जब मर्दाने कपड़े नहीं दिखे तो दिल बैठने लगा। आंखों के आगे अन्धेरा छा गया। होश धुएं की तरह उड़ गये। दिमाग चकराने लगा और वह धड़ाम से गिर पड़ी। वह काफी समय तक ऐसे ही गिरी पड़ी रही। अचेत तो नहीं हुई परन्तु शरीर में इतनी शिथिलता आ गयी कि उठकर बैठना भी मुश्किल हो गया। बहुत देर बाद वह उठी, परन्तु उसकी टांगे कांप रही थीं। वह फिर बैठ गयी।

काफी देर बाद उठी, बाहर गयी। जाकर अंगूरों का रस पिया। जरा–सी हिम्मत आयी। जिससे शरीर तो खड़ा होने योग्य हो गया परन्तु हृदय की व्याकुलता कौन दूर करे? फिर अन्दर गयी। दीपक जला कर सारी सुरंग देखी। ताजा मिट्टी को गिरते देखकर निश्चय हो गया कि सोने की चिड़िया उड़ गयी। निराश होकर अपने कमरे में आ गयी और इधर–उधर की बातें सोचने लगी। बेटा बुलाता परन्तु उसे जरा भी अच्छा न लगता। नौकर–नौकरानियां काम पूछतीं, परन्तु वह मुंह से कुछ न कह पाती। अपनी तरफ से बहुत हिम्मत रखती परन्तु मन में ऐसा तूफान उठता जो किसी तरह भी न थमता। पहले संकट के समय में जपुजी साहिब का पाठ जैसा कि उसे सतवंत कौर ने बताया था, उसको सहारा देता था परन्तु अब वह पाठ करे एक पौड़ी का और मन विचारों के पर लगाकर सतवंत कौर के पीछे शहरों–जंगलों में सैकड़ों उड़ाने भरता रहता। ढ़ाढ़स कैसे हो? बैठे–बैठे उसकी आंखों से आंसू बहने लगते। वह उनको रोकने का प्रयत्न करती। परन्तु जैसे पिचकारी के आगे तो उंगली रख लें और पीछे से डण्डा दबा तो पानी उंगली को हटाकर जोर से बाहर आ जाता है। उसी तरह वियोग की पीड़ा के धक्के से उसकी अक्ल की उंगली जो आंसुओं को रोकने का प्रयास कर रही थी दूर–दूर हट जाती और अविरल आंसू बहने लगते। हार कर वह मूंह पर पानी के छीटें मारती, जिससे आंखों का स्रोत सिकुड़ जाये और पानी को रोक दे। परन्तु ऐसा कहां? असर उलटा ही होता। अन्दर जल रहे पानी को जब ठंडे पानी के छीटों का स्पर्श मिलता तब अपनी आग बुझाने के लिए आंसुओं का गर्म पानी उछल–उछल कर बाहर को निकलता। बेचारी फातिमा के हाथ पर जल की ठंडी और गर्म बूंदें अलग–अलग ऐसे प्रतीत होती जैसी अटक और लंडा नदियां साथ–साथ बहती हुई भी, अलग–अलग रंग दिखलाती हैं।

फातिमा के पति को किसी बहुत बड़ी सेवा के फ़लस्वरूप सरकार की ओर से एक गांव पुरस्कार में मिला था। जब उसने आकर इसकी सूचना दी तब भी उसके चेहरे पर हंसी के भाव नहीं आये। वह चेष्टा करके हंसी, परन्तु आंखों और होठों पर अधिकार न था। होंठ मुस्कराते किन्तु आंखें आर्द्र हो जातीं। खान ने पूछा–यह

आज कैसी उदासी है? परन्तु वह क्या बताये? वहां तो यह घटित हो रहा था–

हे दिल दे साड़। इक सुण बेनती तूं
इश्क दे भेत दो निकले न टूक सूं
विच्चो विच फूक, छड बाकी न इक लूं
पर ऐसी अग्ग हो जिस दा ना हो धूं।

(ऐ दिल की जलन, तुम मेरी विनती सुनो। प्रेम के भेद की हवा भी न निकले, अंदर ही अंदर जलो, एक रोयां भी न शेष बचे, परन्तु यह आग ऐसी हो कि जिसका धुआं न हो।)

फातिमा के साथ तो यही घटित हो रहा था, वह पति को क्या बताये? वह बहाने बनाकर टालना चाहे और वह अधिक स्नेही एवं हितैषी होकर पूछे। आखिर नींद ने ही उसे छुटकारा दिलाया, सब सो गये। परन्तु फातिमा ही तकिए पर सिर टिकाए रो–रोकर उसे गीला कर रही थी। काफी रात बीत गयी, वह थकान अनुभव कर रही थी। वाणी के पाठ ने शीतलता प्रदान की। कुछ आलस्य सा छा गया।

फातिमा जब सुबह उठी, तब शरीर निर्बल, दिल कमजोर और वियोग का वही शूल बाकी था। बेचारी सोच रही थी कि वह कैसे सतवंत कौर को ढूंढे? खुद पर्दानशी घर से बाहर पैर नहीं निकाल सकती, रहस्य ऐसा जो किसी को बता नहीं सकती, खोज हो तो कैसे हो? फिर सोचने लगी कि सतवंत कौर बहुत धुनी है, जरूर पंजाब की तरफ ही गयी होगी, तब रास्ते की कठिनाइयां, उसकी गरीबी, उसके स्त्री होने के ख्याल से मोटे–मोटे आंसू टपकने लगते कि वह कैसे इतना कष्ट सहेगी? पता नहीं कौन–सी मुसीबत में पड़ जाए? कितनी कठिनाइयों का उसे सामना करना पड़ेगा? इन्हीं विचारों में कई दिन बीत गये, परन्तु कुछ लाभ न हुआ। एक दिन घरवाले ने आकर बताया कि वह लड़की जो हमारे घर रही थी और जिसने उसे कैद से मुक्ति दिलवायी थी (अर्थात सतवंत कौर) पकड़ी गयी है और अमीर के महल में पहुंचा दी गयी है। वह एक पठान के पास थी जो उसे मंडी में बेच रहा था। सिपाहियों ने पहचान

ली और सरकार के पास पहुंचा दिया। अमीर साहब भी उसे कुछ–कुछ पहचानते हैं। उससे जो कुछ भी पूछो उत्तर नहीं में देती है, एक टक देखती रहती है और सिसकियां भरकर रो पड़ती है। अमीर साहब ने कैद कर लेने की आज्ञा दी है। परन्तु मैं रह न सका और प्रार्थना की कि मुझे सन्देह है, यह वह लड़की नहीं है। अच्छा यही है कि इसे मेरी पत्नी के पास भेजा जाए, वह ठीक से पहचान लेगी। उसके पास यह काफी समय तक रही है। जो लोग अब पहचान रहे हैं उन्होंने इसे एक बार ही देखा है। अमीर ने यह बात मान ली है और उसे कल आपके पास लेकर आयेंगे। मेरा मतलब यह है कि मैं भी अहसान उतार लूं। अगर वही हुई तो कह देना यह नहीं है, अमीर उसे छोड़ देगा, वह बेचारी बच जायेगी। फिर हम उसे ले आयेंगे और चुपचाप कर किसी सुरक्षित स्थान पर पहुंचा देंगे।

फातिमा पहले तो घबड़ा गयी थी परन्तु फिर पति की दयालुता देखकर बहुत प्रसन्न हुई। उसने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि वह फिर मिल गयी है और उसे उसकी सेवा करने का अवसर मिलेगा।

दूसरे दिन फातिमा को बादशाह के महल में बुलवाया गया। वहां पहुंचने पर बंदी लड़की उसके सामने लायी गयी। फातिमा का दिल शोक से धक–धक कर रहा था पर उसे देखते ही सारा शोक दूर हो गया। यह कोई और ही दुखी लड़की थी, सतवंत कौर नहीं थी। फातिमा ने देखते ही सिर हिलाया कि यह वह नहीं है। परन्तु निराशा भी हुई। फिर कुछ सन्देह हुआ तो दो–चार बातें भी उससे की पर वह तो कोई और ही थी। जब उसने कह दिया कि यह वह लड़की नहीं है, तब उसे फिर दरोगा के पास भेज दिया गया। बादशाह की तसल्ली हो गयी थी। उसने उस लड़की को छोड़ देने की आज्ञा दी। परन्तु पठान कोतवाल को, जिसने उसे पकड़ा था बहुत क्रोध आया कि कम्बख़्त ने उसकी सारी मेहनत बेकार कर दी उसने गुस्से में बन्दूक की नली से उसे जोर से ठेला। वह बेचारी भूखी–प्यासी, बदनसीब हिन्दुस्तान की बन्दिनी, दुखों से निर्बल वहीं गिर गयी और लुढ़कती–लुढ़कती नीचे जा पड़ी। उसका सिर फट गया और प्राण–पखेरू उड़ गये।

उन दुखों के दिनों में हिन्दुओं का यह हाल था और इस बेरहमी से तुर्क पठान अधिकारी उनसे ऐसे व्यवहार करते थे। हिन्दुओं को तो वे पशु के समान भी नहीं समझते थे। मन में आया तो मार दिया, मन में आया तो दास बना लिया। मन में आया तो कठिन कामों लगा दिया, मन में आया तो पशुओं की तरह बेच दिया। ऐसे जालिम विदेशी बादशाहों के साथ सिख बहादुरों ने लड़–लड़कर खुद को क़ुरबान करके देश से उनकी सफाई की थी।

: १२ :

एक दिन की बात है कि खान साहिब रात को कहीं दौरे पर गये हुए थे। घर के नौकर–चाकर सब सो गये थे। फातिमा अपने कमरे में लेटी हुई थी। पहले तो उसे नींद नहीं आ रही थी परन्तु बाद में जब उसे नींद आयी तो वह ऐसी बेखबर होकर सोयी थी कि नींद आने की खबर तक भी उसे नहीं हुई। मानो नींद ने उसे थपथपाया, आंखों की पलकों को ढांप कर उसे अपनी गोद में सुला लिया। सोयी हुई वह क्या देखती है कि उसे नींद नहीं आ रही है और घबड़ा कर सिर पटक रही है, फिर रोती और क़हती है–हे सतवंत कौर ! तुम इतनी निर्दयी कैसे हो गयीं। तुम तो मेरी नींद और भूख भी साथ ले गयी हो। वह यह कहती–कहती रो पड़ी। रोती–रोती क्या देखती है कि चांद की चांदनी इकट्ठी होती जा रही है और एक पुतला सा बनाती जा रही है। धीरे–धीरे वह चांदनी एक औरत बन गयी। फिर फातिमा ने पहचान लिया कि वह सतवंत कौर हैं सतवंत कौर ने आकर उसका कंधा हिलाया तो फातिमा उठ गयी। सचमुच उठ बैठी। और देखा कि वास्तव में सतवंत कौर उसके सिरहाने बैठी हुई है। वह हक्की–बक्की रह गयी। चारों तरफ देखा, दीपक की ओर देखा, अपने हाथों–पैरों की ओर देखा कि सपना है या यथार्थ? कभी असमंजस में आंखें मूंद लेती। आखिर सतवंत कौर ने कहा–"फातिमा ! घबराओ नहीं, तुम सपना नहीं देख रही हो, जाग रही हो। और मैं सपने की देवी नहीं, सचमुच सतवंत कौर तेरे पास बैठी हूं।" अब तो फातिमा ने उसे आलिंगन में ले लिया और दोनों एक दूसरे से चिपक गयीं।

इतने समय के बाद फातिमा को सतवंत कौर से मिलना अचम्भे की बात थी। आश्चर्य यह कि वह कहां रही, कहां से आयी और किस कारण से वह खिंची चली आयी। सतवंत कौर ने उसकी पहली हैरानी दूर होने के बाद भी प्रेम–प्यार की पुस्तक नहीं खोली, इतना ही कहा कि वह उस रास्ते से किसी काम से बाहर गयी थी और अपने देश पहुंचने की चिंता में थी परन्तु आपके घर में मुसीबत आती देखकर प्राणों की बाजी लगाकर बड़ी मुश्किल से वही पुराना रास्ता ढूंढ़कर सुरंग के रास्ते वह फिर आयी है। लो अब सावधान हो जाओ, सोचने का समय नहीं, कुछ करने का समय है। तेरी सौत एक डाकू से मिल गयी है और आज रात तुम्हारे पति के घर न होने के कारण वह तुम्हारा घर लूटने और तुम्हें उठा ले जाने की योजना बना कर आ रही है। जिस समय आधी रात के बाद पांचवी घड़ी बजेगी अचानक ही तेरी सेविका हसना दरवाजा खोलेगी, डाकू अन्दर आ जायेंगे और घर लूट कर तुम्हें उठा कर ले जायेंगे और कानों–कान किसी को खबर नहीं होगी। क्योंकि तुझे लेकर शहर में ही ये तेरी सौत के घर जा छिपेंगे और फिर आसानी से कोई और रास्ता पकड़ लेंगे।

फातिमा घबड़ा गयी, डर गयी और भौचक्की रह गयी किन्तु साहसी सतवंत कौर ने प्यार से चुटकी काटते हुए कहा–सावधान हो जाओ। पठानी होकर इस तरह क्यों उदास हो रही हो? उठो और उस नौकरानी को जल्दी से किसी गुप्त कोठरी में बैठा दो और दरवाजा बन्द कर दो। फिर जीलानी नौकर को जगाकर कोतवाली से आठ–दस सिपाही मंगवा लो जो रात–भर मकान पर पहरा दें। कोतवाल आपके पति का दोस्त है फिर भी यदि पचास रूपये साथ दो तो जल्दी काम करेगा। परन्तु ठहरो, जरा दम लो। अच्छा जाओ, पहले हसना पर काबू पा लो। फिर मैं कुछ और सोचती हूं।

फातिमा गयी, हसना को उठाया। वह सोयी तो थी ही नहीं, घड़ियां गिन रही थी। बस यूं ही मचली बन रही थी। फातिमा ने कहा–'हसना ! तू तो आज बड़ी जल्दी सो गयी। दूध भी नहीं रखा, बच्चा रो रहा है। हसना उठी, देखा तो दूध का गिलास बावर्चीचाने में पड़ा है। सचमुच पाप की धुन में वह दूध रखना हीं भूल गयी थी।

मालकिन के कहने के अनुसार दूध का बर्तन उठाकर वह उसके पीछे-पीछे चलने लगी। फातिमा उसको एक गुप्त कमरे की तरफ ले गयी फिर उससे कहा-दूध मुझे पकड़ा दो और दो सीढ़ियां उतर कर नीचे के हिस्से से गहनों का डिब्बा उठा लाओ। मैं तकिए के नीचे रख कर सोऊंगी। आज घर में अकेली जो हूं। जल्दी जल्दी हसना नीचे उतरी। फातिमा अभी देख ही रही थी कि सतवंत कौर वहां पहुंच गयी और उस कोठरी का लोहे का दरवाजा बंद कर दिया और आप ओट में हो गयी। हसना ने सतवंत कौर को नहीं देखा अपने आप को कैदी पाया। फातिमा ने कहा-नमक हरामी का आनंद तुम यहां बैठ कर लो और मैं अब औरों का इन्तजाम करती हूं।

उधर सतवंत कौर ने फातिमा से कहा कि कोतवाल को खबर करनी उचित नहीं। मुझे सन्देह है कि डाकू सिपाहियों के साथ मिले रहते हैं, इसलिए उनकी सहायता ठीक नहीं। घर के नौकरों को जगा लेना चाहिए। कोई ऐसा तो नहीं जिस पर शक हो? फातिमा ने कहा-इनमें ऐसा तो कोई नहीं, परन्तु जैसा तुम कहो? सतवंत कौर स्वयं भी सबको जानती थी और उनकी ईमानदारी पर उसे भरोसा था। इसलिए यह सलाह दी कि उनको उठा दो और काम धंधे में लगा दो। वे दीपक जला लें और आपस में बातचीत करते रहें। वर्तनों की आवाज करते रहें। उनको भेद मत बताना केवल इतना ही कह देना कि मुझे डर लगता है, इसलिए घर में रौनक और प्रकाश रखें जिससे चहल-पहल बनी रहे। बाहर के दोनों दरवाजों में अन्दर से ताला लगा लो और मुझे हथियार वाले कमरे में जाने दो। तुम किसी नौकरानी को लेकर बातचीत करती रहो। जब दिल उदास होने लगे तो किसी बहाने से मेरे पास आ जाना। जब मुझे तुम्हारी जरूरत होगी तो मैं अन्दर से चूहे के कुतरने जैसी आवाज करूंगी। तब चुपचाप अन्दर चली आना। इतनी देर में मैं बन्दूक तैयार कर लूंगी। सतवंत कौर के कहने के अनुसार ही फातिमा ने किया। नौकर भोली-भाली मालकिन से खुश थे। उनको जरा भी शक नहीं हुआ कि कोई दुर्घटना हुई या होने वाली है। मालकिन की आज्ञा से सब उठ बैठे। दीपक जल गये और घर में चहल-पहल हो गयी।

बातचीत तथा अन्य कारणों से ऐसा लग रहा था जैसे वे अभी रात के काम से खाली नहीं हुए हैं। इस प्रकार जब आधी रात बीत गयी तो डाकू बाहर आये। सारे घर को जागता पाकर उन्हें आश्चर्य हुआ। वे प्रतीक्षा करने लगे कि अभी सभी सो जायेंगे, परन्तु वहां सोता कौन? बाहर खड़े–खड़े थक गये। सोचने लगे हसना ने विश्वासघत किया है, या खान साहिब लौट आये हैं, या हमारी खबर मिल गयी है। परन्तु जो कुछ भी हो हसना को बाहर आकर उनको सूचित तो करना चाहिए था। हसना के साथ उन्होंने अपने आने की खबर देने का एक ढंग निश्चित किया था कि वे उल्लू की बोली बोलेंगे। बेचारे कई बार उल्लू की बोली बोल चुके किन्तु लोहे के पिंजरे में बैठी हसना भला कहां से उल्लू की आवाज सुनती? बार–बार उल्लुओं की भयानक आवाज सुनकर फातिमा का कलेजा बैठता जा रहा था, अंत में घबराकर सतवंत कौर के कमरे में गयी। वहां जाकर क्या देखती है कि वह बाहर की एक छोटे कमरे में छुपी बैठी है और रोशनदान में बन्दूक की नली टिकाकर एक टक देख रही है। फातिमा ने कहा–क्या देख रही हो? सतवंत कौर ने कहा...कुछ नहीं, आपके डाकुओं के करतब देख रही हूं। फातिमा ने बड़ी उत्सुकता से रोशनदान में मुंह करके बाहर देखा। अन्धेरे में उसने पांच छः दानव की तरह जवान देखे और डर कर पीछे हट गयी। सतवंत कौर ने कहा...बीबी जी, आप आराम से अपनी जगह बैठिए। मैं यहां मोरचा लगाकर बैठी हूं। यदि इन डाकुओं ने जरा भी हलचल की तो गोली मार दूंगी। आपके यहां छः बंदूकें हैं। मैंने छः की छः भर ली हैं। ये भी पांच सात आदमी ही हैं, इनका काम हो जायेगा। सतवंत कौर की हिम्मत और बहादुरी देखकर फातिमा दिल में चकित ही थी। ऐसी दिल वाली लड़की कैसे कैद हो गयी और यहां कैसे बैलों की तरह बिकी। इसे तो कहीं रानी होना चाहिए था। कैसी निडर और साहसी है। मेरे तो हाथों के तोते उड़ गये और पैरों के नीचे से जमीन निकली जाती है और यह तोपखाना लैस किये बैठी है। मेरे घर सब कुछ है परन्तु मेरी बुजदिली मुझे नहीं करने देती। ऐसी ही बातें सोचती फातिमा नौकरानियों के पास जाकर बैठ गयी।

जब डाकू थक गये तो उन्होंने सलाह की कि दरवाज़ा तोड़कर अन्दर घुस चलो। इसी वक्त दो डाकू और आ गये थे जो पक्की खबर लाए थे कि खान साहिब दौरे पर ही हैं। जब उन्होंने दरवाजे को ठोकर मारी तो फ़ातिमा डर गयी कि अभी घर में घुस पड़ेंगे तो वह क्या करेगी? नौकर भी कुछ दरवाजे की तरफ तथा कुछ मालकिन की तरफ भागे। परन्तु घर के किले में डट बैठी सतवंत कौर ने फारसी भाषा में अफगानी अन्दाज में रोशनदान में से ललकारा...क्यों मौत के मुंह में कूद रहे हो? यह आवाज सुनकर डाकू डरने की जगह जिद में आ गये और सभी ने मिलकर दरवाजे पर हमला किया। उधर उन्होंने दरवाजे पर हमला किया इधर सतवंत कौर ने बन्दूक चला दी और 'ठाह' करती गोली एक डाकू की टांग में लगी। वह वहीं गिर पड़ा। शेष डाकू इस घटना से कांप गये। इधर–उधर देखने लगे। परन्तु कुछ पता नहीं चला। अब उन्होंने रोशनी कर ली। कोतवाल के साथ मिले होने के कारण उन्हें किसी का डर तो था नहीं। परन्तु उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि गोली किधर से आकर लगी? अब दो आदमी बंदूकें भरकर रखवाली के लिए खड़े हो गये और बाकी दरवाजा तोड़ने में लगे परन्तु फिर ऊपर से गोली चली और एक की बांह में ऐसी लगी कि बांह बेकार हो गयी। अब उन्होंने भी दीवार की ओर बंदूक चलायी। परन्तु वह ऊपर को निकल गयी इसी समय कांपती हुई और परेशान फातिमा सतवंत कौर के पास चली आयी। सतवंत को वीरता के साथ डटे हुए उसने देखा उसने कुछ कहा...किन्तु सतवंत कौर ने नहीं सुना। सतवंत कौर ने कहा..."तुम्हारे नौकर अब समझ गये हैं कि बाहर डाकू हैं। उनसे कहो कि बावर्चीखाने से दो–चार तीर चला दें। यहां से तीर कमान ले जाओ। कांपती हुई फातिमा ने जल्दी–जल्दी ऐसा ही किया। उधर सतवंत कौर ने बाकी चार बंदूकें एक के बाद एक चला दीं। गोलियां उनके बीच पहुंची और चारों को घायल कर गयी। दूसरी ओर से चार–पांच तीर चले। कुछ निशाने पर लगे, कुछ चूक गये। इससे डाकू समझ गये कि अन्दर दस बीस आदमी हैं उन्हें यह एक दो का काम नहीं लगा। ऐसे समय में बंदूक भरनी और चलानी

कठिन होती है। साथ ही दो तरफ से मार पड़ रही थी। यह देखकर गिरते–पड़ते नौ–दो ग्यारह हो गये।

अब जब सतवृंत कौर ने डाकुओं को भगा दिया और घर को उनसे बचा लिया तो उसे अपने बचाव का ध्यान आया। बताये हुए इशारे से उसने फातिमा को बुलाया और कहा–अब तुम्हारे घर शोर मचने वाला है। इससे अब तुम खुद ही निपटना। मैं अब तुम्हारी उसी गुप्त कोठरी में जाती हूं। दिन भी होने वाला है। एक आदमी कोतवाली भेज दो और जब सिपाही आ जायें तो एक आदमी खान साहिब के पास भेज दो। इस बात का नाम मत लेना कि हमने अन्दर क्या किया है और न ही हसना का नाम लेना। जब तुम्हारा पति आ जायेगा तो हसना से खुद ही निपट लेगा। अगर कोई और बात पूछनी हो तो कोठरी में आ जाना। जल्दी से हथियारों को अपने–अपने स्थान पर रख दिया गया। दरवाजा बंद करके दोनों नीचे उतर गयी। सतवंत कौर तो चुपचाप अपनी कोठरी में चली गयी। उधर फातिमा ने एक आदमी कोतवाली भेज दिया। एक पल में ही सिपाही आ गये, कोतवाल भी आ गया। बड़ी सरगर्मी से जांच होने लगी। एक दस्ता घुड़सवारों का एक तरफ तो दूसरा दूसरी तरफ दौड़ाया गया। दो आदमी खान साहिब की तरफ दौड़ाये गये तथा अन्य कोशिशें होने लगीं। ऐसा लग रहा था जैसे सचमुच जांच में लगे हुए हैं, उन्होंने अन्दर की बात को कि रिश्वत खाकर रात भर चुपचाप बैठे रहे थे, छिपाये रखा। अब भी सरगरमी प्रकट न करते तो क्या करते? दोपहर तक घर में खूब उधम मचा रहा–परन्तु चोरों का कुछ भी पता न लगा। लगता भी कैसे? अगर किसी ने पता लगाना होता तब ही तो लगता। जब नीयत ही खराब थी तो पता कौन लगाता? दोपहर के बाद खान साहिब भी आ गये। उनको बड़ा अफसोस हुआ परन्तु घर को ठीक–ठाक पाकर और यह जान कर कि कुछ द्वार पटों के सिवाए और कुछ हानि नहीं हुई है, चिंता कुछ दूर हुई। उसने पहले तो कोतवाल के सिपाहियों के साथ बातचीत की और पता लगाने का इन्तजाम किया। फिर बढ़ई बुलवाकर दरवाजे की मरम्मत करवाई, छः सिपाही पहरे के लिए रख लिए और फिर अन्दर आकर नौकरों को शाबाशी दी। फिर पत्नी से मिलकर

मन की बातें की और समस्त समाचार सुना। फातिमा जैसे–जैसे बात सुना रही थी सतवंत कौर का जिक्र छिपाने की वजह से बात बीच–बीच में टूट सी जाती थी फिर बात बनाने की चेष्टा करती किन्तु बात न बनती। इससे उसके पति की हैरानी बढ़ती गयी किन्तु उसने अपने मन की तसल्ली स्वयं ही कर ली कि उसकी स्त्री सीधी–सादी है। रात की घटना को देखकर डर गयी है। अब तक उसकी बुद्धि काम नहीं कर रही है। तभी बीच–बीच में इधर–उधर की हांक जाती है।

: १३ :

अब सतवंत कौर को अपने निकलने की चिंता हुई। उसका मन हुआ कि वह चुपचाप निकल जाये। किन्तु फिर फातिमा को मिले बिना जाने को बुरा समझ रूकी रही। दूसरे दिन फातिमा उसको अन्दर आकर मिली। अब दोनों में बातचीत हुई। सतवंत कौर चाहती थी कि वह चली जाए परन्तु फातिमा चाहती थी मि वह उसके पास रहे। फातिमा अपना सुख चाहती थी और सतवंत कौर का अपने देश, पिता और कौम की ओर खिचाव था। वह उन हिन्दुस्तानी औरतों में से नहीं थी जो परदेश जाकर अपने मूल स्थान को भूल जाती हैं। वह अपने मूल स्थान को जानती थी और वहां पहुंचना चाहती थी। वह अभी तक अपने धर्म पर दृढ़ थी। जिसने बादशाह की बेगम बनने से भी इन्कार कर दिया वह भला और किस लालच में फंस सकती थी? परन्तु उधर फातिमा ने उसके पैर पकड़े, एक जिज्ञासु की तरह आंसुओं की अविरल धारा बहा रही थी और प्रार्थना कर रही थी कि उसे छोड़कर वह कहीं मत जाए। इस प्रेम के बन्धन को तोड़ना बहुत कठिन था। कष्टों और विपत्तियों को सतवंत कौर ने सह लिया था, बादशाह के लालच को भी उसने ठुकरा दिया था। अब प्रेम के समुद्र को लांघने का कठिन काम आ पड़ा था। यह प्रेम भी पवित्र, गुर–सिखी से सम्पन्न, संत भक्ति का अंश–सतसंग वाला था। फातिमा का उसके चरणों को बार–बार चूमना, हाथ जोड़ना, माथा रगड़ना सतवंत कौर का उसे रोकना, दिलासा देना, आदि से आश्चर्यजनक दृश्य उपस्थित हो रहा था। कुछ समय तक ऐसा ही

चलता रहा। तत्पश्चात इस प्रेम ने सतवंत की उदासीनता को झकझोर दिया। सतवंत कौर को मजबूर होकर वचन देना पड़ा कि मैं आठ दिन तुम्हारे पास जरूर रहूंगी। फातिमा को कुछ ढाढ़स हुआ। अब फातिमा उसकी बहुत खातिर करने लगी। मालकिन वाली सारी बू निकल गयी थी। एक मुरीद (शिष्य) की तरह आकर वह उसकी सेवा और सम्मान करती। सतवंत कौर सोचती पता नहीं इस दलदल से कब मुक्ति होगी।

आठ दिन बीत गये, जैसे सदा ही दिन बीतते हैं। सतवंत चलने के लिए फिर तैयार हुई किन्तु फातिमा उसे जाने ही न दे रही थी।

सतवंत कौर ने कहा– बीबी जी ! मैं किसी तरह भी अब रूक नहीं सकती। मुझे अपने घर जरूर पहुंचना है। मुझे अपनी मां का दर्शन होता है, जो ईश्वर की इच्छानुसार सन्तुष्ट रहने का पूरा प्रयत्न करती हैं, परन्तु प्राकृतिक मोह का स्रोत कभी–कभी ऐसा फूट पड़ता है कि मां को सम्भाल नहीं पाती। मैं क्या करूं। उसके पास मुझे जरूर पहुंचना है। तुम सच जानो, यदि मैं माता–पिता के सामने मर जाती तो वे मेरे लिए व्याकुल न होते। किन्तु अब उन्हें यह पीड़ा सताती होगी कि क्या हमारी बेटी जालिमों के पापों की हिस्सेदार बन रही है? उनकी बुद्धि मानती नहीं होगी, परन्तु संदेह की दवा तो लुकमान को भी नहीं मिली थी। इसीलिए मेरे मन में उमंग है कि मैं कब उनके चरणों में पहुंचूं और उनको तसल्ली दूं कि धर्म की रक्षा करके मैं आप तक पहुंच गयी हूं। फातिमा कहती कि मैं क्या करूं? मुझे तुम्हारे साथ इतना प्यार हो गया है कि तुम्हारे जाने की बात सुनते ही मेरे प्राण निकलते हैं।

सतवंत कौर– देखिए बीबी जी ! तुम्हें पहले ही वाणी पढ़ने का ढंग बताया था जिससे तुम्हें इतना लाभ पहुंचा कि अब तुम धर्म, दया, दान आदि को समझती हो और आन्तरिक सुख को भी अनुभव करती हो। अब यह सोचो कि अंत में अकेले ही तो जाना है। या तो अकेले ही चले जाना होगा, अपना समस्त परिवार मर जाये तो अकेले ही रह जाना होगा। उस समय कौन बहन, पति, पुत्र तेरे साथ चलेगा? उस अकेलेपन को प्राप्त हुई समझो और सबसे अलग होकर स्वयं में मग्न हो जाओ। सभी में रहो, परन्तु अपनी आशाओं,

इच्छाओं के लिए किसी पर निर्भर न रहो क्योंकि अंत में आपको निराधार अर्थात अपने ही सहारे जीना है। इसलिए समय जिस बात को हम पर जबरन लाद रहा है उसे क्यों न हम पहले ही स्वीकार कर लें। इस सम्बन्ध में मैं तुम्हें एक कथा सुनाती हूं। एक सिख साधु एक जंगल में निवास करते थे। उस जंगल में ऊंचे वृक्ष तो कम थे, पर झाड़ियां और घास की अनेक किस्में थीं। एक बार दावानल भड़क उठा। सारे जंगल में आग लग गयी। पूर्व की तरफ से आग लगी, साथ ही पुरवाई चलने लगी। बैसाख के दिन थे, उस महात्मा की कुटी के सामने सुन्दर खेती पकी हुई थी। घर में स्त्री और पुत्र था तथा कई अन्य औरतें भटकी हुई उनकी छत्र–छाया में आ गयी थीं। यह मैं तुम्हें कोई कहानी नहीं सुना रही, यह भोगी हुई कहानी है और जिन्होंने भोगी थी वे हमारे घर आये थे और उन्होंने ही यह आप बीती कथा सुनायी थी, जो मैं तुम्हें सुना रही हूं। सो बीबी ! वह साधु जो भजन करने वाला सिख था, जंगल में इसलिए रहता था कि आवश्यकता पड़ने पर अपने बीस–तीस भाइयों की सहायता कर सके। अपनी कमाई के अन्न से वहां शरण ग्रहण करने वाले भाइयों के लिए लंगर चालू रखता था। आग अभी काफी दूर थी परन्तु हवा में उसकी गन्ध से वह समझ गया कि दावानल है जो आकर उन्हें जला देगी। उसका तो धुआं ही पास आकर दम घोंट देगा। फिर सोचने लगा कि क्या आग से बचने का कोई उपाय हो सकता है? वाहिगुरू दीन दयाल है। उसकी बुद्धि में विचार कौंधा कि आग का इलाज आग है। उसने तुरन्त आग जलाकर आस–पास खेती को लगा दी। कुछ ही क्षणों में वह आग फैल गयी और चारों तरफ जलाती चली गयी। यह आग जैसे–जैसे खेत जलाती गयी–दूर और दूर होती गयी और कुटिया के आस–पास के खेत, घास तथा धरती साफ़ होते गये। खेती से उठने वाली लपटें जल्दी बुझ भी गयीं। उस दावानल के पास आने से पहले ही कुटिया के आस–पास आधा–आधा मील से अधिक जगह जल चुकी थी और जलने के योग्य कोई पदार्थ शेष नहीं बचा था। इसलिए वह बड़ी आग कुटिया से आधा–आधा मील दूर ही रूक गयी और सारा परिवार जलने से बच गया। बीबी जी ! यदि वह सिख बुद्धि से काम

न लेता तो उस बड़ी आग ने तो क्या, उसके धुएं ने ही नष्ट कर देना था। इसी प्रकार बीबी जी ! हमारे सबके सिर पर एक तरह का अकेलापन छाया हुआ है जो हमें सभी दृश्यमान सम्बन्धों से अलग कर देगी। उस अकेलेपन ही विह्ललता नरक के समान होगी। इसलिए अभी समय है कि हम अकेले रहने का ढंग सीख लें और अपने आसपास अकेलापन ही अनुभव करें। अपनी वासनाओं की भुजाएं अपने आप में ही समेटे रहें जिससे उस भयावह अकेलेपन से पहले हम इस अकेलेपन को पहचान लें। यह अकेलापन हमें उससे बचा लेगा। इस अकेलेपन में हम सुखी रहें। अकेलेपन में ईश्वर के आश्रय पर रहें, फिर अकेलापन भी भाग्यशाली हो जाता है। हम फिर अकेले नहीं रहते, हमारे साथ हमारा मालिक स्वयं आ निवास करता है।

फातिमा–आप सच कहती हैं, और कई बार मुझे समझा चुकी हैं, पर मैं क्या करूं? मेरा मन समझता तो है पर विश्वास नहीं जमता। कोई ऐसी कृपा करो कि जो मैं समझती हूं वैसी अवस्था का अनुभव भी करूं।

सतवंत कौर– हमारे धर्म में यह उपदेश है–

"जीवित मरै मरै पुनि जीव"

जीते जी मरे और मरकर फिर जिये, उसी को इस मानुष देह का आनन्द मिलता है। इसलिए इसी बात का साधन करना चाहिए। हमारे देश में कभी–कभी शीतलता का रोग फैलता है–हजारों आदमी उससे मर जाते हैं, परन्तु बुद्धिमानों ने उसका एक उपाय ढूंढ़ लिया है। सर्दियों में पहाड़ों से कुछ लोग आते हैं, उनके पास शीतला के सूखे हुए दानों की पिसी हुई भस्म होती है। वह क्या करते हैं कि बांह पर सुईयों का गुच्छा चुभाते हैं और बाद में वह भस्म उस पर डाल देते हैं, जिससे एक बड़ा–सा छाला बन जाता है। कोई पन्द्रह–बीस दिन वह कष्ट देता है, परन्तु फिर उसको शीतला नहीं निकलती। इन बातों का मतलब यह है कि भावी दुःखों से यदि बचना हो तो थोड़ा उसी प्रकार का दुःख किसी न किसी रूप में पहले भोगकर बडे दुख को टाला जा सकता है। जैसे इस समय आपको वियोग के

दु:ख का आभास हो रहा है और फिर मौत का दु:ख दिखायी दे रहा है। यदि तुम जीते जी स्वंय को अलग रहने का ढंग सीख लो तब वियोग, अकेलापन और मौत का भय तुम्हें भला क्या व्यापेगा? आपको फिर कोई भी दु:ख हिला नहीं सकता।

फातिमा– कृपा करके मुझे उपाय बताओ?

सतवंत कौर– उपाय कठिन नहीं है। वाणी के आनंद को तुम देख चुकी हो। यह आनंद तुम्हारे अन्दर की मैल निकालने में समर्थ है और मैं देख रही हूं कि तुम्हारा हृदय शुद्ध हो रहा है। अब तुम विचार से काम लो। सभी पदार्थों का त्याग करो, कोई पदार्थ सदा रहने वाला नहीं है। कोई सुख सदा टिकने वाला नहीं है, कोई प्रसन्नता बिना आश्रय के नहीं अर्थात केवल अपने आधार पर नहीं है। जो खुशी दूसरों के सहारे से प्राप्त होती है वह एक जैसी रहने वाली नहीं हो सकती, क्योंकि वह जिन पदार्थों और जीवों का सहारा लेती है, वे सभी अटल नहीं, वे सभी नाशवान है। ऐसी खुशी बालू की दीवार की तरह है, अंत में गिरेगी ही। इसलिए हमें अभी से पदार्थों को जैसे वे हैं, वैसा ही समझकर उनसे मन मोड़ लेना चाहिए। पलायन न करें, बीच में रहें, व्यवहार करें परन्तु विलग रहकर। शहद की मक्खी की तरह मिठास लें, परन्तु फूलों में फंस न जाएं, जैसे कि घरेलू मक्खी मर्तबान में बैठकर मीठे में फंस जाती है। इस प्रकार हम इनके वियोग के दु:ख से छुटकारा पा जायेंगे। हमारे जीवन के दिन अच्छी तरह बीतेंगे और आखिरी समय में पीड़ा नहीं होगी। दूसरा काम हम यह करें कि उस वास्तविक खुशी को ढूंढें जिसका आधार या आश्रय ऐसा हो जो सदैव अटल हो, जिसके खो जाने का संशय न रहे। ऐसा आनन्द हमारे अन्दर है और वह आधार भी हमारे अन्दर है। कहते हैं कि कस्तूरी मृग को जवानी चढ़ते ही खुशबू की मस्ती जंगल में भटकाती है। परन्तु जब दैव वश थककर वह गिरता है और नासिका अपनी ही नाभि से टकराती है तब खुद में ही मस्त हो झाड़ियों में सिर मारने से हट जाता है। तभी अपने अन्दर आनन्द और आनन्द का आश्रय दिखाई देने लगता है, तब आनन्द भोगने वाला बाहर नहीं भटकता। हमारे सतगुरू का कथन है :

'बाहरि दूढन ते छूटि परे
गुरि घर ही माहि दिखाइया था।।'

फातिमा– बीबी जी ! आपकी बातें मन को मोह लेने वाली है, और सुन–सुनकर मेरा मन आप में जुड़ रहा है और मुझे अनुभव होने लगा है कि यदि बाह्य आकर्षण टूटकर स्वयं के अन्तर में गांठ पड़ जाए तो अवश्य कोई अपार सुख प्राप्त होगा। परन्तु आप मुझे अच्छी तरह समझाओ। ऐ परमेश्वर की प्यारी ! मैं आपकी बहुत ऋणी हूं, मुझ पर जो उपकार आपने किये हैं, मैं कभी उनसे उत्रऋण नहीं हो सकती। मैं किसी भी युग में इस देनदारी को देने के योग्य नहीं हूं। जहां पहले आपने मेरे अवगुणों से आंखें मूंदकर और दया दिखाकर मुझ पर कृपा की है, आज भी मुझ पर कृपा करके मेरे मन के भ्रमों को दूर करो।

सतवंत कौर– सुनो बीबी ! मैंने कोई उपकार नहीं किया है। उपकार करने वाला तो गुरु है। हां, यदि किसी का भला इस निष्क्रिय देह के माध्यम से हो तो इस तन की सफलता है। अब मैं तुम्हें एक रहस्य बताती हूं। मुझे वचन दो कि सिर चला जाए तब भी यह रहस्य किसी अपात्र को नहीं बताओगी।

फातिमा– मैं वचन देती हूं, परन्तु एक विनती है कि जैसे आपने मुझ पर कृपा की है, यदि कोई अवसर मुझे मिले तो उस समय मैं क्या करूं?

सतवंत कौर– जैसा अवसर हो वैसा व्यवहार करो। यह कोई कंजूस का धन तो है नहीं? यह सच्चे सतगुरू जगतदाता की देन है जो प्रत्येक के लिए खुली है और मुफ्त है, कोई भी उपभोग करे और व्यवहार में लाये, बांटे। परन्तु इतना विचार आपमें अवश्य होना चाहिए कि मोतियों की कद्र अंधे नहीं कर सकते। जिसे कद्र नहीं उसके सामने रखी अमूल्य वस्तुएं भी ऐसे ही रखी रह जाती है, वहां सच्चे सतगुरू का यह आदेश है कि पहले अपात्र को पात्र बना लिया जाए। जब पात्र बन जाए तो शिक्षा तो गुरू की ही बांटी जा रही है। इस सम्बन्ध में मैं तुम्हें एक कथा सुनाती हूं :

एक अशिक्षित पंडित ने एक राजा को वश में कर लिया। उस पंडित को कुछ समय के लिए बाहर जाना पड़ गया। राजा मेरे वश में रहे यह सोचकर वह राजा को एक श्लोक कंठस्थ करा गया और

बोल गया कि जो भी पंडित आये इसके अर्थ पूछना और जो बताये कि 'देवी पीढ़े तो बैठी मरूंडे खा रही है' उसको पंडित समझना, अन्य सबको मूर्ख। अब जो भी पंडित आता उस श्लोक के अर्थ न बता पाने के कारण अपमानित होता, क्योंकि वे सभी ठीक अर्थ बताते थे और राजा को जो अर्थ याद कराये गये थे वे ग़लत थे। एक बार वहां एक पंडित जिनका नाम कालिदास था, आ गये। वे जानते थे कि राजा मूर्ख है। ऐसे ही विद्वानों का अनादर करता है, इसको प्रकाश देना चाहिए। जब राजा ने उससे भी अर्थ पूछे तो कालिदास ने कहा कि इसके अर्थ के लिए छः मास का समय चाहिए और प्रत्येक दिन आप दो–चार घड़ी मेरे साथ रहिए। अन्यथा इसके अर्थ नहीं निकल सकते। इन छः महीनों में कालीदास ने राजा को व्याकरणशास्त्र और कुछ काव्यशास्त्र सिखा दिया। फिर उसने कहा–अब आप स्वयं ही इस श्लोक के अर्थ करिए। जब राजा ने श्लोक का अर्थ किया तो वह वही था जो सारे पंडित कर रहे थे। उसमें से न देवी निकली, न पीढ़ा, न मरूंडे। इसका भावार्थ यह है कि राजा को सच्चे अर्थ की समझ और कद्र नहीं थी। कालिदास ने सही अर्थ की पहचान और कद्र सिखा दी। जब पहचान और कद्र करनी सीख गया तो अर्थ स्पष्ट थे, कहीं छिपे हुए नहीं थे। इस सम्बन्ध में गुरू ग्रंथ साहिब का कथन है :

"राम पदारथु पाइकै कबीरा गांठि न खोल।।
नहीं पटणु नहीं पारखू नहीं गाहकु नहीं मोल।।२३।।"
"कबीर राम रतनु मुखु कोथरी पारख आगै खोलि।।
कोई आइ मिलैगी गाहकी लेगी महंगे मोलि।।२२५।।

इसका यह अर्थ नहीं कि इसे रूपये लेकर सचमुच में महंगे भाव बेचना है। महंगे मूल्य से तात्पर्य केवल कद्र से है। अपात्र को दिया गया पदार्थ व्यर्थ जाता है–जैसे कि अंधे के हाथ पर दीपक रख देना। हां, परोपकारियों का धर्म है कि पहले हठ और अविद्या से मुक्त करें और कद्र का दीपक जला दे। फिर इस पदार्थ का दिया जाना गुणकारी होता है। सच्चे धर्म का उपदेश देने से पहले धर्म की

पिपासा उत्पन्न करनी चाहिए[1]। जब तक आवश्यकता नहीं, कद्र नहीं, तब तक पदार्थ का क्या मूल्य है। अपात्र को बताये पदार्थ का अनादर होता है और स्वयं को भी दुख होता है। सयाने इस बात को एक कहानी द्वारा बताया करते हैं कि एक ऊंचे वृक्ष पर बिया ने नीड़ बनाया। एक दिन मूसलाधार वर्षा हुई। बिया और बियो अपने घौंसले में मजे से बैठे हुए थे और दो जुगनू बीच में रखे हुए थे, जिनसे घर प्रकाशित हो रहा था। इसी समय एक बन्दर कांपता हुआ एक शाखा से दूसरी पर कूदता दुखी हो रहा था। उसे दुखी देखकर बिया ने उपदेश दिया हे मनुष्य की सूरत वाले पशु, दो हाथ–पैर वाले ! यदि तू पहले घर बना लेता तो आज क्यों दुखी होता। बन्दर को क्रोध आ गया कि यह कौन होता है उसे उपदेश देने वाला। उसने झुंझलाहट में बिया का घोंसला तोड़ दिया। इसलिए बीबी ! अपात्र को धर्म का उपदेश देना उचित नहीं। उसे तो पहले धर्म की कद्र करने का उपदेश देना ही ठीक है।

बीबी सुनो, सबसे पहली आवश्यकता है कि हमारे स्वभाव में नेकी हो। बुरा करने से अपने को रोकें, पाप से डरें, बुरी इच्छाओं पर अधिकार पायें, स्वयं पर अधिकार करने का ढंग सीखें। इस काम के लिए वाणी की सहायता लें। मन स्वच्छ हो और बुराई से सहज ही विमुखता हो इसीलिए गुरूजी ने वाणी के अभ्यास को प्रमुखता दी है। वाणी हृदय को शुद्ध करती है और विकारों को दूर करती है, इन दो बातों के साथ ही प्रेम को बढ़ाती है। ये विशेषताएं किसी और कर्म में नहीं हैं। इसलिए यह कर्म मुख्य कर्मों में से एक है और इसीलिए अब तक तुम्हें वाणी के अभ्यास में ही मैंने लगाकर रखा। अब मैं तुम्हें वह भेद बताती हूं जिससे तुम्हारा हृदय ऐसा निर्मल हो जायेगा जिससे परमेश्वर का प्रतिबिम्ब झलकने लगे और तुम आठों पहर उसके संग रहो।

मुझे पता नहीं कि तुम्हें यह बताना मेरे धर्म–भाइयों को कैसा लगे, या पंथ की क्या आज्ञा है, परन्तु मैं आप में स्वच्छता की झलक देखती हूं इसीलिए विवश होकर मैं तुम्हें बता रही हूं। वैराग्य और प्रेम ने

1. जिसु जन कऊ प्रभ दरस पिआसा।।
नानक ताकै बलि बलि जासा।। (सुखमनी)

आपकी दशा ऐसी कर दी है कि बिना बताये अब आपका जीवन सुखी नहीं रह सकता। (जरा रूककर) परन्तु मैं क्या करूं? पिताजी ने गुरूमुखता की बातें बताकर उनका अभ्यास भी कुछ करवाया था। हां सच, अब अवसर है...हां, किन्तु फिर भी मैं अबोध हूं...आज का दिन ठहर जाओ...मैं रात को बाहर जाऊंगी। एक गुरूमुख प्यारे देश से यहां आये हुए हैं, उनसे पूछकर कल–परसों तुम्हें बताऊंगी।

यह सुनकर फातिमा बोली–बीबी जी ! जैसे आपकी इच्छा। कहना उचित तो नहीं, परन्तु मेरा खोटा दिल कहे बिना रहता भी नहीं, कहीं आप जाकर नहीं आये तो मैं क्या करूंगी?

सतवंत कौर– बीबी जी ! सिख झूठ नहीं बोला करते। मैं ज़ब देश को जाऊंगी, बताकर जाऊंगी, चुपचाप और चोरी से नहीं जाऊंगी।

बात यह है कि सौभाग्यवश मुझे यहां वे गुरू के लाल मिल गये हैं ज़िन्होंने मुझ पर बहुत कृपा की है। जितने दिन आपसे विलग रही हूं, उनकी संगत में रही हूं। पिताजी के बीजे हुए बीज को उन्होंने प्रफुल्लित कर दिया है। जो बातें मैंने की हैं, उन्हीं की कृपा के फलस्वरूप की हैं। एक बात की मुझे शंका है। मैं उनसे स्पष्ट करके आपको फिर आकर बताऊंगी।

इस प्रकार की बात–चीत के बाद सतवंत कौर ने आज्ञा ली। फिर से मर्दाना वेश धारण करके चुपचाप बाहर निकल गयी और एक गुप्त स्थान पर जहां पर वे गुरू के प्यारे रहते थे, उनसे जा मिली।

: १४ :

वायदे के अनुसार दो दिन के बाद सतवंत कौर अपने वचनों से बंधी गुप्त रास्ते से फातिमा के घर पहुंची। फातिमा के लिए मानों खुशी का चाँद चढ़ गया। सतवंत कौर भी प्रेम से मिली। शाम हो चुकी थी। रात भी बीत गयी। सुबह चार बजे उठकर स्नान करके, स्वच्छ वस्त्र पहनकर फ़ातिमा चुपचाप सतवंत कौर के पास आ गयी। वह प्रेम में मग्न बैठी थी। वह भी पास बैठ गयी। धीरे–धीरे पाठ करती रही। कोई पांच बजे सतवंत कौर ने आंखें खोलीं, चेहरे पर लालिमा थी। नेत्र ज्योतिर्मय थे।

फातिमा की ओर देखकर बोली– बहिन जी ! गुरू नानक देव जी ने कलयुग में एक अगम (परमेश्वर नाम) का कुवां खोदा। उसके स्त्रोत पर एक सुन्दर मन्दिर बनवाया। उसमें जल का एक सुन्दर हौज़ बनाकर कुछ ऐसा कौशल दिखाया जिससे कि वह हौज़ हर समय भरा ही रहता है। समीप ही लोटे–कटोरे पड़े थे जिनसे कोई भी थका–हारा, दुखी व्यक्ति जल पीकर तृप्त हो सकता है। इसलिए जो कोई पूर्व जन्म का धनी यहां आकर उनके इस आदेश को मानता हो कि 'हुकम रजाई चलणा नानक लिखिआनालि' वह तो स्वयं इस जल को पिये, नहाये, उड़ाये, कुछ भी करे उसके अधिकार में सभी कुछ है। परन्तु ऐसा जीव करोड़ों में एक होता है। दूसरे साधारण ज़न के लिए सत्संग की आवश्यकता है। वे सत्संग के साथ ही यहां पहुंचते हैं। सत्संगत उन्हें कटोरे भरकर पिलाती है और धीरे–धीरे वे रसलीन और ईश्वरेच्छा पर खड़े हो जाते हैं। सो गुरू तो नानक देवजी ही हैं, आदि गुरू हैं, अकालपुरूष द्वारा सज्जित गुरू गोबिंद रूप हैं। वे मालिक रक्षक हैं। मेरा तुम्हारा सम्बन्ध सत्संगति का है, जैसे सत्संगत से मैं कृतार्थ हुई हूं ऐसे ही तुम भी होती हो, जो प्याला मुझे खुले दिल से सत्संगत द्वारा पीने के लिए दिया गया था, वह प्याला मैं तुम्हें देती हूं। गुरू नानक की देन अटूट है।

"जगति भंडार गुरि नानक कउ सरपे
फिरि लेखा मूल न लइया।।"
"खावहि खरचहि रलि मिल भाई।।
तोटि न आवे बधदे जाई।।"

वह प्याला आपके लिए हाजिर है, पियो दिन रात पियो और सदा प्रसन्न रहो। यह कहकर सतवंत कौर ने खालसा पंथ की अमृत की मर्यादा के सम्बन्ध में बताया। फिर समझाया कि वह मर्यादा उसके लिए हो सकनी कठिन है, इसलिए मैं तुम्हें अभी नाम में लगा देती हूं। वह समय भी गुरू लायेगा जब सहजधारियों को भी हमारे धर्म में नाम का दान मिल जायेगा।

यह कहकर सतवंत कौर ने उसे फिर से नाम सिमरन में लगा दिया। फातिमा पहले से ही जपुजी साहिब का पाठ करती थी और मूल मंत्र का जाप करती थी।

सतवंत कौर– फातिमा बीबी, हमारा मन अनेक विचारों में रहता है। जैसे विचार वैसा ही स्वभाव या जैसा स्वभाव वैसे ही विचार। हमारा स्वभाव अच्छा नहीं। यदि हम अच्छे–से–अच्छे अर्थात परमेश्वर का विचार हर समय रखें तो अच्छे हो जायेंगे। इसलिए हमारे विचार में सदा रब रहे, अर्थात् हम रब को याद रखें, उसका स्मरण करते रहें। "गुरा इक देहि बुझाई।। सबना जीवां का इक दाता सो मैं विसरि न जाई।।" यदि मन लगा करके हम सिमरन में नहीं रह सकते तो हम परमेश्वर के नाम का जाप करें। जप करने से 'नाम' सिमरन में आ जाता है। इसलिए आपको परमेश्वर जो मैंने बताया है, 'वाहिगुरू' इसका जप करना है। रसना से जपने को नाम जपना कहते हैं। ध्यान या ख्याल या तवज्जो इसी नाम में रखनी है। अन्य विचारों में जाने से मन को रोकना है। इस प्रकार जप करने से स्वामी की याद मन में धर क़र लेगी। इसका प्रभाव यह होगा कि मन एकाग्र होगा। ईश्वर की 'है' (ईश्वर का अस्तित्व) अन्दर प्रतीत होगा। मन इन्द्रियों को इधर–उधर भागने से रोकेगा और शारीरिक इन्द्रियों का दबाव कम हो जायेगा। फिर अन्दर स्वच्छता जैसी अनुभव होगी। सब निर्मल–निर्मल और सुन्दर–सुन्दर लगेगा। अंत में वाहिगुरू का नाम–रस लक्षित होने लगेगा। यह परिश्रम तुम्हें फल देगा, करतार कृपा करेंगे। और मुझे भरोसा है, कि फिर अमृतपान कराकर तुम्हें सिखी का दान प्राप्त होगा। तेरा जन्म किस कुल में! तेरा पति दूसरे मत का! तुम्हारा रहना–सहना दूसरा! अमृत! परन्तु अच्छा समय गुरूजी लायेंगे और दरगाह में तेरी सुनी जायेगी। जो कुछ बताया है सम्भाल कर रखना। चौराहे में पड़ा बीज का दाना कौड़ी में भी नहीं बिकता, पर धरती में धंसकर और सिंचित होकर वही दाना पौधा बनता हैं और फलता है। इसी प्रकार कठोर व्यक्ति गुरू नानक देव की शिक्षा की कद्र नहीं करते परन्तु सुपात्रों के हृदय में जमकर वही (शिक्षा) फिर अमृत का वृक्ष बन जाती है। वास्तविक कल्प–वृक्ष यही होता है। गुरू नानक साहिब जी ने कुछ छिपाकर

1. वाहिगुरु पुन मंत्र सु जाप, कर इसनान पढे जप जाप।
संध्या समं सुनं रहिरास, कीरतन कथा सुनै हरिजास।

नहीं रखा और न ही सत्संगत में कुछ छिपाव है। यह प्रकट पदार्थ अपने प्रकटीकरण की बहुलता में ही रमा हुआ है जैसे बिजली की अत्यंत तेज चमक में आंखें बंद हो जाती हैं। इस प्रकार के पदार्थ का जो लोग मूर्खों के हास्य का विषय बनाते हैं, वे गुरू परमेश्वर का निरादर करते हैं।

कुछ समय तक दोनों चुप रहीं। फिर सतवंत कौर ने फारसी भाषा में अनुवाद किया हुआ निम्नलिखित यह 'प्रश्नोत्तर भाई नंद लाल जी का', जो कि वह लिखवाकर साथ लायी थी, उसे दिया और ताकीद की कि यही उपदेश आपका अगुआ और सहायक होगा।

श्री गुरू वाकन को तज कै; पुन औरन वाक रिदै जु लिजावैं।।
लोक परलोक सु ठौर नहीं तिन, नरकांतर बीच भ्रमावै।।
तां नर सो यमधाम भरो, दिन रात हमेशहि सो दुख पावैं।।
आवन जावन बीच फिरैं यमकी सदही पुन चोट न खावैं।।
गुर सिख रहित सुनहु मेरे मीत, परभाते उठकर हित चीत।।
इनमें नेम जु एक कराई। सो सिख अमर पुरी महि जाई।
तीन रूप हैं मोहि के सुनो नंद चित लाइ।
निरगुण, सरगुण, गुरूशब्द कहों तोहि समझाइ।।
एक रूप तिंह गुण ते परे। नेति नेति जिह निगम उचरे।
घट–घट व्यापक अंतरजामी। पूर रह्यो ज्यो जल घट भानी।
दूसर रूप ग्रंथ जी जानहु। अपन अंग मेरे कर मानहु।
रोम–रोम अक्खर सो लहों। बात यथार्थ तुम सों कहों।
सबद सुणौ गुर हित चित लाइ। ज्ञान शबद गुर सुने सुनाइ।
जो मन साथ चाहि कर बात। पढ़ै ग्रंथ बिचारहि साथ।
तीसर रूप सिख है मोर। गुरबाणी रत जिन निस भोर।
विश्वास प्रीत गुर शबद जु धरे। गुरू का दरशन नित उठ करे।
गुरू द्वारन का दरशन करे। परदारा का त्यागन धरे।
गुय सिख सेव करे चित लाइ। आपा पर का सगल मिटाइ।
"ऐसे गुर सिख सेव की मोहि पहुंचे आइ।
सुनहु नंद चित देइके मुक्त बैकुण्ठे जाइ।"

भाग्यशाली फातिमा के धन्यभाग जो अब तीन पदार्थों की स्वामिनी हो गयी। एक तो वाणी के मूल मंत्र की ज्ञाता हो गयी, दूसरा गुरू मंत्र अर्थात् नाम की शिक्षा मिल गयी, तीसरा सिख धर्म के नियम भी मालूम हो गये। फातिमा परमतत्त्व के मार्ग पर चल पड़ी और साईं की याद में लगाये रखने वाला 'नाम अभ्यास' फातिमा को प्राप्त हो गया। हां, अन्तरात्मा में 'जगत के मूल' के साथ जुड़ा रहने वाला वृक्ष उसे मिल गया।

सतवंत ने फिर इन तीन शिक्षाओं से रक्षा करने के लिए तीन शस्त्र भी बता दिये—एक वाणी या 'नित्य—नेम', दूसरा विनती करने का ढ़ंग, तीसरा कृतज्ञता का स्वभाव। फातिमा को उसने यह भी समझा दिया कि 'प्यारे वाहिगुरू को याद रखना', उसके साथ प्रेम से रहना, मानों मिलकर रहना है, किन्तु 'याद रखना' एक सूक्ष्म गति है, इस सूक्ष्म गति को प्राप्त करने के लिए 'नाम' का जप करते हैं। जीभ से जपा नाम धीरे—धीरे मन को एकाग्र करता है। इस प्रकार जपा हुआ नाम खुद ही प्राणों में प्रवेश करता है। फिर हृदय में जाकर सदा 'याद' का रूप धारण कर लेता है।[1] फिर ऐसे लगता है कि रोम—रोम में सिमरन है। फिर यों लगे कि पृथ्वी आकाश सभी में नाम व्याप्त है। परन्तु हां, मूल नाम का 'जपना' है।"

रसना जपै न नामु तिलु—तिलु करि कटीऐ।
हरिहां जब बिसरै गोबिंद राय दिनों दिन घटीऐ।।

रसना के जाप को सभी फल लगते हैं, उसे छोड़ना नहीं चाहिए। यहां से नाम स्वतः हृदय—प्राणों में जाता है।

इस प्रकार फतिमा जब जान गयी तब—'गुरमुखि गाडी राह चलाइआ' की पक्की पथिक बन गयी।

प्यारे खालसा जी। परस्पर हमदर्दी के असूल को समझकर अधिकारी भाइयों के साथ व्यवहार करो। आडम्बर से बचो, भ्रम न करो, और न ही भ्रम में पड़ो। यथा—गुरू जी के निजी कवि सेनापति ने—'गुरू शोभा' में लिखा है :

---

1. बिनु जिह्वा जो जपै हिआय।। को जाणै कैसा नाऊ (मला : म:।)
'गुरमुखि रोम—रोम हरि ध्यावै।'

खालसा खास कहावै सोई। जांके हिरदै भरम न होई।।
भरम भेख ते रहै निआरा। सो खालस सतिगुरू हमारा।।

दूसरी ओर आजकल सत्संगत से नफरत और खुद ही तीस मार खां बन बैठने की अकड़ आ रही है। नाम रस लेने वाले की जरा भी कद्र नहीं है। खोटे कर्म और उच्च कर्म करने वाले को एक बराबर समझने को भूल व्याप्त है। शुभ संगति की खोज नहीं। इन्हीं भूलों के कारण सिखी जीवन कम हो रहा है और पंथ की रूहानियत (आध यात्मिकता) खत्म हो रही है। दूसरी ओर मामूली जीव थोड़े परिश्रम या समझ के आधार पर ही दसों पातशाहियों की बराबरी का दावा करते हैं, गुरू साहिब से दूर ले जाते हैं। ऐसे आडम्बरियों से बचना चाहिए। 'गुरमुख दा मेल साध दा संग' सदा अच्छा है, सदा मांगो।

फातिमा अब कृतकृत्य हो गयी। सुबह होने वाली थी। औरों के उठने से पहले फातिमा का घर में पहुंच जाना आवशयक था। वह उठी, कैसे आनन्द को अनुभव कर रही थी वह ! और उससे कैसी कृतज्ञता का स्रोत फूट रहा था। नेत्र जल से भर गये, शरीर के रोम खड़े हो गये और वह विवश–सी सतवंत कौर के चरणों पर गिर पड़ी। सतवंत कौर ने जल्दी से उसे उठाकर आलिंगन में ले लिया और कहा–"बीबी ! तू मेरी अपनी है। अपनों के लिए अपनों की रूचि से अलग काम नहीं करते। संभलो और नाम जपो। करनी परवान, करनी परवान।

यह सुनकर फातिमा ने और भी झुककर माफी मांगी और कहा कि प्यार और कृतज्ञता के आवेग कई निरादरपूर्ण कृत्य करा देते हैं। सजनी ! दिल की लगी के मामले न्यारे होते हैं।

कुछ समय बाद फातिमा तो चली गयी और सतवंत कौर जाने के बारे में सोचने लगी। इस समय उसका फातिमा के प्रति मोह जागृत हो गया तो अपने मन को समझाने लगी। हे मन ! यह मोह हानि का मूल है। इसलिए कबीर जी का कथन है–

कबीर सिख साखा बहुते कीए केसो किओ न मीतु।।
चाले थे हरि मिलन कौ बीचै अटकयो चीतु।।

हे मन ! यदि मुझमें प्रेम जागृत न होता तो इसका लाभ कैसे होता। प्रेम का जागृत होना बुरा नहीं पर मुझमें अहं और मोह जागृत न हो। इस प्रकार के विचार से सतवंत गुरू नानकदेव जी के प्रेम में डूब गयी और जो उपकार उसने किया था उसको गुरू के हुक्म में पूरा करना अपना कर्त्तव्य समझ लिया। वह 'धन्य गुरू नानक' की धुन में मग्न होकर उच्च स्तरों पर पहुंच गयी और गुरू चरणों से लिपट वह ऐसे प्रेम में डूब गयी कि शेष सभी प्यार तुच्छ प्रतीत होने लगे। कुछ दिन फातिमा के पास ही सतवंत कौर रही और उसका हाल देखती रही कि जो रंग उसे चढ़ाया गया था, क्या असर करता है? सो उसने देखा कि असर ठीक हो रहा है। फातिमा का सिदक (धर्मनिष्ठा) दिन–दिन उन्नति करता गया। नाम का प्रेम बढ़ता रहा। ईर्ष्या और अभिमान उसे छोड़ गये। हर समय वह प्रसन्न–चित्त नजर आती। उसकी वाणी मधुर हो गयी थी और मन की कड़ुवाहट दूर हो गयी थी। एक और काम यह हुआ कि उसने अपने बेटे को भी इसी रास्ते पर लगाने के प्रयत्न आरम्भ कर दिये। उसे सुबह उठाती और प्रार्थना करने का ढंग सिखाती। इतना ही नहीं उसने पति के कानों में भी यह बात डाल दी कि बच्चे के बाल कितने सुन्दर हैं, आप तो ऐसे ही कटवा देते हैं। यदि इन्हें बढ़ने दो तो कितने सुन्दर लगेंगे। वह कभी हंस देता, कभी हां कर देता। कभी पंजाब से जब सिखों के विद्रोह की खबर आती तो खान बात करता और कुछ बढ़ा–चढ़ाकर कहता तब अकारण फातिमा की आंखों में आंसू आ जाते और कहती कि उनको आप लोग क्यों इतना कष्ट देते हैं? यदि कोई हमें इसी तरह घर आकर कष्ट दे तो हम कितना बुरा मानेंगे? इसी तरह आपको भी उनके घर जाकर उनको दुःख नहीं देना चाहिए। बादशाहों को चाहिए कि अपने–अपने देश में राज्य करें, दूसरे के देश को न छीनें। दूसरे देश के साथ तो तब लड़ाई करनी चाहिए जब कोई राजा किसी देश को छीनने के लिए आये। जब कोई किसी अन्य पर आक्रमण करे तो अन्य राजा उसकी रक्षा करें। किसी का घर छीनना, किसी का देश छीनना एक बराबर पाप कर्म हैं। जो बादशाह दूसरे देश को गुलामी में रखता है वह सारी दुनिया की सामूहिक उन्नति के रास्ते में पत्थर रखता है अर्थात् मनुष्य मात्र को आगे बढ़ने से रोकता है।

इस तरह दो महीने बीत गये। अब सतवंत कौर को विश्वास हो गया कि बीज फलेगा, मुझे अब चलना चाहिए। सो उसने तैयारी की। फातिमा को बता दिया कि अब मुझे जाना है। वह भला कहां मानती? आखिर एक दिन उसने कह दिया कि वह अब किसी समय भी चुपचाप चली जायेगी क्योंकि तुम खुशी से जाने नहीं देती हो। फ़ातिमा ने बहुत जोर लगाया, पर –बद्धे कदी न रहि सके पंछी ते दरवेश, सभा दाउ जद फब गिआ निकल तुरे परदेश। (पक्षी और साधु कभी बंध कर नहीं रहते, जब अवसर मिल जाता है वे परदेश के लिए निकल पड़ते हैं।)

एक दिन रात के दो बजे जब फातिमा सोयी हुई थी सतवंत कौर उठी और मर्दाने कपड़े पहन कर जैसे पहले निकली थी, वैसे ही फिर निकल गयी। जिस घर में वह कैद हो कर आयी थी, उस घर के लोगों को उसने कैद से, मौत से और नरक से मुक्त करा दिया था। सतवंत कौर अंगूरों का आखिरी गुच्छा खाकर अपने रास्ते चली गयी। फातिमा ने कोई दो सौ मोहरें तथा कुछ अन्य सामान अर्पित किया था, जो उसने अस्वीकार कर दिया था। परन्तु वह जबरदस्ती फेंक गयी थी। वह सब कुछ वहीं छोड़कर सतवंत कौर खाली हाथ वहां से चली गयी।

वहां से निकल कर सतवंत कौर दबे पांव उस कन्दरा में पहुंची जहां महात्मा रहते थे। यह एक खाई थी जो एक टीले की ओट में थी। अन्दर की ओर कुछ आगे चलकर कुछ हेर फेर के पश्चात् एक खुला स्थान था। जिसके दूसरी तरफ भी एक गुप्त सा रास्ता था। जब सतवंत कौर अन्दर गयी तो क्या देखती है कि मंद–प्रकाश करता हुआ दिया जल रहा है और महात्मा पालथी मारकर बैठे हुए हैं। सतवंत कौर को देखकर मुस्कराये–फिर बोले "सुनाओ बच्चा ! गुरू का कार्य संवार आयी हो?" सिर झुकाकर विह्नता से सतवंत कौर ने कहा–'महाराज ! जैसी आपकी प्रेरणा थी, वैसा ही हो गया। नाम की शिक्षा दे आयी हूं जैसे आपने दी थी। मुझसे भूल हो सकने में कुछ कमी तो नहीं थी परन्तु आपने पूरी रक्षा की। श्री गुरू ग्रंथ साहिब का यह कथन सहायता करता रहा–"कबीर भार पराई सिर चरै चलिउ चाहै बाट।। अपने भारहि ना डरै आगै अउघट घाट।।" वाहिगुरू ने हाथ की ओट देकर बचा लिया।

यह उत्तर सुनकर महात्मा जी ने प्रसन्नतापूर्वक कहा–'पुत्री ! तू धन्य है ! तेरा जन्म धन्य है। हमारी शिक्षा ध्यान रखना। परमेश्वर की प्राप्ति हो जाने पर भी बंदगी मत छोड़ना[1]। और परमेश्वर का निर्मल भय दूर मत करना। नाम से कभी मत उकताना। कलयुग में इन दो साधनों के बिना साधु मारा जाता है। महाराज जी कहते हैं–"नानक भै विणु जे मरै मुहि कालै उठि जाई।" वह परब्रह्म का निर्मल भय सुखों का मूल है। प्रायः विभिन्न मतों के फकीर स्वरूप की पहचान के समीप पहुंच कर या ऐसा सोचकर कि हम पहुंच गये हैं, निडर और गुस्ताख हो जाते हैं, परन्तु वास्तव में ऐसा समझना पतन के समान है। उस समय एक अति सूक्ष्म अहं घेर लेता है। इसलिए पता नहीं लगता कि मैं स्वयं स्वरूप स्थित हूं या अहम् के एक सूक्ष्म पारदर्शक पर्दे में हूं। इस पर्दे को महाराज ने तकली के पंखों से उपमा दी है। जब तक तन है, तब तक कर्त्तापुरूष का अदब करना और उसे निर्मल–युक्त प्रेम रखना चाहिए। साईं से मिलन अभय है, परन्तु सूक्ष्म अहं भी अलगाव का चिह्न है। देखो जिस स्त्री को उसका पति पटरानी बना दे, सभी प्रकार की आज्ञाएं देने के अधिकार प्राप्त करा दे, स्वयं भी उसके कथनानुसार चले, और लाड–भी सहारे, उस पटरानी का धर्म तब भी आदर है, क्योंकि आदर द्वारा ही वह वहां तक पहुंची है। यदि आदर छोड़ेगी जबकि अधिकार की प्राप्ति रह भी जाए तब भी निरादर अलगाव का चिह्न है क्योंकि उसमें अहं होता है।

यह उपदेश सुनकर सतवंत कौर ने सच्चे दिल से धन्यवाद दिया और कहा कि–"महाराज जी ! अब स्वदेश पहुंचने का संकल्प दृढ़ हो रहा है। आपको प्रसन्नता होगी।" गुरूमुख जी ने कहा–"बच्चे ! जो आपने पहले तोता सिंह के वृद्ध सम्बन्धी के साथ, जिनका नाम लद्धा सिंह है, जाना स्वीकार किया था, सो ठीक है। अब वह तैयार है। आपको बहुत ढूंढ़ रहा था। जब हमने कहा कि चिंता न करो, स्वयं ही आ जायेगा तब उसको धीरज बंधा। अब आप उनसे मिलें।

---

1. गरचिह अज़ सर ता बपा मौला बवद जिंदगी दर बंदगी औला बवद (भाई नंद लाल)

पन्द्रह दिन तक काफिला चलने वाला है। हम भी चलते, परन्तु पंथ के आदेशानुसार काम अभी समाप्त नहीं हुआ है। काबुल के सिखों की देखभाल सम्भाल ली है। अब कन्धार की ओर जाना है। फिर चमन के रास्ते होते हुए हम पंजाब पहुंचेंगे। इस प्रकार वार्तालाप करते–करते सुबह हो गयी। बाबा लद्धा सिंह भी आ पहुंचे। संतजी ने सतवंत (जो इस समय जसवंत सिंह के वेश में थी) की बांह उसके हाथ में देकर कहा–इनको सभी तरह से प्रसन्न रखना। हम दीपमाला तक पहुंच जायेंगे। तब तक आप भी वहीं रहना। इस तरह जसवंत सिंह दूसरी बार अपने प्रेमी भाइयों के बीच पहुंच गया और जाने की तैयारियां होने लगीं।

साधु जन तो दो–चार दिन के पश्चात् कन्धार चले गये और इध ार जाने की तैयारियां होने लगीं। जाने के लिए काफिला तैयार हो रहा था। समय निश्चित हो गया था। अब केवल सामान बांधकर उस दिन की प्रतीक्षा होने लगी। सतवंत का वेश मर्दाना था और सारे घर में जसवंत सिंह के नाम से प्रसिद्ध थी। बाबा लद्धा सिंह वैसे भी उसका आदर बहुत करते थे परन्तु अब जब संतों ने उसे उनको सौंपा था, उसका प्रभाव बढ़ गया था और वह उसका अत्यधिक सत्कार करने लगे थे। आदर पाकर वह सिंह–पुत्री अकाल पुरूष को धन्यवाद देती और यही कहती कि यह सब ईश्वर की दयालुता है। यह गुरू नानक देव जी की कृपा है। यह गुरू गोबिंद सिंह जी का 'बांहि गहै की लाज' हैं, मैं कर्महीन तो ऐसी अभागिन हूं कि पशुओ की भांति बिक गयी और गुलामी में पड़ गयी। इस गुलामी में भी सच्चे पातशाह ने मुझे सम्मान और बड़प्पन दिया। किन–किन विपत्तियों में से निकला? किन–किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और अब किस आराम में पहुंचा दिया? मेरा इसमें कुछ भी नहीं। धन्यवाद उस सच्चे पातशाह का।

जैसे–जैसे आराम मिला, वैसे–वैसे सतवंत कौर ने धन्यवाद किया, न केवल अकाल पुरूष का, बल्कि जो उसका सम्मान कर रहे थे, स्वयं को उनका ऋणी समझती थी और कहती कि मुझमें कोई गुण नहीं। मैं तो इन सज्जनों को भी धोखा दे रही हूं। स्त्री हूं, मर्द

बनी हुई हूं, पर ये लोग धन्य हैं जो गुरू के नाम के लिए मुझ जैसी का भी सत्कार करते हैं। इनके हृदय कितने उत्तम हैं कि मुझ पर उपकार कर रहे हैं। वाहिगुरू की कृपा को ही सब की कृपा का कारण जानकर, सतवंत कौर आन्तरिक ध्यान में उच्च नाम स्मरण में मग्न और ईश्वर भक्ति के सहज रंग में रंगी रहती।

प्यारे सज्जनों ! हमारे बुजुर्गों में ये गुण थे कि वे मान पाकर भी अपने छोटे भाइयों को खुद से अधिक श्रेष्ठ समझते थे, तभी तो पंथ में परस्पर प्यार और वाहिगुरू से प्रेम रहता था। आजकल तो जिसको भी चार व्यक्ति थोड़ा बड़ा या अगुओ कहने लगें उसके अभिमान का अन्त ही नहीं रहता। वह समझता है कि अब मैं अवश्य बहुत बड़ा हो गया हूं। वह यह नहीं सोचता कि यह मेरी वही देह है, वही मन–बुद्धि और अंग हैं जो इनके हैं, यदि आत्म–सत्ता कहूं तो सब में एक है, यदि यह कहूं कि मैं ज्ञानवान हूं, यह अज्ञानी है, तो ज्ञान की पहली अवस्था अहं का त्याग है।[1] यदि गुण कहूं तो प्रत्येक में कोई गुण है। यदि धन कहूं तो यह नीच लोगों के पास भी असीम होता है। यदि यह कहें कि लोग मुझे अगुआ और बड़ा कहते हैं तब यह जाने कि यह तो लोगों का बड़प्पन है क्योंकि आदमी का अहं खुद से श्रेष्ठ किसी को नहीं मानता। जब किसी ने हमें अच्छा कहा तब उसमें अहं भावना कम हुई और हमें मान ने घेरा तब वह हमसे श्रेष्ठ हुआ कि नहीं? और यदि कहूं कि हमें वाणी के शब्द की सूझ है, तब आप गुरू नानक के प्यारे हैं। स्वयं को सौभाग्यशाली समझें और यह जाने कि एक सेवा आपको सौंपी गई है। गुरू के होकर मैत्रीपूर्ण व्यवहार करो। मति से उच्च रहो, सूरत में दानशील 'वाहिगुरू की रखवाली में रहने वाली मति' में टिके हुए, परन्तु मन में रहे 'सगल चरन की इहु मनुराला।' मन नीचा, मति ऊंची। यह समझो कि यदि गुरमुख का धर्म, सांसारिक तथा परमार्थिक दोनों के अगुओं के मन में रहे तब तो स्वयं भी मुक्त हो जाते हैं और संसार भी मुक्त हो जाता है। नहीं तो कष्ट ही कष्ट होते हैं।

---

1. तिसके भाणै काई न भुला जिनी सगलो ब्रह्म पछाता। (सी॰ म॰ 5)

अब परमार्थ में जिज्ञासुओं को श्रद्धा, प्रेम और नम्रता नहीं रही। परमेश्वर के प्यारों, नाम के रसियों, आप जपते और औरों को जपवाने वाले गुरूमुखों को लोक प्यार, सत्कार और सम्मान नहीं मिलता। गुरूजी उस सिख की धूलि मांगते हैं जो जपता और जपवाता है[1]। परन्तु पश्चमी विद्या पढ़कर झूठी बराबरी में पड़े लोग विषयो दुराचारों में और नाम में रत प्रेमियों को एक समान कहकर सत्संग में ईर्ष्या, द्वेष फैलाते हैं। पहले के प्रेमी सतवंत कौर और फातिमा के समान दयालु होकर कृत्य–कृत्य होते थे। गुरूता गुरू साहिबान में मानकर सिख परस्पर तरते और तारते थे।

आखिर काफिला चला और सतवंत कौर पुनः वतन की ओर चली। एक वृद्ध व्यक्ति, जसवंत सिंह और एक नौकर, तीन आदमी इस काफिले के साथ पंजाब के लिए विदा हुए। अभी दो पड़ाव हो गये होंगे कि अमीर की आज्ञा आई कि काफिला रोक लो। काफिला रूक गया और सरकारी अधिकारी आकर तलाशी लेने लगे। हजारों रूपयों का सामान, पिट्ठू, गांठे, बिस्तरे संदूक, यखदान सभी की तलाशी ली गयी। कारण यह था कि अमीर का एक हीरा जाता रहा था। चोर दरबार में ही था। उसी ने सलाह दी थी कि काफिले की तलाशी ली जाए। ऐसा न हो कि कहीं चोर इस काफिले के साथ हिन्दुस्तान भाग कर न जा रहा हो। इस सलाह को सुनते ही तलाशी लिये जाने की आज्ञा दे दी गई थी और अब सब कुछ उलटा–पलटा जा रहा था। यदि बादशाह हुक्म दे कि एक पैसे की चीज उठा लाओ तो नौकर हजारों रूपयों पर हाथ साफ करते थे, वही यहां भी हुआ। हुक्म तो सामान की तलाशी लेने का था, नौकरों ने जामा तलाशी भी आरम्भ कर दी। कपड़े उतरवाकर शरीरों की तलाशी लेने लगे। औरतों को औरतें देख रही थीं। यह हाल देखकर सतवंत कौर को चिन्ता हुई कि अब क्या होगा? यदि जनाने लिबास में होती तब भी ठीक था, परन्तु अब तलाशी मर्द लेंगे और उसका भेद खुल जायेगा। न पकड़ी जाती भी पकड़ी जाऊंगी। करूं तो क्या करूं? किस उपाय

---

1. जन नानक धूड़ि मंगै तिसु गुर सिख की जो आपि जपै अवरहु नामु जपावै।। (गउ : वा॰ म॰ 4)

से बचुं? सारा दिन उधर तलाशी होती रही, इधर सतवंत कौर की छाती धड़कती रही कि उसकी बारी भी अब आई कि अब आई। उसका ऊंचा हुआ मन और दुःखों की सान पर चढ़कर पैनी हुई बुद्धि दिन भर विचार में लगे रहे। न ही कोई हल सूझाा और न ही उसके हृदय ने निराशा का पल्लू पकड़ा। सन्ध्या हो गई और काफिले के चारों ओर पहरे लग गये। तलाशी पूरे दिन में आधी भी नहीं समाप्त हो पाई थी। यह तय किया गया कि शेष तलाशी कल होगी।

: १५ :

दिन का उजाला लोप हो गया, रात का अंधेरा आ फैला। पक्षी घोसलों में चले गये और लोग घरों में। छोटे–छोटे दीपकों से घर ज्योतित हो गये। नील गगन में छोटे–छोटे लगने वाले तारों की ज्योति जगमगा उठी। चन्द्रमा भी निकल आया। शरद ऋतु की शीतल चांदनी फैल गई थी। आंखें शीतलता और आर्द्रता का अनुभव कर रही हैं। किन्तु हाय ! ऐसे सुहावने समय में भी मां गर्म निःश्वास और ठंडी सांसें भरती हुई अपने दुखों में डूबती इतराती और मन को ढाढ़स देकर प्रार्थना में मन लगाने की चेष्टा कर रही है। मुंह से 'अकाल पुरूष तेरी शरण' कहती है। गीली आंखों को पोंछती और हृदय से 'ईश्वर–इच्छा' को स्वीकारने का उद्यम करती है। परन्तु ममता की लहर उमड़कर उसके सिर या रूखकर गरम–गरम आंसु की झड़ी लगा देती। मुंह से सिसकियां निकलती हैं। गला रूंध जाता कि इतने में फिर परमार्थ में रमा हृदय चिन्ता के कुएं से निकलता और ईश्वर की इच्छा को स्वीकारने की प्रेरणा देता है। 'शुक्र, भाणा, रज़ा', मुंह से निकलता है और आंसू आंखों में ही समा जाते हैं। वह चारों तरफ फैली चांदनी की ओर देखती है। चन्द्रमा के पूर्ण बिम्ब पर टिकटकी लगाती है और फिर आह भर–भरकर कहती है–'प्यारी दुलारी, किसी धरती पर बैठी शायद तुम भी इस समय चन्द्रमा को देख रही होगी। मैं भी देख रही हूं। एक ही चन्द्रमा पर हमारी दृष्टियां तो एकत्र हो गयी हैं किन्तु हाय ! वियोग पापी वियोग दूर नहीं हुआ। हे अकाल पुरूष ! मैं कैसी अविश्वासी सिख हूं। ईश्वरीय इच्छा पर संतोष नहीं, मोह, ममता, के जाल को काट नहीं सकी। बच्ची मर

जाती तो सन्तोष का कड़वा–कसैला घूंट समझकर निगल लेती। या तेरी कृपा से तेरी इच्छा ही मधुर लगती। हाय ! पुत्री का कोई पता नहीं मिल रहा। बच्ची ! तू अच्छी गयी है ! कहते हैं 'जा बेटी रावी, न कोई आवी औ न कोई जावी' किन्तु यहां तो पुत्री गयी अटक से पार, न कोई समाचार और न कोई पता। वह तो उस देश की ओर चली गयी है जहां से लौट कर कोई नहीं आता। कोई इतना समाचार ही आकर दे कि लाज–धर्म की रक्षा में बच्ची मर गयी। कोई उसके मरने की बात ही सुना दे तो मैं खुशियां मनाऊं, दूध का कटोरा पीऊं, इसे श्री अमृतसर के स्नान और हजूर साहिब की यात्रा के तुल्य जानूं। किन्तु कौन बताये कि मेरी बेटी धरती की धूल में धूसरित हो रही कि गगन–आसन पर विराजमान है।...मेरे रक्त का रक्त, मेरे हृदय का हृदय, हां ! मुझसे कैसे छीन लिया गया, कैसी विलाप की दशा हो गयी–

विछुड़ के तूं सुहणीऐं।
मल्लिआ किहड़ा मुक्ख नी?
निज्ज जंमदीओं तू बचड़ीए,
औत चंगेरी कुक्ख नी?

\+ + +

किहा भुलावा छल गिआ,
हो गई केही चुक्ख नी।
हावे खा गए जिंदड़ी,
दिल नूं खा गई धुक्ख नी।

\+ + +

डोले बेड़ी सिदक दी,
लद गए 'दिल सुक्ख' नी।
सुपने विच ही आ मिले,
देखां तेरा मुक्ख नी।

\+ + +

सो कनसो कुई घल देइ,
ठरे दिले दी झुक्ख नी।

किवें कदे तूं आ मिलें
मिटे तड़फड़ी भुक्ख नी।[1]

इस तरह का विलाप करते हुए मां की आंखों के स्रोत फूट पड़े। बहुत रोई। रोते–रोते उसका गला रूंध गया, आंखों के आगे अंधेरा छा गया, बैठी–बैठी की मानो आंख लग गयी। नींद में मां क्या देखती है कि एक छोटी–सी पहाड़ी के साथ झरना बह रहा है। छोटे–छोटे पत्थरों से रगड़ खाकर बहने से जल कल–कल का शब्द कर रहा है। किनारे पर, एक जगह वृक्षों का झुण्ड है जिनपर काले अंगूरों की बेल चढ़ी हुई है। उनके नीचे उसकी प्यारी सतवंत कौर बैठी हुई है। आंखें धरती में गड़ी हुई हैं। हाथों से वह तिनके तोड़ रही है। कभी वह आह भरती है तो कभी आंसू बहाती हैं, कभी कुछ गाती है, कभी फिर चुप हो जाती है। ध्यान लगाकर मां ने सुना तो सतवंत कौर ने यह गीत गाया इस उदासी और पीड़ा के साथ कि पत्थर भी पिघल जाये...

किसे गुआंढण ने आखिआ भाए।
तेरा पियो भरा गिआ आइ।
जीविच होइआ शादीआ माए।
मेरे मन विच होया ए चाए।
मेरी राणीएं राज बहालीए।
मेरी सदा सुखालीए।
पुत्रां वालीए माए ।।१।।

पक्की खूही घड़ा रंगला,
दी जित्थों अंबड़ि पाणी भरै

1. ऐ सुन्दरी तू मुझसे बिछड़ कर किस देश में जा बैठी है। अच्छा होता, ऐ मेरी बच्ची, तू मेरी कोख से जन्म ही न लेती। मुझे कैसी भूल छल गयी, कैसी चूक हो गयी। जीवन को दुःख खाए जा रहा है, दिल टुकड़े हो रहा है। विश्वास की नैया डोल रही है, सुख मे दिन समाप्त हो गये हैं। तू मुझे स्वप्न में ही आ मिल, जिससे मैं तेरा मुंह देख सकूं। कोई मुझे उसकी खबर दे जिससे मुझे शांति मिले। कभी, किसी तरह तू मुझे मिल जाए तो मेरी तड़पती हुई भूख शांत हो जाए।

इक भर धरे दूजा सिर धरे,
नी सानूं धीआं नूं याद करें
मेरी राणीए राज बहालीए।
मेरी सदा सुखालीए,
पुत्रां वालीय माए ।।2।।

सां ढुल परछावें बहिदीआं माए
असी मावां ते धीवड़ीआं।
नी मैं सिर गुदां तैंदड़ा माए।
तू करैं गल्लां मिठड़ीआं।
मेरी राणीए..... ।।3।।

अंबडि करां मैं माए।
मेरी अंबडी केडा हित नी।
मनो विसारी धीवडी माए।
मेरी अम्मी सुखालड़ा चित्त नी।
मेरी राणीए...... ।।4।।

कंध कन्धारी बैठी हां माए
मेरा चित्त भरावां दे विच नी
मेरे नैण छमा छम रोंवदे
मेरा कलेजा धूहदी खिचनी
मेरी राणीए.......... ।।5।।[1]

---

1. ऐ मां पड़ोसिन ने कहा कि तेरा बाप और भाई आ गये हैं। मेरा जी बहुत प्रसन्न हुआ, मन में चाव हुआ। मेरी रानी मां, तू राज करे, मेरी पुत्री वाली मां तू सदा सुखी रहे। मेरी मां पक्के कुएं पर रंगीन घड़ा लेकर पानी भरती है, दूसरा सिर पर धरती है और अपनी बेटियों को याद करती है। हे मां, हम छाया में मिल बैठती थीं, मां मैं तेरा सिर गूँथती थी और तू मीठी बातें करती थीं। मैं मां.मां करती हूं, परन्तु मां का मुझ से कैसा प्रेम है? हे मां तुमने मुझे मन से भुला दिया है। हे मां मैं तो कन्धार में बैठी हुं, परंतु मेरा मन मेरे भाइयों के मध्य है। मेरे नेत्र हर दम रोते रहते हैं। मेरा कलेजा तड़फता रहता है।

यह सुनकर मां आगे बढ़ी और पुत्री को आलिंगन करना चाहा, परन्तु बांहों में कुछ नहीं आया बल्कि आंखों से जो पुत्री दिख रही थी, वह भी अदृश्य हो गयी। भौंचक्की होकर उसने इधर–उधर देखा, परन्तु बेटी की जगह घर–आंगन सूना दिख रहा था, जहां प्यारी बेटी हिरनी की तरह चौकड़ी भरती रहती थी, जहां बचपन में वह गुटट्ी और गेंद को उछाल–उछाल खेलती थी, कर ताल देती थी। आज मां की नजर के सामने सब सूना पड़ा था। उसने गहरी निश्वास ली। हाय यह सपना, बच्ची तुम! जीवित हो। और विलाप में दिन काट रही हो। मैं क्या करूं। क्या बनाऊं। बाट जोहती को यह दिन आ गये, परन्तु कुछ पता नहीं चला। गुरू भाई जी ने भी कुछ पता नहीं दिया। हे गुरू ! अब मैं खुद काबुल जाऊं। खुद कोशिश करूं। खुद खोजूं। मेरा दिल अपनी लाडली को ढूंढ लेगा। अगर न मिली तो मैं मर जाऊंगी। हे भगवान ! यह तो मेरी बच्ची को भेज दो या मुझे मिटा दो !

"मुझे मिटा दो यह क्या नाशुक्री है।" एक भारी गम्भीर आवाज डयोढ़ी में से आयी। चौंककर माता (बसंत कौर) उठ खड़ी हो गयी और अपने प्राण पति के स्वागत के लिए आगे बढ़ी। वे अब आंगन में आ गये थे। सिर झुकाये खड़ी नारी के कन्धे पर हाथ रखकर कहने लगे–प्रिये ! यह क्या अविश्वास है? भगवान हमें रचे अथवा मिटायें हम कौन होते हैं यह कहने वाले कि भगवान हमें मिटा दो। क्या हमारी मर्जी उसकी इच्छा से बड़ी है। तुम तो बड़ी धीरज वाली थी। बेटी के असह्य वियोग को बड़े विश्वास से सहती रही हो। परन्तु आज क्या हुआ?

बसंत कौर– क्षमा करना सिंह जी, औरत का संसार बहुत खोटा है। गुरू महाराज का कथन है–

चउणे सुइना पाईऐ चुणि चुणि खाव घासु

कितना भी समझाएं– बुझाएं हमारा स्वभाव नहीं सुधरता। जो दिन अच्छे बीते आपकी कृपा से बीते। आप दो दिन के लिए ही बाहर गये तो मेरे धीरज की कमर टूट गयी। मेरे साहस और विश्वास के पांव लंगड़े हो गये, मेरा ढांढ़स रींगने लगा, मेरा विश्वास शिथिल हो गया। मेरा सिख–भाव मुझमें ही अपंगु हो गया। आज मैंने साधारण

स्त्रियों की भांति विलाप किया है, रोई हूं, रोती हुई बेटी के दर्शन किये हैं, अपने आपको धिक्कारा है, और जीवन को कड़ुआ जानकर मौत मांगी है और सदा प्यार सृजनहार निरादर किया है। मैं इस योग्य नहीं कि आपकी जीवन–साथी बनूं। मुझे काबुल भेज दीजिए जिससे या तो मैं बेटी को ढूंढ लूं या पत्थरों में सिर टकरा–टकरा कर मर जाऊं।

यह कहकर वह फूट–फूटकर रो पड़ी।

हिम्मत सिंह (कोमलता के साथ) प्रिये ! मैं नहीं मानता कि औरतों का स्वभाव बुरा है। स्वभाव किसी का बुरा नहीं। कुसंगति बुरी है कुसंगति औरतों के आस–पास शीघ्र ही जा जाती है। इसी कारण उनका स्वभाव उतावला, चंचल और हीन हो जाता है, जो सत्संग से संवर जाता है। बाकी आपका रोना, वह मोंह की प्रबलता के कारण है। मोह को जीतना खेल नहीं। मां की ममता को जीतना तो बहुत ही कठिन कार्य है। आप रोयी हैं, किन्तु प्यार से रोयी हैं। आप में कुछ भी विकार नहीं है, जिसने आपको रूलाया हो। आपको बेटी का दुःख रूला रहा है परन्तु आप रोयी उन लोगों की तरह हो जिनका ईश्वर न हो। आपका विराग उन लोगों की तरह से है जो 'गुरू प्यार' की छाया से रहित मनमति के मरूस्थल में तप रहे हों। आपने उनकी तरह विलाप किया है जिनके पास गुरूवाणी का प्रकाश नहीं है। आपने उन दुखों को व्यक्त किया जो सत्संगति के आश्रय से रहित डांवाडोल रहने वाले लोग करते हैं। (कुछ समय चुप रहकर और सोचकर) हां, स्त्री अर्धांगिनी है। यदि सुखी है तो पति स्वस्थ है, यदि दुखी है तो पति लकवाग्रस्त जैसा है।

फिर पत्नी की ओर देखकर हिम्मत सिंह ने कहा– "तो विचार करो, एक तो बेटी गयी, दूसरा हमने आज सिखी सिदक को विदा का संदेश सुना दिया। आप तो जानती ही हैं कि बेटी परमेश्वर की देन थी। अपनी देन उसने ले ली। दुःख है तो इस बात का कि पता नहीं वह किन कष्टों में फंसी हुई होगी। यदि उसका उपाय हमारी शक्ति के बाहर था तो स्थिति आज भी वैसी ही है। जो कुछ हमसे बन सकता था हमने किया है। चिन्ता तो अधिक यह है कि उसका सतीत्व और उसका सिखी सिदक कायम रहा हो। इन्हें लिये हुए जी

रही हो तो ठीक, इन्हें अक्षुण्ण रखे मर गई हों तो भी उचित किन्तु यह लाल न खो बैठी हो। मुझे तो विश्वास है कि वह कभी इतनी बलहीन नहीं होगी। उसकी रगों में पवित्र खून है। उसके दिल में सिखी की लाज और स्वाभिमान है। आप भी विश्वास रखें। देखो, यदि आपके मन में यह सन्देह उभरा है कि कहीं बेटी का पतन न हो गया हो तो यह संदेह उसे जहां भी वह है पतन तरंग से ताड़ित कर अधिक पतन की ओर ले जाएगा। आप मन में उत्साह रखें। जब भी बेटी का ध्यान आये तो यह सोचे कि विश्वास में अचल खड़ी बेटी संकटों का डट कर सामना कर रही है। उस समय भरोसे के साथ प्रार्थना करो कि हे गुरू जी ! सहायता करो। कहो "जहां–जहां खालसा जी साहिब तहां–तहां रक्षा रियायत" ऐसा करने से बेटी की इच्छाएं उन्नतशील रहेंगी।

'दृश्य जगत' को सब कुछ मत समझो। 'अदृश्य जगत', 'दृश्य जगत' से बहुत विशाल है। उसके ढंग और शक्तियां सूक्ष्म और बलवान हैं। आपके संकल्पो का अस्तित्व और स्वरूप 'अदृश्य जगत' में है और ये संकल्प आकाश–मंडल में तीर–सी गति से लक्ष्य पर पहुंचते हैं प्रभावित करते हैं, उठाते हैं, गिराते हैं, संवारते हैं, थोड़ा अथवा बहुत।

जो कुछ आपने आज किया है, उससे आपने पुत्री को रोते हुए भी देखा है। प्रिय पुत्री को जब भी देखें उन्नत रूप में देखें। उस समय आशीर्वाद भी देते हैं–"बच्ची ! तुम कभी पतन की ओर न जाओ।" सत्संग में प्रतिदिन यही अरदास होती है कि जो सिख बच्चे और औरतें (चाहे कितने कम हैं) कैद में हैं, वे सिखी सिदक में पक्के रहें। हमें सन्देह नहीं कि हमारा एक भी बच्चा धर्म छोड़ेगा। आप क्यों उस ऊंची अटारी से नीचे आती हैं। कभी सुना है कि कैद में कभी किसी सिख ने धर्म छोड़ा है। बाबा बंदा के साथ आठ सौ या हजार सिख कैद में पड़े थे। कुछ तो बाबा जी के साथ के थे, कुछ सिख राह चलते भी पकड़ लिए गये थे, परन्तु किसी ने भी धर्म नहीं छोड़ा। मैं नहीं कहता कि मन में अहंकार हो, किन्तु अपने धार्मिक विश्वास पर भरोसा रखो और सन्देह भय और भ्रम को कभी पास मत फटकने दो। आप जैसा चाहते हो वैसा ही हो, तो आत्मा पर भरोसा रखते हुए,

उन्नत शील रूप में, दृढ़ संकल्पवान रहो जो गुरू चाहेगा, तो वही कुछ होगा।

बसन्त कौर– सच है, स्वामी जी। परन्तु अपने आप ही मन में खिचाव आ जाता है। देखिए ! कष्ट के दिन हमारे लिये कुछ नये नहीं, किन्तु जिस समय रोटी खाने बैठती हूं मन कहता–पता नहीं बेटी ने कुछ खाया भी है अथवा कि भूखी बैठी है? जब सोने लगती हूं तो मन कहता है–पता नहीं बेटी जमीन पर है या बिस्तर पर? दूध दुहती हूं तो कहती हूं–बच्ची तेरा दाना–पानी इतना ही था। दही मथती हूं तो कहती हूं कि अब मुझे कौन कहे–

अमां नी तू घुंम मधाणी
आनी हां, मैं आनी हां
बेही रोटी सजरा मक्खन
पीहड़ बहिके खानी हां।[1]

पति जी ! फिर जब आपके उपदेशों का आश्रय लेती हूं तो सोचती हूं कि जिस वाहिगुरू ने जन्म से पहले बच्ची के लिए दूध की रचना की, दूध समाप्त होने से पहले ही उसको दांत दिये, उस परमेश्वर ने कैद में पड़ने से पहले उसका उपाय अवश्य किया होगा। फिर मैं सोचती हूं वह शेर–पुत्री दुःखों को सहन कर लेगी। मुझे उसपर पूरा भरोसा है। सोचती हूं शायद कठिनाई में ही कोई भलाई हो। वाहिगुरू जो कुछ करता है, भला ही करता है। क्या पता काबुल में ऐसा कोई काम हो जो प्यारी सतवंत कौर ही कर सकती हो। गुरू ने इसीलिए उसे वहां भेजा हो। गुरू के कार्य गुरू ही जानता है। हमें विश्वास रखना चाहिए। ऐसा सोचूं तो मैं स्वस्थ रहती हूं। आज प्रातः मेरा विचारा यह था कि मैं बहुत दुःख इसलिए मानती हूं कि वह मेरी पुत्री है। पहले भी कई बार भगदड़ मची, कई मां–बाप की बेटियां काबुल में कैद होकर गयीं। मेरे जी को कुछ–कुछ होता था, परन्तु ऐसा कुछ तो पहले कभी नहीं हुआ था। अब यह सब कुछ मुझे 'मेरी'

---

1. अम्मा तुम मथानी घुमाओ मैं आती हूं। बासी रोटी पर ताजा मक्खन, पीढे पर बेठकर खाती हूं।

करके हुआ है और गुरू ग्रंथ जी की वाणी है–

जब लगु मेरी–मेरी करै
तब लगु काजु एक नहीं सरै।

(भैरवी–कबीर)

पति–सच है, दुःख है तो 'मैं', 'मेरी' का ही है। किन्तु 'मैं' 'मेरी' का भाव आसानी से नहीं मिटता। यहां एक भ्रम भी है–'मैं', 'मेरी' के झूठे त्याग को जो त्याग समझते हैं वे बलहीन और असमर्थ हैं। लोग अपनी हीन अवस्था को समझते हैं कि वे 'मैं', 'मेरी' को त्याग चुके हैं। 'मैं, मेरी' जो दुःख देती है उसका त्याग करना चाहिए। असल 'मैं' 'शुद्ध मैं' तो स्वत्व की धुरी हैं, केन्द्र है। उसको खोकर सुख कैसा?

आपको जो दुःख है उसका स्रोत 'स्व–सत्कार' और 'पवित्र–स्वाभिमान' है जो श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी ने "हिन्दुओं के मृत मनों में जागृत किया था। आपका उत्साह और प्रेम कि लड़की लाज धर्म में मरे यह एक सुन्दर, उच्च, धर्म–स्वरूप स्वाभिमान है। यह एक मानसिक स्थिति है। यह न हो तो समझिए आपने 'मैं, मेरी' नहीं जीती, खुद का सम्मान नहीं रहा, स्वाभिमान नहीं रहा, प्राण नहीं रहे। शेष रही है 'मैं मेरी' की वास्तविक विजय, यह भी समझ लो। 'मैं, मेरी' बातों से नहीं मर सकती। अनेक साधन करें, वह जीवित रहती है, क्योंकि शरीर सुख ढूंढ़ता है और दुःखों से दूर भागता है। सुख देने वालों से 'मैं' प्यार करता है, दुःख देने वालों से घृणा। इसलिए सुखदायी 'मैं' और 'मेरी' में हमारा प्यार बंधा हुआ है। इसीलिए, गुरू जी ने प्रेम से ही इसका इलाज करना बताया है और हमें ईश्वरीय रहस्य उस प्यारे वाहिगुरू को प्रेम करने का सिखाया है। यदि हमें उस 'प्रेम–स्रोत' से प्यार हो जाये, उसको प्रेम करते–करते हम उसे अन्य समझना छोड़ दें तो हममें और उसमें जो अलगाव है वह दूर हो जाये और उसे हम मेरा अथवा अपना समझने लगें। जब हमारे 'मेरे' का तन्तु उस प्यारे के साथ जुड़ जाए तब उन पदार्थों की 'मेरी' से जो 'नहीं रहेंगे' ऊंचे होकर 'वाहिगुरू मेरा है' इस उच्च 'मेरा' में पहुंच पायेंगे। वाहिगुरू को 'मेरा–मेरा' कहते हुए जब उस प्यारे का प्रेम हम पर निर्झर धारा के रूप में बरसेगा, तभी हमारी शुद्ध 'मैं'

पर जो अहं का पर्दा है, हट जायेगा और शुद्ध हो गयी 'मैं' उस प्रेम पुंज के साथ जुड़ जायेगी। इस तरह वह बलवान हो जायेगी और उसके मिलन रस में सुख का अनुभव करेगी, सुखी हो मिल जायेगी और फिर विछोह नहीं होगा।

जो हमारी वर्तमान अवस्था है, वह यत्न की अवस्था है, अर्थात संघर्ष की अवस्था है। सत्संग हमें सदा यही सिखाता है कि प्यारे वाहिगुरू से प्रेम करो जिससे कि शेष सब कुछ से व्यक्ति अलग हो जाये। दुनिया के लोगों का तो यह हाल है कि 'सब कुछ अपना, इक राम पराया' और गुरू साहिब की प्रेम–भक्ति के ढंग से सब कुछ पराया हो जाता है और वाहिगुरू प्यारा लगता है। जब वाहिगुरू अधिक प्रिय हो गया तब अन्य प्रियजनों का आकर्षण हमें उससे अलग करने में असमर्थ हो जाता है। आप अभी वाहिगुरू को मुख्य रूप से अर्थात अन्य प्रियजनों से अधिक प्यारा समझकर कम प्यार करती हैं, इसीलिए विमुखता पुनः–पुनः आती रहती है। आप मोह–ग्रस्तों का रूदन तथा थोथे ज्ञान की बातें न सुना करो। नीचे से प्रारम्भ कर और धीरे–धीरे ऊपर चढ़ो। आप सारा दिन इसी विचार में रहिए कि 'अदृश्य वाहिगुरू' है जिससे कि उसके 'अस्तित्व' का संकल्प मात्र दिन–रात याद रहने लगे। फिर सोचा करें–'कहां है !' फिर विचार किया करें 'जो–मेरे साथ' है, 'रोम–रोम' में बिराजमान है'। फिर किसी समय विचार किया करें कि 'हमारे साथ उसका क्या सम्बन्ध है? तब सोचा करें कि 'वह पिता है' हमें प्यार करता है'। जब उसके प्रेम करने का संकल्प अन्दर दृढ़ हो जायेगा, तब श्रद्धा और प्रेम दृढ़ हो जायेंगे फिर ऐसा मन जुड़ा करेगा कि आप इस रंग में रंगे रहेंगे कि मानो कि उस वाहिगुरू का प्रकाश और आनन्दपूर्ण विद्यमानता हर समय हमारे आस–पास है। मन में चाव और रस भरा रहा करेगा। इस तरह से, जिसने 'मैं मेरी' जीती है, उससे स्वभावतः ही जगत का भला होता है, उसका मन उच्च रहता है, उसके अन्दर 'स्वत्व' का टिकाव और 'स्वत्व' का सत्कार निवास करते हैं। वह 'जीता' है, 'जीवा' हो जाता है, उच्च जीवन उसमें निवास करता है। परन्तु ये बातें तभी उभरती हैं और होती हैं जब पहले वाणी से मन शुद्ध हो और फिर नाम के साथ प्यार हो।

बसन्त कौर– सच है पति जी ! जिस प्रकार वृक्ष के चरणों में निर्बल लता उत्पन्न होती है और वृक्ष का आश्रय पाकर वृक्ष जितनी ऊंची हो जाती है, उसी प्रकार निर्बल जिज्ञासु अपने सत्संगी के साथ लगकर, उसके आश्रय से ऊंचा हो जाता है। आपके संग ने मुझे संवारा है और संवारना है। मैं सचमुच मूर्ख हूं और अभी वाहिगुरू की विद्यमानता को हरदम अपने साथ पहचानने वाली नहीं हुई हूं। पर आपकी दयालुता, आशा है कि, बल भर देगी।

हिम्मत सिंह– मैं तो स्वयं पक्का नहीं, परन्तु हमारे सिर पर सत्संगति की छाया है, इसलिए घबराने की बात नहीं। गुरू स्वयं ही लक्ष्य तक पहुंचा देंगे।

बसन्त कौर– जिस समय वाणी का रस आ जाये या मन नाम के साथ गुरू चरणों में लगा रहे, या आप पास हों, ता चित्त कम डोलता है। यदि प्यारी सतवंत याद आती है तो प्यारी लगती है, आशीष मुंह से निकलती है और गुरूचरणों में प्रार्थना होती है, दिल गिरता नहीं और न ही कहता है कि 'क्या होगा'। परन्तु जब ध्यान नीचा हुआ नहीं कि अन्धकार छा जाता है, कलेजे में शूल उठता है और कहता है–हाय ! क्या हो गया? क्या हो रहा है? क्या होगा।

हिम्मत सिंह– परमेश्वर के साथ प्रीत का यह गुण है कि ध्यान ऊंचा रहने लग जाता है, मन प्रसन्न रहता है। वास्तव में योगी–जन योग को ढूंढ़ते हैं, वह योग गृहस्थ से निर्योग होने अर्थात टूट जाने में नहीं है, बल्कि 'साई संयोग' में हैं, अर्थात प्रीत की एक तार में है।

बसन्त कौर–पति जी ! मैं समझी नहीं जोगी कौन? जोगी कनफटे मुद्राओं वाले या जो सांपों के मदारी बीन बजाते गलियों में आते हैं?

पति– नहीं, आप किस तरफ चली गयीं। यह कनफटे तो असली योगी नहीं हैं। इनका सम्प्रदाय गोरखनाथ से चला है। पहले पहले तपस्या और हठ योग को ये लोग मानते रहे, फिर सिद्धियों, करामातों के फेर में फंसकर शराब आदि मस्तियों में गिर गये और अब यह हालत है कि सींग बजा–बजाकर भिक्षा मांगने में की नौबत आ गयी है। दूसरे समाधि वाले हैं, वे जोगियों के ही चेले जो गूगा चौहान राजपूत की महिमा गाते थे और लोगों को उसकी पूजा में लगाते थे,

परन्तु अब अज्ञानी हो केवल सांपों का खेल दिखा–दिखाकर गुजारा करते हैं। यह भी एक तरह के भिखारी ही होकर रह गए लगते हैं। मैंने इन योगियों के बारे में नहीं कहा है। मैंने तो उन योगियों के बारे में कहा है जो अपने मन की वृत्तियों को रोकते हैं और अपने 'स्वत्व' से जुड़ जाने का यत्न करते हैं। वे ही योगी हैं।

बसन्त कौर– "अच्छा जी, मैं अब समझी, वह जो गीता में योग का वर्णन है, वही योगी।"

पति– हां, वहां कई प्रकार के योगी बताये गये हैं। परन्तु एक योग मार्ग पातंजली वाला है और एक 'हठ योगी' भी होते हैं, एक 'सांख्य–योगी' अर्थात 'ज्ञान योगी' हैं जो तत्वों का विचार करके 'भोग अनित्य है' 'दुःख का कारण हैं,' यह सोचकर चित्त को सभी विषयों से खींच कर वश में कर लेने का प्रयत्न करते हैं। वे कहते हैं कि दृढ़ और पक्के संस्कारों के साथ ही संसार और यह शरीर बना है। इनकी ओर से विमुख होकर, पक्का विराग कर इन संस्कारों को मिटा देना है। दूसरे वे योगी जो शारीरिक इन्द्रियों को रोकते–रोकते मन की वृत्तियों को मारने का यत्न करते हैं। आपको इस तरह ठीक से समझ आ जायेगा कि यदि मन टिके तो शरीर टिक जाता है और यदि शरीर टिके तो मन टिक जाता है। कई विराग करके मन को उपरामता की स्थिति में ले जाते हैं और विवेक या सोच में विचार को ऊंचा करने के निमित्त यत्न करते हैं। शायद इसीलिए जपुजी साहिब में 'सोचे–सोच न होवई जे सोची लखवार' लिखा है। इसी तरह क्रिया योग वाले काया को मांझ कर श्वासों को रोककर, चित्त की वृत्तियों को रोकने का प्रयास करते थे। इस क्रिया योग के कई प्रकार हैं। हठ योग भी इन्हीं में से है, जिसके कि अनेकों साधन शरीर के अंगों को वश में करने के हैं। राजयोग, मंत्र–योग आदि भी योग हैं। राजयोग में भी प्राणायाम आदि साधन हैं। किन्तु सभी योगों का अन्तिम उद्देश्य यही है कि मन की वृत्तियों का नियन्त्रण हो जाये, अन्दर उठ रही लहरों की तरंगें शान्त हो जायें। इसी को शायद जपुजी साहिब में 'चुपै चुप न होवई जे लाइ रहा लिवतार' वाले चरण में बताया हो।

फिर वे तपस्वी हैं जो अनेक विधियों के वृत्त धारण कर शारीरिक इन्द्रियों को शिथिल करते हैं और मन को विभिन्न प्रकार के शारीरिक और मानसिक भोगों से वंचित रखकर तपा कर यत्न करते हैं कि 'स्व' में स्थिर हो जायें। शायद इसी यत्न के लिए कहा गया है 'भुखिया भुख न उतरी जे बंनां पुरीयां भार'।

इन सभी यत्नों से मनुष्य का यत्न उसके अपने विचरों के मंडल में होता था। मनुष्य अपनी सोच–समझ के अस्तित्व में अपनी मानसिक स्थिरता, शक्ति और सामर्थ्य के बल पर पूरा प्रयत्न करता था। मन में कभी थोड़ी स्थिरता मात्र, कभी उपरामता का भाव, कभी अज्ञात घृणा अथवा कभी विराग–सा टिक जाता था। स्व ऊंचा होकर ऊंचे विकास में नहीं जाता था, क्योंकि मूल में स्थित उदासी और शोक के समान रूपों को धारण कर मन की तहों में सिमट जाया करते हैं। स्व जीवन ज्योति की किरन पाकर अर्थात नये जन्म को धारण करके प्रसन्नता, रस, स्वाद, हलकापन किसी 'अदृश्य' सुन्दर के प्रति प्रेम लगाव, स्पर्श में अपने आप को प्रतीत नहीं करता था। इन यत्नों में कभी–कभी भारी हानि भी होती थी। विचार करके मन एकाग्र करने वाले तो एक शून्यता–सी ही स्थिरता को समझ बैठते थे और क्रिया योगी थोड़ा भ्रष्ट हो रोगी हो जाते थे अथवा यदि इससे आगे निकल भी गया तो मान लें वह माया से मुक्त होकर स्वतन्त्र पुरूष बन भी जाये तो 'पुरूष विशेष' अर्थात वाहिगुरू से (जो कभी भी माया में नहीं आया) नहीं जुड़ पाते थे। तीसरे एक भक्ति मार्ग वाले चले, ये मूर्ति पूजा में फंस कर रह गये। फिर इनमें रास–लीला आदि का प्रचलन हुआ और शुद्ध वाहिगुरू की चेतना का अभाव इनमें प्राण नहीं फूंक सकता था। रस, स्वाद, अकथ प्रसन्नता अर्थात स्व का परमेश्वर से मिलन और उसका जीवित प्रभाव पैदा नहीं होता था। इसीलिए श्री गुरू जी ने एक ऐसी विधि सिखायी जिससे तीर ठीक निशाने पर बैठे। इसको हम प्रेमा–भक्ति कहते हैं। यह एक नया वृक्ष है, परन्तु इसमें सभी तरह के योगों के उत्तम अंग सम्मिलित हैं, मानों एक वृक्ष में हरी–भरी शाखएं लगाकर सत्गुरू ने उसे फलों–फूलों से सम्पन्न कर दिया हो।

बसन्त कौर— बात कुछ कठिन लगती है, कुछ सरल करके समझाइए अभ्यास की विधि भी बताइए।

हिम्मत सिंह— सबसे श्रेष्ठ, सब गुणों से परे और परे से भी परे परमेश्वर है। वह वाहिगुरू हमारा प्यारा पिता है। उसे सदा कृपा करने वाला, सदा प्रेम करने वाला, पतित—पावन जानकर उससे प्यार करना, यह अपने जीवन का लक्ष्य, जीवन का प्रयोजन समझना, यह पहला कदम है। जब यह प्रयोजन समझ लिया अर्थात परमेश्वर प्रेम स्वरूप है और हमारा प्रीतम है, तब प्रिय के, प्रेम का पहला स्वरूप यह है कि वह 'हर समय पास रहे'। यदि कभी प्यारा पास नहीं हो तो फिर मन से कभी नहीं भूलता अर्थात जब किसी मनुष्य के भीतर किसी का प्यार हो तो उसके दो स्वरूप हैं : 1—यदि प्रिय पास हो तो मन चाहता है कि वह प्यारा आंखों से ओझल है न हो और 2—यदि प्यारा ओझल है तो मन चाहता है कि प्रिय मन से न भूलें। इससे स्पष्ट है कि वियोग वाले अथवा अलगाव वाले प्रेम की पक्की निशानी है याद अथवा 'स्मरण' यह दूसरी बात है।

इसलिए जब हम इस तरफ लगें तो पहले वाहिगुरू प्यारे के होने का फिर उसके 'अंग—संग होने का' फिर हमें 'प्यार करने वाले होने का' स्मरण रहेगा वह हमें भूलेगा नहीं।

बसन्त कौर— परन्तु हमने उसे देखा तो नहीं है।

हिम्मत सिंह— यही तो मैंने बताया है कि देखा न होने के कारण समझ लो परदेश में है, या ऐसे समझ लें कि उसका रूप—रंग न होने के कारण वह हमसे ओझल है। वैसे तो पास है, पर दिखता नहीं, इसीलिए वह 'प्यारा' मानों परदेश में है अर्थात हम प्यारे से बिछुड़े हुए हैं। अब सोच लो कि यदि हमारे अन्दर प्यार हो तो प्यारा हमें अपने दिल से भूलेगा नहीं, इसी बात को उलट दो कि यदि हम उसको न भूलें तो वही 'याद मानों प्यार' है। तब तो याद में रहना—परमेश्वर की याद में रहना—उससे प्रेम करना है कि वह है—अंग—संग है और प्यार करता है, इस तरह उसे याद रखना मन में प्रेम बसाना है।

बसन्त कौर— किसी और तरह से समझाइए न।

हिम्मत सिंह– यदि हमारे घर में 'ध्रेक' नामक पेड़ है उसमें बीज पड़ेगा–'ध्रिकोना'। यदि 'ध्रिकोना' को बोयें तो ध्रेक का वृक्ष उत्पन्न होगा। इसी तरह यदि प्रेम हमारे मन में है। तो उसका स्वरूप क्या है। प्रीतम हर समय याद रहता है और यदि किसी की याद लगातार अपने अन्दर बसा लें तो यह याद प्रेम बन जायेगी। इसलिए गुरू जी का कथन है–

'गुरां इक देहि बुझाई॥
सभना जीआं का इकु दाता सो मैं बिसरि न जाई॥'

यदि हमें हमारा परमात्मा याद रहने लगे तो कार्य हो गया समझो। यदि याद न रहे तो उसके नाम का जप करना चाहिए नाम जपने से वह फिर याद रहने लग जाएगा या ऐसा कहो कि वह मन में बस जायेगा। मन में अपने स्वामी को याद रखना, नाम का सिमरण है। सिमरण करते हुए हम उससे जा मिलते हैं। फिर अलगाव नहीं रहता। इस सारी बात को 'नाम' कहते हैं।

बसन्त कौर– परन्तु यदि कोई ऐसे ही नाम रटता रहे।

हिम्मत सिंह– भोली ! नाम तो जीते–जागते आदमी ने जपना है किसी निर्जीव कोल्हू, चरखे ने तो नहीं जपना। जीवित व्यक्ति जो भी कार्य करता है, उसका प्रभाव उसके मन पर पड़ता है। हमने नाम यह सोच कर जपना है कि वह सिमरण बन जाये और सिमरण प्रेम बन जाये। तभी हमारी मनोवृत्ति मनोरथ को प्राप्त करेगी। हां यदि कोई पाखण्ड के लिए करता है तो वह अलग बात है।

बसन्त कौर– मैं कैसे भ्रमों में पड़ जाती हूं। भला भगवान से प्यार क्यों नहीं पैदा होता?

हिम्मत सिंह– एक संकेत और भी है। लोगों ने ईश्वर को भय–दाता, न क्षमा करने वाला और कठोर हाकिम समझ रखा है। इसीलिए उसके प्रति प्रेम उत्पन्न नहीं होता। गुरू जी ने उसको निर्भय, निर्वैर, क्षमाशील पिता, भ्राता, सखा–मित्र की तरह प्यार करने वाला और पतित–पावन बताया है। इस तरह परमेश्वर को 'आपे प्रीत, प्रेम परमेश्वर' समझने से परमेश्वर के साथ प्यार हो जाने में सरलता होती है और हमारा संकोच दूर हो जाता है। हम

'प्रेम–स्वरूप' से संकोच, डर, लाज से जो दूर रहते हैं, उसके पास होकर प्रेम करने लगते हैं और इस भय से कि वह एक कठोर हाकिम है, उसके प्रेम से वंचित नहीं रह जाते।

बसन्त कौर–हमें वाहिगुरू सांई से संकोच कैसा? मैं समझी नहीं।

हिम्मत सिंह– बात यह है कि परमेश्वर को भयदाता, भयानक और प्रतिकार की भावना रखने वाला समझ बैठें और अपने अवगुणों को हम जानते ही हैं, तो हमारे भीतर संकोच बैठ जाता है। उसके आगे अरदास करने में, उसका नाम जपने में लज्जा अनुभव करते हैं। कल्पना कीजिये कि शेरनी यदि मनुष्य की तरह व्यवहार करने लग जाये। उसका बच्चा बीमार हो जाये और दवाई आदि से स्वस्थ न हो। उसे कोई कहे कि परमेश्वर से प्रार्थना करो तो उसे संकोच होगा। पूछो तो कहेगी–'मैंने परमेश्वर के अनेक जीवों को मारा है, वह दंड देगा, कठोर–न्याय करेगा, वह कर्मों का बदला कई पीढ़ियों तक लेता है। मैं किस मूंह से उसके आगे प्रार्थना करूं।' बस, यही संकोच है। यदि हममें सुमति हो कि परमेश्वर एक व्यापक और चेतन शक्ति है और वह शुद्ध भलाई है, प्यार है, हमें तो हमारे कर्म मारते हैं, उसके पास जाने से हमें उसकी शीतलता और प्यार की छाया मिलती है, कर्मों के अवगुण दूर होते हैं, तब हमें प्रार्थना करते, नाम जपते, गुण गाते, शुक्र करते संकोच नहीं होगा। समझ गयीं।

बसन्त कौर– जी हां। स्वाद आ गया है।

हिम्मत सिंह– इस प्रकार जब हमने उसे प्रेम का स्रोत मान लिया तो पहला कदम यह पूरा हो गया कि जन्म–जन्म से बिछुड़े को परमेश्वर के 'क्षमाशील' और 'शुद्ध प्यार' होने का विश्वास हो गया। जब सबसे प्यारी वस्तु प्रिय लगे, तब चित्त की रूचि, उसके चरणों की ओर झुक गयी और उसके साथ मन का आठों पहर का लगाव हो गया। यह समझो कि जब हमारा अन्तरमन–हमरा स्व–सांई की याद (प्यार) में संलग्न हो गया तो समझो परमेश्वर के साथ जुड़ाव हो गया। फिर परमेश्वर की सुखपूर्ण लौ हममें आने लग जाएगी अर्थात हमारे प्यार पर उसका प्रेम आ मिलेगा। गुरू जी के 'प्रेम–दर्शन' का यह सूत्र सुनो और समझो–

ऐ मन मेरिया तू सदा रहु हरि नाले॥
हरि नालि रहु तु मंन मेरे दूख सभ विसारणा॥
अंगीकारू उहु करे तेरा कारज सभु सवारणा॥
सभना गलां समरथु स्वामी सो क्यों मनहु बिसारै॥
कहे नानक मन मेरे सदा रहु हरि नाले॥2॥

अर्थात हे मन ! तू सदा परमेश्वरर के साथ रह। साथ रहते हैं याद से जैसा कि मैंने अभी बताया था कि याद से सुरत भय और भ्रम के कूप से निकलकर धर्म–विश्वास और भरोसे के पखों से उड़कर प्रेम की अट्टालिका पर चढ़ जाती है। और जीवन का रस आ ज़ाता है।[1]

प्रेम का स्वरूप है 'याद'। याद का फल है प्रेम अर्थात यदि अन्तर में प्रेम है तो प्रिय याद रहता है और यदि अन्तर में याद है तो प्यारे का प्रेम हृदय में आ समाता है। वास्तव में प्रिय कभी दूर नहीं होता। केवल 'भूल के पर्दे' के कारण दूर लगता है। 'भूल' अहंकार से उत्पन्न होती है।

धन पिर का इक ही संगि वासा,
विचि हऊमें भीति करारी।[2]

इस तरह जब भूल को याद ने हटा दिया तो प्रिय जो पास ही था मिल गया। जब 'याद' से अलगाव दूर हुआ तो मिलन हो गया सो 'याद' 'लगातार याद', मिलन है।

जैसे सज्जन–सज्जन का साथ निभाता है वैसे ही परमेश्वर अपने प्रिय के अंग–संग रहता है, प्रेम करता है, अर्थात जब हम मन को उस सांई में लगा देते हैं तो स्वतः ही उसने हमें अपना प्यार और आनन्द–रस स्वयं ही देना है।[3] फिर हमारे दुःख दूर हो जायेंगे। वे दुःख जो संसार में हमें झेलने पड़ते हैं, दूर हो जायेंगे, क्योंकि वह

---

1. भय और भ्रम कारण है, अनका फल दुख और रोग है, इसलिए परमेश्वर से प्यार करने पर, 'दुख रोग बिन से भय भरम' गुरु जी ने बताया है।
2. एहु माइआ जितु परि बिसरै– (राम, अनन्द)
3. आख गुआल असां मनों ना बिसारिया तुसीं किवें ना याद करेसो।

हमारे अंग–संग होगा, दास जानकर रक्षा करेगा और हमारे सभी काम संवारेगा, क्योंकि वह सामर्थ्यवान है। इस संशय की आवश्यकता ही नहीं है कि संवार सकेगा या नहीं। वह 'सदा समर्थ' सदा संवारेगा। तब तो इस प्रेम योग से, याद द्वारा सांई से जुड़े रहने से, अर्थात परमेश्वर के साथ हृदय से लगे रहने से, परमेश्वर से अलगाने वाले तत्व स्वयं ही मन से दूर हो जायेंगे। परमेश्वर से इतर जो भी हैं, उनसे अलग रहने का नाम ही वैराग्य[1] है। इस वैराग्य से बाह्य संन्यास की आवश्यकता ही मिट गई। आनन्द का रास्ता और सांई का मार्ग जो पहले शुष्क और भयपूर्ण था, शीतल, छायादार, मीठा, सरस और प्रेमपूर्ण बन गया।

बसन्त कौर– अब समझी, इस अन्तर्मुखी सांई के साथ लगातार लगाव रखने से सभी गुण आ जायेंगे और सभी फल लग जायेंगे।

हिम्मत सिंह– हां, वाहिगुरू से प्रेम हो जाने पर संसार को तुच्छ और बुरा कहे बिना ही संसार से दूरी उत्पन्न हो गयी अर्थात मनुष्य जगत के कार्य करता हुआ भी इसकी कालिमा में फंसता नहीं। यह स्वतः ही वैराग्य हो गया। किन्तु न घर बार, न स्त्री तथा अन्य पदार्थ छोड़ने पड़े और न ही वनों में जाकर दुःख झेलने पड़े। घर बैठे ही वैराग्य हो गया। इस प्रकार समझ लो कि जब अन्तःकरण का झुकाव या लगन परमेश्वर की ओर रहती है तो यह हुआ क्या? 'ध्यान,' हठ योग वाला, मूर्तिपूजा वाला ध्यान नहीं, बल्कि सहज ध्यान, जीता जागता, आकर्षण वाला, प्यार वाला ध्यान, ईश्वर में संलग्न ध्यान–

'गुरमुखि लागे सहज धिआन॥'

यह ध्यान स्वामी की ओर अन्तःकरण का सुझाव होगा। ध्यान कहो, चिन्ता कहो, खयाल का सुझाव कहो, यह साई की ओर चलता रहेगा, जो निरन्तर होकर लिव कहलाएगा।

---

1. गुरसिखी में इस वैराग्य का रुप दूसरों से घृणा का नहीं है, परन्तु साई का हुक्म मानकर दूसरों की सेवा करना, उन्हें सुखी करना अपना धर्म समझना है। परन्तु मोह का जो अन्धकारमय पक्ष है उससे उज्जवल रहना है।

प्रेम में डूबे हुए व्यक्ति के खान–पान का संयम स्वतः हो जाता है। मन के विकार और अवगुण प्यारे के प्यार के कारण स्वयं ही छूट जाते हैं। वह जानता है कि वाहिगुरू पवित्र है उसे बुरे काम पसन्द नहीं हैं इसलिए प्यारे के स्वभाव के अनुसार ही हम प्यारे को प्रसन्न करेंगे। नाम जपने वाले व्यक्ति को नाम जपते हुए अपने अन्दर सफाई और स्वच्छता का भाव उपजता अनुभव होता है। अपना अन्तस अपने को सुन्दर लगता है। पाप–कर्मों से यह बात घटती है और मैल तथा धूल चढ़ जाती है। यह मैल बुरी लगती है और पीड़ा देती है इससे बचने के लिए नाम का प्रेमी बुरे कामों से संकोच करता, रूकता और सही ठिकाने पर टिक जाता है। इस प्रकार अपने आप, बिना दुःख पाए सभी साधन सुख से होते जाते हैं। विचार लीजिए कि जब प्रेमी प्यारे के रंग में रंगे जाते हैं, सुरति सदैव चढ़ी रही है। जिसे सुरति चढ़ी हो वह बिना किसी यत्न के बुरे कर्मों से अलिप्त रहता है। वैराग्य उसके अंग–संग में होता है, परन्तु अचेत रूप से सदैव लगे रहने के कारण अत्यन्त सहज ढंग से अभ्यास उसकी रग–रग में बसता है। उस प्रेम में डूबे हुए गिरावट कम होती है क्योंकि वह शरीर को कष्ट देने वाले साधन नहीं लाता। प्रेमी जड़ता में नहीं गिरता क्योंकि उसके लिए यह उपदेश है–

प्रभ की उसतति करहु संत मीत॥
सावधान एकागार चीत॥

वह सिद्धियों को धिक्कारता हुआ इनमें नहीं फंसता, वरन आगे बढ़ता जाता है। इस प्रकार इस मार्ग पर चलने वाले का आचरण ऊंचा और पवित्र हो जाता है। यदि गलती हो जाए तो वह उसे दूर करता है। वह उच्च जीवन की पक्की नींव पवित्र आचरण की बनाता है। फिर उसे एक और अनुभव मार्ग दर्शक के रूप में प्राप्त होता है। उसे बुरे कर्मों के कारण जो उदासी और दुःख होता है वह उसे बहुत चुभता है, क्योंकि वह मैल डाल कर आन्तरिक रस से विलगाव पैदा करता है। वाहिगुरू का रूप उसे अन्य रसों में डूबने नहीं देता क्योंकि अन्य रस इससे फीके हैं–

आनि सुआद सभि फीकिआ।
करि निरनउ डीठा।

अतः श्रेष्ठ रस में लिप्त वह और रसों में नहीं फंसता। इस तरह गुरूमुखों की गाड़ी मार्ग बहुत रसदायक, खतरे से खाली सीधा तथा सपाट सदा प्रसन्न स्वामी की ओर ले जाता है।

बसंत कौर– पति जी ! जिस रास्ते में प्रेम ही नहीं उसमें तो जान ही न होगी। जिस वाहिगुरू में मन को लगाना है यदि उससे प्रेम नहीं करना तो उसको मिलने के साधनों में रस और उत्साह कैसे हो सकता है?

हिम्मत सिंह– बात सीधी है। जब 'चेतन–आत्मा' को 'चेतन वाहिगुरू' से मिलना है तो उसका मिलाप 'चेतन साधन' के बिना कैसे हो सकता है? 'चेतन साधन' है 'प्रेम'। सो प्रेम के बिना मिलाप कैसा?

बसन्त कौर– ठीक है। मुझे समझ तो नहीं है, परन्तु आपके कथन से जो मोटी बात समझ में आई है वह यह कि यदि एक स्त्री एक पुरूष को एक दूसरे के निकट बैठा दिया जाय तो यह तो मिलाप नहीं। यदि उन दोनों के हृदय प्रेम से आकर्षित हुए हों तो ही प्रेम है, तभी मिलन है। इस प्रकार बिना प्रेम की लगन के वाहिगुरू का मिलन और उसका साधन व्यर्थ है, और मेरी समझ के अनुसार यदि ऐसा कहने में निरादर नहीं तो मृत–साधन है जिसमें प्राण या आत्मा नहीं है, वह हमारे ज्ञान का विषय तो नहीं बन सकता, अर्थात वह हमारी आंखों के सामने या मन के सामने मूर्त रूप में स्थित नहीं हो सकता।

हिम्मत सिंह– ठीक है। इस 'नाम' के बिना केवल निपट बातें सीखे हुए लोग बहुत भटकते हैं और भटकाते हैं। वे सोचते हैं कि बस ऐसा समझ लो कि वे ही परमेश्वर स्वरूप ज्योति हैं, कल्याण हैं। परन्तु ज्ञान तो है जान लेना और प्रेम है पा लेना। ज्ञान से ईश्वर को पाया तो नहीं जा सकता क्योंकि सोचना, जानना मन के धर्म हैं। मन का जानना तो सीमित ज्ञान है। नाम और अभ्यास से मन बदल जाये तो, जो बाहर को देखता है, अन्दर को देखे और एकाग्र मन सांई का

अनुभव करे अर्थात असली ज्ञान को प्राप्त करे जो आत्मा का ज्ञान है। वह केवल जानना नहीं है वह तो 'तत्व' या 'परमातत्व' को प्राप्त कर लेना है। जैसे कि महावाक्य हैं–

तंते कउ परम तंतु मिलाइआ नारक सरणि तुमारी।

स्वामी दृश्यमान नहीं है। जो दृश्यमान है, सतगुरू के अनुसार वह मिथ्या है और यह सत्य है।

बसन्त कौर– इसे खोलकर समझाइए।

हिम्मत सिंह– जैसे मां बैठी है, उसकी गोद में एक बच्चा बैठा है, सामने खिलौने पड़े हैं। बच्चा खिलौने देखकर उनपर मोहित–मस्त बैठा हुआ है। उसे मां का स्मरण तक भी नहीं रहा। खिलौने दृश्यमान हैं, बच्चा द्रष्टा है। अब बच्चे के मन को खिलौनों से अलग करें तो उसे समझ आयेगी कि मां है, उसे प्यार कर रही है, और वह उसकी गोद्री में बैठा हुआ है। उसकी पीठ उसके साथ लगकर सुख का अनुभव कर रही है। उसे अब मां का ज्ञान हुआ है। यह ज्ञान उस तरह का तो नहीं है न जैसा कि खिलौनों का हो रहा था। इससे समझ लो कि परमेश्वर का ज्ञान खिलौनों के ज्ञान जैसा नहीं है परन्तु खिलौनों से हटकर, अन्तर्मुखी होकर जब उसे मां का ज्ञान होता है, वह ज्ञान परमेश्वर के ज्ञान जैसा ही है। एक और उदाहरण से आपको समझाता हूं।

बसन्त कौर– वह कैसे?

हिम्मत सिंह– जैसे दृष्टि सब कुछ देखती है, परन्तु स्वयं को अन्य पदार्थों की तरह आंखों के सामने करके तो नहीं देख सकती। दृष्टि तो स्वयं यह अनुभव करती है कि वह देखने वाली है इसलिए दृष्टि का बोध तो दृष्टा को अपनी देखने वाली दशा का बोध है अतः इसी तरह प्रिये ! पहले 'अपने स्वरूप' में टिकाव होता है। यहां योगी अटक जाते हैं परन्तु गुरू जी बताते हैं कि हमारा स्व जो इस तरह टिका हुआ है उसके पीछे कोई और देखने वाला है।

बसंत कौर– जरा मोटे रूप में बताइए।

हिम्मत सिंह– मानो आप एक मूर्ति को देख रही हों। आपकी आंख देख रही है, किन्तु आप अपनी आँखें नहीं देख पाती, वैसे आप

अनुभव करते हैं कि आंख है। आंख दृष्टा है, मूर्ति दृश्यमान है। अब यदि आप मूर्ति को छोड़कर स्वयं में टिक गये। योग की परिसमाप्ती यहीं तक है। गुरू जी कहते हैं कि आंख के पीछे व्यक्ति का स्व है जो दृष्टि को शक्ति प्रदान करता है और आंख को दृश्य पदार्थों के देखने योग्य बनाता है। परन्तु स्वयं वह उसके पीछे देखने वाला है, अर्थात् हमारा स्व जगत को देखने वाला है और हमारे पीछे हमें और जगत को देखने वाला अकाल पुरूष है। इस तरह गुरू जी ने हमारे 'स्व' को 'तत्व' और वाहिगुरू के स्व को 'परमतत्व' कह कर दोनों के मिलन को 'मिलन' कहा है। यथा–"तंतै कउ परम तंतु मिलाइया नारक सरणि तुम्हारी।" हमने स्मरण के द्वारा दृश्यमान से उठकर स्व में टिकना है और स्व को परम स्व से मिलाना है। इसे मिलने कहो या अनुभूत ज्ञान कहो वैसा नहीं है जैसा बच्चा खिलौना देखते हुए प्राप्त करता है बल्कि वैसा है जैसा कि व्यक्ति जानता है कि उसकी आंखें हैं या बच्चा जान लेता है कि वह मां की गोद में बैठा है, चाहे मां पीछे है, नयनों के सामने नहीं। इसलिए गुरू जी ने–'मन मात्र द्वारा जान लेने को' नहीं, किन्तु 'नाम द्वारा मिलन होने' को ईश्वर प्राप्ति कहा है–

इक दू जीभो लख होहि लख होवहि लख वीस॥
लखु–लखु गेड़ा आखीअहि एकु नामु जगदीश॥
एतु राहि पति पवड़ीआ चढ़ीऐ होइ इकीस॥

बसंत कौर– असली बात थोड़ा सरल करके समझाइए।

हिम्मत सिंह– यह हमारा स्व अंश है, उस चेतन का जिसे परमेश्वर कहते हैं। उस चेतन का 'स्वरूप' प्रेम है, इस तरह अंश का स्वरूप भी प्रेम है। वियोग इसलिए है क्योंकि यह अंश दृश्यमान के प्रेम में फंस गया है। इसलिए अपने स्वामी 'प्रेम स्वरूप दृष्टा' से बिछुड़ गया है। अब मृत साधन के जरिये भला 'प्रेम की शक्ति', प्रेम की आत्मा के त्राण वालों को कैसे मिलना संभव है? हम चाहते हैं कि परमेश्वर से मिलन हो परन्तु वह तभी सम्भव है जब हमारे प्रेम का वेग जो दृष्यमान की ओर है, वह वाहिगुरू (दृष्टा) की ओर हो जाए। दोनों में प्रेम का गुण है या दोनों का वास्तविक स्वरूप प्रेम है, जब

सजातीय वस्तुएं, जिनका स्वरूप प्रेम है, आमने–सामने आती हैं तब वही प्रेम उनको मिला देता है। तब परम उत्तम कार्य यह है कि अपने प्रेम के प्रवाह को जो दृश्यमान की ओर आकर्षित होकर, परमेश्वर (दृष्टा) से बिछुड़ गया है, उसे मोड़कर हम परमेश्वर (दृष्टा) की ओर लगायें। यह स्वामी से मिलाप का सीधा और सरल मार्ग है।

बसन्त कौर– बहुत सूक्ष्म बातें हैं। आपने बहुत स्पष्ट करके समझाई हैं परन्तु मेरी बुद्धि मोटी है। इसलिए आपको सुना लूं कि मुझे आपकी बातें ठीक समझ आयीं हैं कि नहीं। (1) वाहिगुरू स्वयं प्रेम स्वरूप है। (2) जीव उसी का अंश है, इसलिए इसमें भी प्रेम है। परन्तु (3) जीव ने अपने इस गुण को दुनिया में लगा लिया है। (4) मन संसार में लग जाने के कारण इसकी आन्तरिक प्रेम शक्ति दृष्यमान के प्रेम में लग रही है। (5) और अपने कारण वाहिगुरू के प्रेम स्वरूप से इसी कारण बिछुड़ रही है। (6) अब यदि इसके इस स्वभाव को जो विमुख हो गया है फिर सही दिशा की ओर मोड़ दें कि भूल में रहने की बजाय, केवल सांसारिक आकर्षणों में लिप्त रहने की बजाय, परमेश्वर से प्रेम करें, अर्थात् मन को उसकी याद में लगा दें तब स्वभाव सीधा हो जायेगा।

जीवन में सांसारिक आवश्यकताएं हमें उदास कर देती हैं और उन्हें पूरा करने के लिए हम प्रार्थनाएं करते हैं। यह यत्न हमारे मोह के कारण होते हैं। यद्यपि हम सत्संगी भी हों तो भी प्रार्थना करते हैं कि 'हे भगवान, हमारा बच्चा अच्छा हो जाए। मेरी धरती में अधिक अन्न उत्पन्न हो।' इससे भी हम परमेश्वर के समीप तो हुए किन्तु अब भी उसे अन्य तथा इन वस्तुओं को कुछ अधिक अपना समझते हुए उससे हम इन वस्तुओं का सुख और इनकी बढ़ोत्तरी चाहते हैं। यदि हम में सांसारिक मोह न हो तो हम भगवान से प्रेम करें और जो कुछ प्राप्त हो उसे ईश्वर की इच्छा जानकर प्रसन्न रहें और सोचें कि यह संसार तो सदा के लिए अपना नहीं है और इसमें जो कुछ हो रहा है सब ईश्वर की लीला से हो रहा है, जो कुछ ईश्वर कर रहा है, अच्छा कर रहा है। इस तरह हम प्रिय से जुड़ जाते हैं। यही 'हुकमि रजाई चलना' है। पति जी ! मेरी समझ में तो कुछ इस तरह से आया है।

हिम्मत सिंह– ठीक है।

बसन्त कौर– परन्तु एक संशय है। औरतें गाया करती हैं–वे ढोला, नेहं न लगदे जोरी ते पुच्छ न पैंदे मामले[1]। यह जो वाहिगुरू के साथ प्रेम है, अर्थात् प्रेम लगाना है, यह कैसे लग सकता है? दृश्य वस्तुओं में तो उनकी सुन्दरता और आकर्षण होता है, उनके गुण आदि मन को मोह लेते हैं और उनसे स्नेह हो जाता है परन्तु भगवान तो दिखता नहीं, उसकी सुन्दरता को आंखों से नहीं देखा जा सकता। उसके गुण मन को आकर्षित नहीं करते तो बताओ उससे प्रेम भला कैसे हो सकता है?

हिम्मत सिंह...यह बात ठीक है। परन्तु दुनिया में भी प्रेम का कारण सदा सुन्दरता और गुण नहीं होते। कई बार मन अकारण आकर्षित हो जाता है। गुरमुख कहते हैं कि पिछले जन्मों के मेल होते हैं, या दो आत्माओं में प्राकृतिक आकर्षण होता है, जिनके कारण हमें मालूम नहीं है। इसलिए प्रिये ! प्रायः पूर्व जन्मों के कर्मों के कारण लोग यहां अकारण ही ईश्वर की ओर आकर्षित हो जाते हैं और उससे प्रेम करते हैं। उनके अन्दर कुछ ऐसी सूझ होती है जो उन्हें बरवस मार्ग में डाल देती है। प्राकृतिक सुन्दरता के दृश्य उस कर्ता की प्राप्ति की इच्छा जगा देते हैं। कुछ कम अच्छे कर्मों वाले थोड़ा पीछे रहते हैं और कोई ठोकर खाकर अथवा किसी बहाने से इस मार्ग पर आते हैं। गुरसिखी में गुरवाणी का पाठ और विचार करने वाले इस मार्ग पर आते हैं। परन्तु जिन्हें पूर्व जन्म का तीर नहीं लगा और अब लगना है वे सत्संगति के कारण भक्ति मार्ग को स्वीकारते हैं। जैसे कुसंगति से बुराइयां लग जाती हैं वैसे ही सत्संगति से स्वामी के प्रति प्रेम हो जाता है।

बसन्त कौर– परन्तु सत्संगति में बैठने का आकर्षण मन में कैसे पैदा हो।

हिम्मत सिंह– इसके लिए तो उद्यम करना होगा। प्रायः लोग दुखों के कारण सत्संगति में आते हैं। श्री गुरुजी ने इसकी दवा

---

1. प्यार जबरदस्ती नहीं होता और लगान पूछकर नहीं लगता।

'दुख' भी लिखी है। नाशवान–दुखदायी और जड़ संसार सभी को दिखाई देता है जिनसे प्रेम कर ` हैं वे मर जाते हैं। जिन वस्तुओं का हम संग्रह करते हैं, वे नष्ट हो जाती हैं। तब शोकसंताप का चिन्तन होता है कि हाय ! क्या हुआ? ये प्रिय जन कहां गये? सांसारिक आकर्षण दुख देता है इन दुखों से मन में विचार आता है कि इनका इलाज क्या है? मनुष्य दुखों से मुक्त होने के लिए अपनी बुद्धि से सभी यत्न करता है। नाशवान तो नष्ट होगा ही। जब कुछ उपाय नहीं सूझता सभी ओर आघात सहकर मन सोचता है कि सुख कहां है? जब कोई गुरमुख उसे सुखी नजर आता है, जिसे वे सभी दुख–कलेश नहीं हैं, जो हमें हैं तो वह हैरान होकर गुरमुख से कारण पूछता है, वे कृपा करके उसे बताते हैं कि जो दृश्यमान संसार है, उसमें परिवर्तन आते ही हैं। यदि इससे मोह होगा तो इसमें घटित होने वाला प्रत्येक परिवर्तन दुख ही देगा। यदि आप उससे प्रेम करें, जो इसका कारण है, संसार जिसका प्रकाश है, तभी सुख मिलेगा क्योंकि वह सदा एक रस रहता है। वह ही स्थायी सुख होगा। जब इस तरह के विचार मन में आते हैं तब गुरमुखों का संग अच्छा लगता है। जब उनसे मेल–जोल होता है तब उनका रंग चढ़ने लगता है। इस प्रकार दृश्यमान के प्रेम से उत्पन्न दुख हमें सत्संगति की ओर ले जाते हैं।

बसन्त कौर– ठीक है। उनके पास बैठने–उठने से देखा–देखी नेह लग जाता हे, या वे गुरू का दर्शन करा देते हैं और उसकी सुन्दरता हमें मोह लेती है।

हिम्मत सिंह– यह तो अपनी–अपनी आत्मा की स्वच्छता पर निर्भर करता है, किन्तु गुरमुख जब दया करते हैं तब परमेश्वर की सेवा की विधि सिखाते हैं और परमेश्वर के गुणों का कीर्तन सुनाते हैं और उसके यश का वर्णन करते हैं। इससे मन पर प्रभाव पड़ता है। फिर वे वाणी पढ़ने में मन लगाते हैं। वाणी में परमेश्वर के प्रेम की बातें होती हैं। श्रेष्ठ, सच्चे, प्रेमी हृदय से उच्चरित होने के कारण वाणी में सच्चाई होती है। उसके प्रभाव से मन में प्रेम उत्पन्न होता है। फिर गुरमुख श्री परमेश्वर जी के आगे विनय करने का स्वभाव प्राप्त करते हैं और कृतज्ञता के रहस्य को समझाते हैं। इस तरह मन

के मोह की धारणा पलटती है। अच्छी बातों की ओर ध्यान जाने लग पड़ता है और बुरी बातों का बुरापन दिखाई देने लगता है। मन कुछ मधुर उदासी वाला, कुछ श्रेष्ठ, और कुछ उमंग वाला हो जाता है। तब गुरमुख परमेश्वर की याद की विधि सिखलाते हैं। जब याद अर्थात स्मरण का चस्का पड़ जाता है तो समझ लो कि प्रेम हो गया। यह प्रेम 'नाम' है प्रिय से मिलन है।

बसन्त कौर– बहुत ही साफ रास्ता है, किन्तु गुरमुखों की क्या पहचान है? क्या पता कोई गलत आदमी मिल जाए और भ्रम में डाल दे? क्योंकि जिसने–केवल सुना है, किन्तु देखा नहीं है, उसे बगुलों और हंसों की पहचान कैसे हो सकती है?

हिम्मत सिंह– ठीक है, परन्तु विचार कीजिए, जैसे सरोवर से आने वाली पवन में शीतलता भी होती है, उसी प्रकार भले लोगों का प्रभाव भला होता है। फिर वाहिगुरू दया की मूर्ति हैं, यदि प्रार्थना करके ढूंढें तो परमेश्वर भले लोगों से ही मिलवा देगा। गुरमुखों की पहचान गुरूजी ने समस्त वाणी में लिखी है। स्व में जुड़े हुए को योगी कहते हैं पर जो वाहिगुरू से जुड़े उसे गुरमुख कहते हैं। गुरमुखों में सबसे बड़ा गुण उनमें वाहिगुरू से प्रेम है। उसकी अन्तर–आत्मा सदा वाहिगुरू से मिली रहती है। अन्य गुण इस गुण के लक्षण मात्र हैं। आंखों का पीला–पन अपने में रोग नहीं बल्कि जिगर में पित्त के रोगों को स्पष्ट करता है। आंखों का पीलापन भीतरी रोग का लक्षण है। सो गुरमुखों के आन्तरिक प्यार को सदा याद से स्वामी में लगे रहने की स्थिति को गुरमुख खुद ही जानते हैं, परन्तु उस आन्तरिक स्थिति से जो लक्ष्ण पैदा होते हैं वे पहचानने में सहायता करते हैं। गुरमुखों की (1) आन्तरिक स्थिति यह होती है कि उनका मन सदा ईश्वर की ओर लगा रहता है। उसकी याद कभी विस्मृत नहीं होती, उनको उसके आस्वादन में एक आनन्द रस मिलता है। उनकी क्रीड़ा ऊंचा उठने में होती है। वे भय और भ्रम में नहीं पड़ते। (2) आचरण ऐसा हो जाता है कि सुखी लोगों से वे प्रेम करते हैं और दुखियों पर दया करते हैं, भले और परोपकारी कार्यों में उनसे सहज ही भलाई होती है, कुकर्मों और कुसंगति से बचते हैं। उनके सभी

कर्म फल की इच्छा से रहित होते हैं। (3) उनकी सत्संगति के प्रभाव से मन प्रसन्न होता है। उनके पास बैठने से मन प्रफुल्लित होता है। मन में सात्विक भय का संचार होता है। सत्संगति से शीतलता प्राप्त होती। (4) वाहिगुरू उनको प्यार करता है। इसलिए उनका ध्यान ईश्वर के चरणों में लगा रहता है।' (5) सत्गुरू जी ने बताया है "साध के संगि नहीं कछु घाल।। दरशनु भेटत होत निहाल।।"[1] साधु को संगति से स्वतः ही यह प्रभाव होता है कि उसके दर्शन मात्र से मन प्रसन्न हो जाता है अर्थात प्रफुल्लित हो जाता है। वास्तव में गुरसिखी की पहीली शर्त है गुरूदीक्षा जो अमृत छकने से प्राप्त होती है। अमृत छक कर नियमों का पालन करना होता है, वाणी पढ़नी होती है, उसका कीर्तन, चिन्तन और मनन करना होता है, मूल मंत्र का उच्चारण करना होता है। गुरूमंत्र का अभ्यास करना होता है।[2] यदि स्वतः मार्ग पर चल पड़े तो वाह ! वाह ! नहीं तो नाम के प्रेमी गुरमुख की सत्संगति करनी चाहिए। कीर्तन, कथा, गुरूद्वारा गमन, वाणी का पाठ, गुरमुख की संगति सभी साधन है।

बसन्त कौर– यदि मन सांसारिक दुखों को प्राप्त कर ईश्वर की ओर लौटे, अभ्यास करे, सहायता के लिए गुरमुखों की सत्संगति करे और आपके कथनानुसार वे उसे ठीक रास्ते पर डाल दें, फिर तो कोई कष्ट नहीं होना चाहिए। मैं अपनी ओर से देखती हूं कि मुझे नाम प्राप्त है। आप गुरमुख हो और मुझे भक्ति मार्ग पर भी डाल दिया है परन्तु फिर भी मेरा मन सांसारिक चक्रों में पड़ा हुआ है, डरती हूं कहीं किसी भ्रम की शिकार न हो जाऊं।

हिम्मत सिंह– कठिनाई तब कोई नहीं होती जब मन की धारणा उचित हो तो यदि धारणा ऊंचा उठने की है, मन को सतगुरू नानक की ओर रूख कर लिया है तो जितनी भी भूलें होती हैं वे सब भक्त उन्नति के सोपान की सीढ़ियां बन जाती हैं। प्रत्येक भूल दुख का

---

1. उइ दाते दुख काटन हार।। जा कै संगि तरै संसार।।
(गऊः सुखमनीए महला 5)
2. गुरसिखी में सहजधारियों को भी वाणी के अभ्यास में स्वामी से प्रेम करने की देन प्राप्त होती है।

कारण बनती है। प्रत्येक दुख मन को शिक्षा देता है। मन ने जो कुछ भी सीखा है दुख की भट्ठी में तप–तप कर ही सीखा है। सत्संगति से यह लाभ है कि उससे भूलें कम होती हैं। यदि भूल हो भी जाए तो सत्संगति से तुरन्त दूर हो जाती है। इसीलिए गुरूजी ने शुभ संगति का आदेश दिया है–

सती पहरी सतु भला वहीऐ पड़िआ पासि।।
उथे पापु पुंनु बीचारीऐ कूड़ै घटै रासि।।

बसन्त कौर– सच है, पति जी ! जैसे मेरी आज की भूल को यदि आप दूर नहीं करते तो मैं कई दिन तक इस दुख में जलती रहती। पता नहीं इस भूल से उबर भी पाती या नहीं।

हिम्मत सिंह– इसीलिए सत्संगति बहुत जरूरी है। किन्तु हमें सावधान रहना चाहिए कि सत्संगति असली हो। हम पर तो कृपा है, सद्गुणों पर चलने वाले गुरमुख सिखी में बहुत हैं, परन्तु वैसे गुरमुख आम तौर पर नहीं दिखते। जो साधु–संत आम–तौर पर नजर आते हैं, उनमें से कोई तपस्वीए कोई नियम पर चलने वाले किन्तु अधिकतर पाखंडी होते हैं। सत्गुरू ने कहा है–'ढूडि सजन संत पकिया।' कबीर जी ने भी कहा है–'कबीर जऊ तुहि साध पिरंम की पाके सेती खेलु।। काची सरसउ पलिकै न खलि भई न तेलु।। इसलिए प्रिये ! कैसे भी हो, दुख से या आन्तरिक इच्छा से, या और तरह से, जब अन्दर से ईश्वर के मार्ग की उमंग उठती है तो पहला काम यह है कि नित–नियम से मन लगाकर नित्य प्रति वाणी का पाठ करना। श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी का नित्य ही दर्शन करना और विचार सहित अपने बचाव के लिए पाठ करना गुरूजी के चरणों में प्रार्थना करना कि 'सच्चे पातशाह जी ! आप अपने नेतृत्व में हमें आगे बढ़ाएं। गुरमुख से मिलन के लिए प्रतिदिन अरदास करो। हम नित्य प्रति अरदास (प्रार्थना) करते हैं–गुरमुख दा मेल, साध दा संग सोई प्यारे मेल जिन्हां मिलिया तेरा नाम चित्त आवे।" अर्थात गुरमुख सच्चे गुरमुख से मिलन हों मिलन गहरे प्रेमसम्बन्ध का नाम है। साधु का संग हो, अर्थात जो ईश्वर से मिलने के मार्ग पर चल रहा हो, उसकी संगति हो और नाम जपने वाले सिख भाइयों का साथ बना रहे।

क्योंकि जो स्वयं भगवान का नाम जपते हैं उनके पास बैठने से मन नाम में लगता है।

बसन्त कौर– पति जी ! मैंने यह बात इसलिए पूछी है कि हमारी बच्ची सतवंत कैद में पड़ गयी है। विदेश चली गयी है, गुरमुख पिता से बिछुड़ गयी है। अब उसे 'गुरमुख का मेल, साध का संग और नाम जपने वालों के दर्शन कहां होंगे? आठों पहरों का कुसंग, वियोग, कैद, भूख, गरीबी तो उसे परमेश्वर के प्रेम से अलग कर देती होगी। ऐसे प्रेमी जनों के लिए गुरू जी ने क्या कृपा की है, कृपया मुझे समझाइए।

पति–परमेश्वर की दयालुता की आपने बात नहीं सुनी, "हरि जुगु जुग भगत उपाइया पैज रखदा आइया राम राजे।"

स्वामी अपनों के मन में स्वयं आ विराजता है।

फिर वहीं 'दुख दारू' और 'नीयत रास' वाली बात याद करो जिसकी इच्छा ईश्वर से मिलन की है, चाहे कितना निर्बल हो, कितना पतित और भ्रमित हो, वाहिगुरू उसकी स्वयं रक्षा करते हैं। यह प्रकृति का नियम है कि परमेश्वर को याद रखने वाले प्रिय जन जब विपदा में पड़ते हैं तब ईश्वर उन्हें बल देता है और विपदा को सहने की शक्ति देता है। उनका मन संघर्ष कर, कठिनाइयों का सामना कर, श्रेष्ठ हो जाता है। फिर हमारे पंथ का स्वभाव बड़े प्यार वाला है। पिछली लूटमार में जितने सिख काबुल कैद होकर गये थे, उनकी रक्षा के लिए प्रतिदिन दो समय धर्मशालाओं और गुरूद्वारों में सामूहिक तथा प्रत्येक सिख की ओर से प्रार्थना होती है। गुरमुखों और प्रेमियों की ओर से जो रोज सच्चे हृदय से प्रार्थना होती है, उनकी आत्मा को बल देती है। वाहिगुरू की व्यापक सत्ता को सहायता लिए आकर्षित करती है। हमारा विश्वास है कि सभी प्रियजन कैद से छूटकर सकुशल लौट आयेंगे। पहले लगभग सभी आ चुके हैं। इसलिए मैं आपको समझाता हूं कि सिख के हृदय को भला कौन बदल सकता है? बच्ची की चिंता मत करो, बल्कि संतोष रखो और प्रतिदिन दृढ़ मन से बच्ची का ध्यान करके उसको शक्ति दो। हम जो प्रतिदिन प्रार्थना करते हैं कि 'जहां–जहां खालसा जी

साहिब तहां–तहां रक्षा रिआइत' सच मानो यह हमारे पंथ के प्रेम की कितनी पक्की गांठ है। आप जानती ही हैं–कि पंथ में गुरू परमेश्वर का प्यार और विश्वास कितना है। प्रेम में जुड़े हृदय जब अरदास (प्रार्थना) करते हैं तो कैसे हो सकता है कि कठिनाइयों में पड़े प्रेमी जनों रक्षा न होती हो? यह भला कैसे हो सकता है कि समस्त पंथ और यह अरदास करने वालों की अरदास का बंदीखाने में पड़े, दूर गये, बिछुड़े हुए और विवश जनों या कष्ट में पड़े प्रेमी जनों के हृदय की इससे बल न मिलता हो?

बसन्त कौर– सच है, हमारी गुरसिखी धन्य है, हमारा पंथ का प्रेम धन्य है कि सभी सिख औरों के दर्द को अपना दर्द समझते हैं और फिर श्रेष्ठ कर्मों वाले और श्रेष्ठ पुरूष अपने लोगों के पीछे जाते हैं और एक–एक बच्चा ढूंढ़ कर वापस लेकर आते हैं। धन्य सिख, ध न्य सिखों का प्रेम। पति जी, आपका भी जन्म धन्य है। आपके इस उत्तम उपदेश में ऐसा मन लग रहा है कि इस समय मेरा मोह, भ्रम दूर हो गये हैं। ऐसी कृपा करो कि मन सदा ऐसा ही रहे।

हिम्मत सिंह– श्री गुरूजी ने सुरत के उतार–चढ़ाव से सम्बन्धि त सुखमनी में स्पष्ट लिखा है कि मन में उतार–चढ़ाव जाता रहता है, इससे निराश नहीं होना चाहिए। सच्चा स्मरण ही इसका इलाज है और सत्संगति करना है जैसा कि वहां ही बताया गया है–

कबहु साध संगति इहु पावै ।।
उस असथान ते बहुरि न आवै ।। (सुखमनी)

बसन्त कौर– सिरताज जी। यदि हो सके तो ऐसा कुछ विशेष प्रबन्ध कीजिये जिससे आजकल घर में निरन्तर कीर्तन होता रहे और मन साधु–संगति के चरणों में रहे।

पति– सत्य वचन ! श्री गुरू ग्रंथ साहिब का अखण्ड पाठ करवाते हैं, और प्रेमी जनों को आमन्त्रित करते हैं।

बसन्त कौर– "वाह ! वाह ! यह तो बहुत ही अच्छा है।"

अगले दिन दूर–पास के प्रेमी जनों को संदेश पहुंच गये और भाई साहिब के घर संगति आ पहुंची। श्री गुरू ग्रंथ साहिब का अखण्ड पाठ रखवाया गया। वाहिगुरू जी के चरणों में अरदास की गयी कि काबुल

गये कैदी सकुशल वापस लौटें और सतगुरू उन दूर गये जनों की और उन्हें छुड़ाने गये लोगों की सहायता स्वयं करें। पांच भोग डालकर संगत विदा हुई। पंद्रह–बीस दिन तक भाई साहिब का घर सचखण्ड बना रहा। दिन रात एक–रस ईश्वर की आराधना होती रही, आराधना करने वाले सच्चे हीरे, प्रेमी जन और ईश्वर भक्त थे। वे पवित्र हृदय वाले लोग थे। लगातार सत्संगति ने बसन्त क़ौर के हृदय को प्रभावित किया और उसके ममतापूर्ण हृदय में फिर से आशा जाग उठी, और उसके संतोष में वृद्धि हुई। उसके विश्वास ने उच्चता प्राप्त की।

: १६ :

ऐसा समझा जाता है कि मीर मंनू ने मरने से पहले दिल्ली दरबार में अपना सम्बन्ध दृढ़ करने के लिए अपनी लड़की की मंगनी दिल्ली के वजीर गाजीउद्दीन से की थी, परन्तु मुराद बेगम और उसकी लड़की इसके विरूद्ध थीं। जब बेगम और उमरावों की अनबन हो गयी तो गाजीउद्दीन ने सैयद जमील को उसकी सहायता के लिए लाहौर भेजा, किन्तु बेगम की उससे भी बिगड़ गयी। बेगम ने चोरी छिपे अब्दाली को अपनी सहायता के लिए बुलवा लियां गाजीउद्दीन को बेगम की यह चालाकी मालूम हो गयी और वह 1812 वि॰ में दिल्ली से अपनी सेनाएं लेकर चला। अपनी अधिकांश सेना उसने माछीवाड़ा छोड़ दी और थोड़ी–सी सेना लेकर वह इस तरह तेजी से आगे बढ़ा जैसे विवाह करने जा रहा हो। इस बहाने उसने लाहौर पहुंच कर अचानक बेगम का महल घेर लिया। जब बेगम नहीं मानीं तो उसे कैद करके दिल्ली भेज दिया और लाहौर की सूबेदारी 30 लाख नजराना पर दुआबा के हाकिम आदीना बेग को दे द्री। वज़ीर वापस दिल्ली लौट गया। बेगम की लड़की से विवाह कर लिया। किन्तु अहमदशाह अब्दाली ये खबरें सुनकर 1813 वि॰ में कंधार से पंजाब पर सेनाएं लेकर आ गया। आदीना बेग भाग कर पहाड़ में छिप गया।[1] लाहौर में अपनी कुछ सेना छोड़कर अब्दाली आगे बढ़ा। दुआबा पहुंच कर उसने नासिरूद्दीन को वहां का हाकिम नियुक्त

1. जकाउल्ला।

किया। और फिर स्वयं सरहिंद होता हुआ दिल्ली पहुंचा। नवाब नजीबुद्देला जो अन्दर से अब्दाली से मिला हुआ था,[1] अब्दाली से करनाल में आकर मिल गया। उधर बादशाह आलमगीर और वजीर गाजीउद्दीन ने भी दस कोस आगे बढ़कर अब्दाली का स्वागत किया और आक्रमणकारी को स्वागत के साथ शहर में ले आये। वजीर ने पहले सास से संधि की और फिर उसकी सिफारिश से अब्दाली से क्षमा मांगी। अब अब्दाली ने अमीर–उमरावों को आड़े हाथों लिया। तलाशियां लीं, लाखों रूपये निकलवाये। फिर शहर के लोगों को लूटा। दो महीने शहर पर वही विपदा रही कि लोग नादिर की लूट को भी भूल गये। बड़े–बड़े अमीरों के घर में झाड़ू का तिनका तक भी न छोड़ा। आखिर अब्दाली ने अपने बेटे तैमूरशाह का विवाह मुहम्मद शाह के लड़के अहमद शाह की लड़की के साथ किया। फिर बल्लभगढ़ का कत्ल किया। मथुरा को लूटा और कत्ल–ए– आम की।[2] फिर आगरा पर कहर ढाया और आसपास का देश उसने वीरान कर दिया। हजारों हिन्दुओं को गुलाम बनाकर साथ ले चला। वहिशियाना जुल्म और कत्ल के बाद अब्दाली दिल्ली आया और मुहम्मद शाह की बेटी हजरत बेगम से विवाह करके बादशाह आलमगीर से बहुत–सा धन लिया और उसे सिंहासन पर बैठाकर कंधार को वापस लौट गया। लाहौर से जब वह वापस लौट रहा था तभी रास्ते में वह दुर्घटना हुई थी कि सतवंत कौर भी कैद कर ली गयी थी।

ऊपर वर्णित स्थिति के अनुसार जब अब्दाली दिल्ली की ओर गया था तो अदीना बेग पहाड़ों से नीचे उतर आया था। जालन्धर क्षेत्र में इस समय नासुरूद्दीन सिखों पर कहर ढा रहा था। नासुरूद्दीन ने सोढी बड़भाग सिंह को इतना तंग किया कि उन्हें भी भागना पड़ा।[3] नासुरूद्दीन ने गुरूद्वारे पर कब्जा कर लिया और 'थम्म

---

1. उमदा–तुं–त्वारीख।
2. जकाउल्ला, करनल बी० जी० मैलसन।
3. तवा खां ने लिखा है कि 1797 में कुतुबद्दीन नाम के जालंधर के हाकिम ने सिखों पर ऐसे अत्याचार किये थे।

साहिब' को जला दिया। वहां गायों की हत्या की, स्त्रियों पर अत्याचार किये और तरह–तरह के कहर ढाये।[1] इन्हीं दिनों में गांव भेड़ी (होशियारपुर) के समीप सोढी साहिब और आदीनाबेग का मेल हो गया। दोनों एक ही दुख से दुखी थे इसलिए दोनों में संधि हो गयी और आपातकालीन एकता के कारण एक 'आशय' हो गया। यहीं अब यह योजना बनायी गयी कि जालन्धर से नासिरूद्दीन को निकाल दिया जाये। इसलिए सोढी साहिब ने जंगलों, वनों, पहाड़ों आदि सभी जगह सिंहों को सन्देश भेज दिये। खालसा दल मस्त सिंहों की तरह उमड़ आये। एक विशाल सेना एकत्रित हो गयी। आपसी सलाह मशवरे के पश्चात् आदीना बेग के साथ शर्तों का फैसला हुआ और खालसा के जत्थेदार नवाब कपूर सिंह जी इस युद्ध में सिखों के और तुरकों के दोनों दलों के नेता बनाए गये। उस समय का एक मजाक अभी तक चला आ रहा है। वह यह कि अदीनाबेग और नासिरूद्दीन की सेना की एक जैसी नीली वर्दी थी। इसलिए यह खतरा था कि कहीं नासिरूद्दीन की सेना समझकर खालसा सेना अपने मित्र की सेना पर ही न टूट पड़ें। इसलिए जत्थेदार ने प्रत्येक मुसलमान सिपाही को आदेश दिया कि वह अपनी पगड़ी में गेहूं की बालियां कस कर बांध ले जिससे खालसा दल अपने मित्रों को पहचान सके। सबसे पहले नवाब साहिब ने अपने हाथ से अदीना बेग की पगड़ी में कुछ बालियां बांध दी। कहते हैं कि अदीना बेग ने इसे अपनी विजय का शकुन समझकर नवाब कपूर सिंह को धन्यवाद दिया परन्तु इस निशान ने शत्रुओं को भी लाभ पहुंचाया। घमासान युद्ध शुरू हो गया। सिखों के हमले की तीक्ष्णता में कौम का जोश, बेगुनाहों के कत्ल का रोष और गुरूद्वारों के अपमान का बदला लेने का भाव था जो उनके सिरों में आ चढ़ा। सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया ने फौज का एक दस्ता लेकर दायीं तरफ से इतनी तेजी से आक्रमण किया कि तोपों तक पहुंचकर उनके मुंह बंद कर दिये। सेनापति शमशेर खां का सिर धड़ से अलग

---

1. देखिए! रतन सिंह भंगू कृत पंथ प्रकाश।

कर दिया। दूसरी और सैयद खैरशाह सरदार करम सिंह जी पंज गड़िए के हाथों से कत्ल हो गया। जब शत्रु के दो बड़े सरदार गाजर मूली की तरह काट दिये गये तब क्या था? नासिरूद्दीन की सेना में भगदड़ मच गयी। सिख जालन्धर शहर में घुस गये और शहर पर कब्जा कर लिया। इसी समय नासिरूद्दीन भी एक दस्ते के हाथ आ गया। गुरूद्वारा जलाने के अपराध में उसे जान से हाथ धोने पड़े।[1] विजय की खुशी में अदीना बेग ने इस अवसर पर पांच हजार रूपये का कढ़ाह प्रसाद करवाकर श्री गुरू ग्रंथ साहिब को भेंट किया और कुछ हजार रूपये गुरूद्वारे की मरम्मत के लिए भेंट किये। इस तरह कुछ ही दिनों में गुरूद्वारा फिर बन गया।

आदीना बेग ने इस मन्दिर के साथ जागीर लगा दी, जिसका कुछ हिस्सा आज तक मन्दिर के साथ है। जिन–जिन सिखों के घरबार बर्बाद हुए, उनकी हानि भी अदीना बेग ने पूरी की। इस तरह उसका मेल–जोल खालसा पंथ के साथ बड़ गया।

अहमदशाह जल्दी में था। वह कंधार चला गया था। उसने अपने पुत्र तैमूर शाह को लाहौर का सूबेदार बना दिया और जहां खां को उसका वजीर नियुक्त किया। वह अपने बेटे को कह गया था कि सिखों को दंड देना। इसलिए तैमूर ने सिखों के साथ सख्ती शुरू कर दी किन्तु सिख क्या कभी उसका दबदबा मान सकते थे? आबाद पंजाब फिर से उजड़ गया और खालसा सेना को वनों और जंगलों में जाना पड़ा।

शाहजादा तैमूर को एक दिन बादशाह से व्यक्तिगत सन्देश मिला जिसमें सतवंत कौर के गांव का पता लिखा हुआ था। उस पत्र में उसे यह पता लगाने के लिए कहा गया था कि हिम्मत सिंह की लड़की जो मीर जाफर द्वारा छल के साथ कैद करके लाई गयी थी, घर पहुंची है कि नहीं। अगर पहुंच गयी हो तो कैद करके काबुल

---

1. डा० कर्म सिंह ने एक जगह लिखा है कि नासिरुद्दीन मर चुका था। सोढी साहिब ने उसके मुर्दे को निकलवाकर उसे थम साहिब को जलाने के अपराध में जलवाया था।

वापस भेज दी जाए और यदि न पहुंची हो तो किसी के साथ कोई बुरा बर्ताव न किया जाए। पूछ—ताछ भी चुपचाप की जाए। किसी को पता न लगे। तैमूर शाह ने इस काम को अपने एक विश्वास पात्र को सौंप दिया। वह सारा इन्तजाम करके चल पड़ा। दो एक औरतों ने गांव में जाकर चुपचाप पता किया। केवल इतना ही पता चला कि एक अति धर्मात्मा और दैवी कन्या को जिसने एक काबुली सरदार के साथ नेकी की थी, उसे कैद करके ले गया था। उसके मां बाप को उसकी कोई खबर अभी तक नहीं मिली कि उसका क्या हुआ है?

औरतों ने चुपचाप पूछ—पड़ताल की थी फिर भी बसन्त कौर के कानों में भनक पड़ गयी कि सतवंत की पूछ—पड़ताल हो रही है। मां की ममता का ठिकाना नहीं था। इधर—उधर से पूछती हुई वह उन औरतों से जाकर मिली जो सतवंत कौर को ढूढ़ने आयी थीं। उसने इस तरह से अपनी लड़की के बारे में उनसे कहा कि पत्थर भी मो हो जायें। विशेष बात तो उनको भी पता नहीं थी किन्तु बसन्त कौर को इतना जरूर मालूम हो गया कि काबुल से यह पूछा गया है कि सतवंत कौर घर पहुंची है या नहीं।

अब घर में सोच विचार हुई। सभी इस निष्कर्ष पर पहुचे कि सतवंत कौर किसी बड़े आदमी के हाथों में पड़ी होगी, नहीं तो इतनी ढूंढ़ पड़ताल नहीं हो सकती थी। इससे यह भी स्पष्ट है कि वह बंदी खाने से भाग निकली है। उसका वापस लौटना यह भी बताता है कि उसने सतीत्व की रक्षा की है और अपने घर में पहुंचने की उसकी इच्छा है। इससे धर्म में दृढ़ मां को सन्तोष हुआ कि उसकी प्यारी लड़की का सतीत्व बच गया है। वह बेशक अनेक विपदाओं में घिरी हुई होगी, किंतु अब भी धर्म—रक्षा के लिए संघर्ष कर रही है। मां की अन्तड़ियों का संसारी अंग तड़फ रहा था किन्तु बड़ी तड़पन जो ध र्म पर चोट करती थी दूर हो गई क्योंकि यह निश्चय सुखदायक था कि वह जो काबुल से भाग निकली है और अभी तक उनके हाथ में नहीं आई है तो यदि कभी फंस भी गयी तो जान की बाजी लगा देगी परन्तु सतीत्व नष्ट नहीं होने देगी। आज बसंत कौर के घर शोक नहीं मनाया गया। सहेलियां और निकट सम्बन्धी दुख व्यक्त करने नहीं आये। आज घर में खुशी मनायी गयी। अरदास की गयी,

कृतज्ञता व्यक्त की गयी। लोहे की खदान में इस बात की प्रसन्नता थी कि खदान से बिछुड़े लोहे ने अपनी कठोरता का त्याग नहीं किया है। जहां–जहां सिखों को यह खबर पहुंची वहां से बधाई आई। प्रत्येक सिख खबर पाते ही हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता और वाहिगुरू को धन्यवाद देता–तू धन्य है जो हमारे बच्चों की घर–बार, दुख–सुख, दुश्मनों की कैद में भी सहायता कर रहा है। फिर अरदास की गयी कि हे वाहिगुरू जी ! प्यारी लड़की की सहायता करो। उसे बचाकर अगवानी कर घर पहुंचा दो 'जहां–जहां खालसा जी साहिब तहां–तहां रक्षा रियायत।' यह अरदास उस समय के सिखों का जीवित इतिहास है।

लाहौर के तख्त पर बैठा तैमूर शाह अदीना बेग को अपने अधीन करना चाहता था।[1] बहाना बनाकर शाहजादा ने आदीना बेग को किसी मशवरे के लिए लाहौर बुलाया। उसने उत्तर दिया कि उसके इलाके में इस समय सिखों ने दंगा मचा रखा है, इसलिए वह अभी नहीं आ सकता। इस पर शाहजादा ने नीति से काम नहीं लिया। पठान स्वभावानुसार क्रोधित होकर उसे पकड़ने के लिए सेना भेज दी। सामने भी तो आदीना बेग था जो कि अपनी चालों का जानकार केवल स्वयं ही था। जब लाहौर से फौज जालन्धर पहुंची तब आदीना बेग ने (मुहम्मद लतीफ ने लिखा है) सिख सेना को लेकर उससे युद्ध किया। लाहौर की फौज हार खाकर बटाला की तरफ भाग गयी। पराजय की खबर सुनकर जहां खां खुद दुआबा की तरफ बढ़ा और बटाला पहुंचकर मुराद खां को–जो पराजित होकर जालन्धर से भागा था, मरवा दिया। उसे शक था कि वह आदीना बेग से मिला हुआ है। लाहौर से विशाल सेना के आने की खबर सुनकर आदीना बेग फिर पहाड़ों की ओर भाग गया। अब जहां खां और

1. ऐसा विचार है कि अदीना बेग ने अहमद शाह से जब वह दिल्ली से वापस गया था माफी मांग ली थी और जालंधर की नवाबी ले ली थी। जकाउल्ला लिखता है कि दुआब की हाकमी उसे जहां खां ने दी थी। प्रत्येक स्थिति में आदीना बेग उस समय दुआब का हाकिम था।

शाहजादा तैमूर सिखों के पीछे पड़ गये और राम रौणी पर आक्रमण कर दिया।[1] रामरौणी को नष्ट कर दिया और गुरद्वारों को अपवित्र किया। यह खबर सुनकर खालसा दल चारों तरफ से उमड़ आया। भयंकर युद्ध हुआ। पंजाब में हफरा तफरी मच गयी। इतिहास बहुत लंबा है, किंतु संक्षेप में बात यह है कि सिखों का हाथ ऊंचा रहा। लतीफ लिखता है कि पहली पूर्ण विजय सिखों को इसी समय मिली। 1758 ई॰ (1815 वि॰) के लगभग मध्य में तैमूर शाह और जहां खां चुपचाप लाहौर खाली करके अहमदशाह के पास चले गये। सिखों की कामयाबी से दुखी होकर आदीनाबेग ने अब पंजाब में मराठों को बुला लिया।

दक्षिण और हिन्दुस्तान के सभी क्षेत्रों में मराठों का दबदबा बड़ रहा था। मराठों की ओर आदीना बेग ने एक दूत भेजा और कहला भेजा कि आप किधर भूले डोल रहे हैं। पंजाब सूना पड़ा हुआ है, कोई मालिक नहीं है, इधर आओ और देश को सम्भाल लो। मैं सहायता के लिए तैयार हूं। जिस दिन आप सतलुज पार करोगे तो लाहौर तक पहुंचने के लिए एक लाख रूपया प्रति पड़ाव आपको दूंगा। आप आकर देश को जीतिए। मेरा केवल इतना स्वार्थ है कि जालन्धर की सूबेदारी मुझसे न छीनी जाए। जब यह खबर पहुंची तो

---

1. परन्तु जकाउल लिखता है, 'खान जहां ने आदोना बेग को जिसकी दगाबाजी, मक्कारी, बेवफाई और बेइन्साफी का हाल आप पढ़ चुके है, अपना नायब करके दुआबा जालंधर में मुकर्रर किया। थोड़े दिनों के बाद जो आदीना बेग को बुलाया तो वह नहीं आया और पहाड़ों में भाग गया जहां खान ने मुराद खां को दुआबा में उसकी जगह मुकर्रर किया। आदीना बेग ने सिखों को सिखा–पढ़ा कर अपनी तरफ खड़ा किया और मुराद खां से लड़ने के लिए दुआबा में भेज दिया। वह उनके मुकाबले में न ठहर सका। लाहौर में जहां खान के पास चला गया। सिखों ने दुआबा को खूब लूटा। मगर अदीना बेग को जब यह मालूम हुआ कि केवल सिखों की इनायत से काम नहीं बनेगा। तो उसने रघुनाथ और शमशेर बहादुर को मुतवातर खत भेज कर बुलाया। (जिल्द 1, पृ॰ 211)

मराठे इधर झुके। मल्हार राव और राघव राव आदि सरदार विशाल सेना और तोपखाना लेकर पंजाब की ओर बढ़े। सम्वत 1813–14 में[1] सरहिंद के नवाब से मुकाबला हुआ। इधर अदीना बेग और सिख पहुंच गये। यह अनहोनी बात थी कि सरहिंद पर हमला हो और सिख चुपचाप बैठे रहें। जलती आग में सीढ़ी लगाकर वे भी शहर की फसील पर चढ़ गये और देखते–देखते वीरता से शहर को जीत लिया। अहंकारी मराठे सिखों की बहादुरी देखकर वाह–वाह कर उठे। सरहिंद हाथ में आ गया। मराठों ने कब्जा कर लिया और सदीक बेग खां को अपना हाकिम नियुक्त किया। वे फिर आगे बढ़े। जब वे खन्ने के पास पहुंचे तो मराठों ने एक मूर्खतापूर्ण कार्य किया। यदि इस समय मराठे और सिख एक जान हो जाते तो सारा देश इन दोनों शक्तियों के हाथ आ जाता और हिन्दुस्तान एक बार फिर से 'हिन्द–हिन्द' होकर आजादी के झूले पर झूलता। परन्तु मराठों ने सरहिंद के खजाने और शहर की लूट का माल सिखों से वापस मांगा। जब उन्होंने देने से इन्कार कर दिया और बताया कि हमने जो कुछ लिया है वह आदीना बेग के साथ तै हुई शर्त के अनुसार लिया है। इस धन से हम बेसहारा हो गये गरीबों और मजलूम सिखों का पालन–पोषण करेंगे तथा युद्ध के लिए अस्त्र–शस्त्र खरीदेंगे। इसलिए धन हम वापस नहीं करेंगे। यह झगड़ा उस गांव में हो रहा था जहां सतवंत कौर ने जन्म लिया था, जहां उसका पालन–पोषण हुआ था, जहां की हवा पानी से वह खेली थी। खालसा दल वहां इकट्ठा हो रहे थे, सत्संग चल रही थी, हिन्दू–सिख सब प्रसन्न थे कि अब ये दो शक्तियां जो पश्चिम–उत्तर की ओर बढ़ रही हैं सदा के लिए काबुल का किला नष्ट करके खैबर दर्रा की गरदन तोड़ देंगी। किन्तु अभागे देश के अभागे लक्षण। जब दीवान सजा हुआ था तभी खबर आयी कि राघव राव फौज लेकर सिखों को मारने आ रहा है। भोग पड़ते ही खालसा दल चल दिया। खाली तम्बू और सायवान पीछे रह गये जिन पर राघव राव ने हमला किया। और लज्जित

1. उमदान्तु त्वारीख 2 मई 1758, जकाउल्ला।

हुआ। खालसा दल वहां से अमृतसर पहुंच गया, और वहीं 'गुरमता' के लिए सांस ली। सारे देश में संदेश भेजे गये कि एक विशाल, 'गुरमता' के आयोजन का प्रबन्ध किया जा रहा है जहां निर्णय लेना है कि मराठों से कैसे निपटा जाए?

अब मराठे सतलुज पार कर गये। सरहिंद जीत लिया था और दुआबा से तो वे निमन्त्रित थे ही। मारकाट करते मराठे लाहौर पहुंच गये। पहले बताया जा चुका है कि तैमूर शाह भाग चुका था, परन्तु यह भी विचार है कि वह अभी लाहौर में ही था। कच्ची सराय के पास तैमूर शाह के साथ मराठों की टक्कर हुई। दुर्रानी पराजित होकर अटक के पार भाग गये। तैमूर शाह की सारी सम्पत्ति मराठों ने सम्भाल ली। 75 लाख रूपया सालाना नजराना निश्चित करके मराठों ने आदीना बेग को लाहौर का सूबेदार नियुक्त किया और ख्वाजा मीरजा को अदीना बेग का नायब नियुक्त किया। शाम जी, राम जी दो मराठे सरदार मुलतान पहुंचकर हाकिम बने। एक विशाल सेना साहिबो (अथवा साहिबा पटेल) मराठे के नेतृत्व में अटक के किले पर कब्जा करने के लिए भेजी गयी। रास्ते में कोई बड़ा युद्ध नहीं हुआ। अटक से सरहिंद तक का क्षेत्र एक ही साल में दुर्रानी अधिकार से छिन गया और मराठे मालिक बन बैठे। दुखों के मारे पंजाब का यह हाल था। पर क्या सचमुच पिछले वर्ष दुर्रानी और अब मराठे मालिक थे? नहीं, यह तो बाढ़ की तरह आये, सारे देश को डुबाया और चले गये। असली मालकियत की जड़ें तो सिख जगह–जगह फैल रहे थे। जब बाढ़ आती और चली जाती, वे फिर जगह–जगह के मालिक और हाकिम बन जाते थे।

खालसा दल के इस 'गुरमते' में जो अमृतसर में हुआ, यह निर्णय लिया गया था कि मराठों के साथ लड़ना नहीं है, संधि करें तो कर ली जाये, परंतु यदि शरण में आने को कहें तो इसे नहीं मानना है। अकड़ें, मुकाबला करें तो डटकर लड़ना है। यदि उनकी शक्ति अधिक देखी जाये तो जंगलों की ओर चले जाना है। इस फैसले पर सिखों के दल जगह–जगह फैल गये। आदीना बेग ने मराठों की शह पर खालसा दल को भी आंख दिखायी। इसलिए खालसा दल की पहली चढ़ायी भी उसी पर हुई, जिसमें अदीना बेग ने सिखों के आगे

दो घंटों में ही घुटने टेक दिये और बीस हजार जुर्माना दिया और शरण मांगी तभी उसे मुक्ति मिली। बनों, जंगलों को खालसा दल ने छोड़ दिया और जगह–जगह कब्जा कर लिया और राज्य करने लगे। मैनदाब में भी भारी संख्या में खालसा दल इकट्ठा हो गया और फिर सरहिंद से युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस युद्ध में तोप खाने के सामने खालसा दल नहीं ठहर सकता था परन्तु, तभी आनन्दपुर के पहाड़ों में छिपे वीरों के जत्थे कटक की तरह उतर आये। सरहिंद के हाकिम सदीक बेग की तो हार हुई। उसने सिखों की सारी हानि पूरी की तथा दो लाख रूपया देकर, शरण मांगी और संधि कर ली। इसे निर्भयता एंव शूरवीरता के व्यवहार के आगे पंजाब में आये मराठे न तो मुकाबला करने को तैयार थे और न ही वापस जाने को। वे अच्छे–अच्छे स्थानों पर कब्जा करके, विचारों में डूबे हुए देखते रहे। सिखों का साहस देखें। लाहौर के घरों और बाजारों के बीचों–बीच आ कर हत्यारों को पकड़ ले गये परंतु मराठों के किले से एक गोली तक न चली।

: १७ :

चुपचाप रात छा गयी, लोग नींद की गोद में हैं। जीवों में हलचल नहीं, पंछी नहीं डोलता, हवा तक नहीं ठुमकती, सन्नाटा छा रहा है। आकाश में टिमटिमाते तारे चुपचाप चले जा रहे हैं। काबुल के मैदान में काफिला पड़ा हुआ है जिसे पेशावर तक व्यापार करके वापस मुड़ना था। आज दूसरी मंजिल में ही पहरेदारों द्वारा घिरा हुआ है। जिस भाग की तलाशी हो चुकी है वह भाग तो निश्चिंत सो रहा है, परन्तु जिस भाग की तलाशी नहीं हुई उसमें बेचैनी सी है। निर्दयी नींद ने फिर भी आंखें बंद करके सुला दिया है। नींद के इतनी बलशाली होते हुए भी जसवंत सिंह जी बेचैन हैं। वे सोये नहीं, बैठे हुए हैं और उनके नेत्र आकाश की ओर, सुरति आकाशों के स्वामी की ओर लगी हुई है। रहस्य खुल जाने का भय है। सवेरे तलाशी होगी, जामा तलाशी भी होगी, उस समय पता लग जायेगा कि अमीर के महल से भागी हुई हूं। बस फिर बंदी, बंदी होने के साथ–साथ यातना और मौत।

सतवंत अपने आपको इस पुरूष वेश में सुरक्षित समझती थी, परन्तु इस समय कठिनाइयों के मुंह में आ गयी है। वह पहले तो कुछ घबरा गयी थी, परन्तु अब उसका मन कुछ स्थिर होता जा रहा है और ध्यान मुड़ता जा रहा है। जब उसे चिंता घेरती है तब मानों आवाज आती है–

अंगीकारू उहु करे तिरा कारज सभि सवारणा।।
हाँ ऐ मन मेरिआ तू सदा रहु हरि नाले।।

इन्हीं चिन्ताओं और ध्यान के उतार–चढ़ाव में आधी रात निकल गयी। अभी तक उसे कोई उपाय नहीं सूझा। विश्वास से भरी हुई, प्रभु के भरोसे में जुड़ी हुई उसके मन में बार–बार उठता था कि गुरू कोई रास्ता निकालेंगे। वह हिम्मत वाली थी। अन्दर से साहस बटोरकर उठती है, परन्तु चारो ओर नजर दौड़ाकर बैठ जाती है। अन्त में वह उठी और एक ओर से खिसक जाने की बात उसने सोची, परन्तु थोड़े ही कदमों पर पहरेदार खड़ा था। वह दुबककर बैठ गयी। धीरे से फिर मुड़ी। दूसरी तरफ से खिसकने का प्रयास किया, परन्तु उस ओर एक पहरेदार फेरी लगाता हुआ आ रहा था। फिर चुपचाप अपने बिस्तरे पर आ गयी। वह ओहदेदार घूमता–घूमता निकट आकर खड़ा हो गया। उसने चारों ओर देखा, उसे सभी सोते हुए लगे। उसने अपने आपसे धीरे से कहा–'सभी सो रहे हैं, सभी पठान और काबुली हैं। भला किससे पता लगे कि 'बुताला' क्या है और कहां है। पता नहीं सच है या झूठ। उफ...क्या. ..कुछ...पता नहीं क्या करूं। अच्छा खैर। अभी तक कोई डौल नहीं, कल आगे चल दिये तो फिर क्या होगा।

अपने आप से बातें करते इस पठान अधिकारी को कुछ बारीक सी आवाज सुनाई दी। उसने ध्यान दिया तो देख कि एक आकृति अडोल बैठी सहज भाव से कुछ पढ़ रही है। अच्छी तरह कान लगाये तो पता चला कि कोई दूसरी भाषा है। जब अधिक ध्यान दिया तो वह समझ गया कि यह कोई सिख है और बाबा नानक की बानी पढ़ रहा है। क्षण भर में वह साफ समझ गया कि यह वही चीज है जिसका उसे पता था। कुछ आश्चर्य, कुछ इच्छावश, कुछ जानने

की नियत से वह आगे बढ़ा। एकान्त का समय था। वह रात को पहरा दे रहे पहरेदारों की पड़ताल के लिए निकला था। आगे बढ़कर उसने जवान को हिला कर पूछा–भाई तू कौन है?

जसवंत– मुसाफिर हूं।

अधिकारी– कहां जाना है?

जसवंत– हिन्दुस्तान जाना है।

अधिकारी– कभी पहले भी गया है, या पहली बार......

जसवंत– मैं सरहिंद तक से परिचित हूं।

अधिकारी– बुताला भी देखा है।

जसवंत– बुताला नहीं बटाला।

अधिकारी– हां बताला, बटाला, वह कौन सी जगह है?

जसवंत– वहां मुसलमानों के मदरसे और पुस्तकालय हैं।

अधिकारी– हां ठीक, तुझे पंजाब की खबर है?

जसवंत– कुछ...थोड़ी–बहुत है।

अधिकारी– क्या कारण?

जसवंत– मैं पंजाब का ही हूं।

अधिकारी– नादरशाह कैद करके लाया था?

जसवंत– जी नहीं, किन्तु यों हम उधर के ही हैं।

अधिकारी– पंजाब में तू किसी को जानता है?

जसवंत– किसी किसी को।

अधिकारी– आसकुर का नाम सुना है।

जसवंत– (गहरी सोच में डूबकर और बटाला को ध्यान में रखकर) जी हां, बटाला से यह भाई आसकौर अपने दो–तीन साल के बच्चे के साथ नादरशाह के हिन्दू गुलामों में धोखे से फंस गयी थी ओर बंदी बनाकर इधर लायी गयी थी।

अधिकारी– फिर उसका क्या हुआ?

जसवंत– अटक के पास सिख हिन्दू कैदियों को छुड़ाकर ले गये थे, परन्तु यह माई कहीं नहीं मिली थी। पता नहीं लगा कि उसका क्या हुआ? यह भी सुना था कि आसकौर के साथ एक पहाड़िन आया भी थी। उसका नाम 'नुकरी' था। वह उसके साथ ही कैद हो गयी थी। पर तीनों का फिर कुछ पता नहीं चला।

अधिकारी– (तेवर बदल कर और होंठ काटकर) ऐ नौजवान, तुझे इतनी बातें कैसे मालूम हैं।

जसवंत– सुन–सुनाकर।

अधिकारी– तू इस समय तक क्यों जाग रहा है?

जसवंत– अपने अल्ला को याद कर रहा हूं।

अधिकारी– क्यों?

जसवंत– गुरू नानक का आदेश है कि दिल से अल्ला को याद करो और अपने हाथों से काम करो। जो मालिक को याद नहीं करता वह हराम की खाता है।

अधिकारी– तू बड़ा नेक आदमी लग रहा है। (मन में–चेहरा बहुत ही प्यारा है। वाणी में मधुरता है। बुद्धि बहुत तेज है) यह तो बताओ कि आसकौर का पति है या नहीं और उसका क्या नाम है?

जसवंत– है। उसका नाम शस्त्रजीत सिंह है। एक उसकी लड़की है। बहुत सुन्दर, परमेश्वर की प्यारी और नेक है। लोग बताते हैं कि बिलकुल अपनी मां की तरह है।

अधिकारी– देखी नहीं?

जसवंत– सुना है।

अधिकारी– हिन्दुस्तान में पहुंचने पर क्या तू उस लड़की का पता लगा लेगा?

जसवंत– ठीक से नहीं कह सकता। यदि किसी नेक काम के लिए जरूरत पड़े तो यत्न कर सकता हूं।

अधिकारी– हूं, समझदार है।

जसवंत– हां जी, सुना है कि अपने भाई को और मां को याद करके जब गीत गाती है तो पत्थर भी पिघल जाते हैं।

अधिकारी– इधर आ जाओ।

जसवंत– (पास आकर) हुक्म।

अधिकारी– तुम्हारे पास कोई हथियार है?

जसवंत– कटार है।

अधिकारी– मुझे दे दे।

जसवंत– किन्तु मैं अपनी रक्षा के लिए पास क्या रखूं।

अधिकारी– तुझे पता नहीं मेरा हुक्म न मानना कितना बुरा है?

जसवंत– ठीक है पर मुझे कारण तो बताओ।

अधिकारी– मुझे तुम्हें कैद करना है।

जसवंत– किस अपराध में?

अधिकारी– अपराध कोई नहीं, मुझे तुम्हारी जरूरत है। जब मेरा काम हो जायेगा, मैं तुम्हें छोड़ दूंगा।

जसवंत– फिर कैद की क्या जरूरत है, हुक्म करो। काम नेक होगा तो जरूर करूंगा।

अधिकारी– मैं कुछ कह नहीं सकता। मैं चिरकाल से तुम्हारे जैसे किसी आदमी को खोज रहा था। हो सकता है तुम से मेरा काम निकल आये।

जसवंत– फिर मुझ बेगुनाह को अपनी जरूरत के लिए कैद क्यों करते हो।

अधिकारी– मेरी मर्जी।

जसवंत– इंसाफ...इंसाफ...।

अधिकारी– इंसाफ, इंसाफ, इंसाफ होता तो मेरी जरूरत ही क्यों पड़ती। अब बोलने का समय नहीं। चुपचाप चलो। नहीं तो तुम्हारी खैर नहीं।

जसवंत– एक बात सुन लो और सोच लो। मालूम होता है कि आप कुछ ढूंढ रहे हैं और मामला कुछ रहस्यपूर्ण है। जिसके प्रकट हो जाने का आपको भय है और उस मामले के सम्बन्ध में आप की इस पूछ–पड़ताल से बहुत से नाम मुझे मालूम हो गये हैं। और यदि आपने मुझसे जबरदस्ती की, मुझे कैद में डाला, तब मैं कैद तो सहन कर लूंगा, किन्तु यदि किसी के आगे मैंने वे सारे नाम ले लिये और आपका भेद बता दिया तो आपका भण्डाफोड़ हो जायेगा। मैं बेशक मर जाऊं परन्तु आपका काम और आप भी नष्ट हो जायेंगे। ऐसा करने से आपको कोई लाभ नहीं होगा। इसलिए मुझे कैद में मत डालो। प्यार दो, मैं बहुत दुखी हूं। इस समय मेरा दुख जानो। तब उस अहसान के भार से दबा मैं खुशी से आपकी सेवा भी करूंगा और आपका रहस्य भी छिपा कर रखूंगा। मुझे आपकी बातचीत से शक हो रहा है–आपकी आवाज कोमल है उसमें सच्चाई लगती है। आप

कांप रहे हैं, इसलिए भयभीत भी लग रहे हैं। ऐसी हालत में और दुख क्यों देते हो।

अधिकारी गहरी सोच में डूब गया। मन में सोचा कि उसके सभी भेद और सभी नाम इसको मालूम पड़ गये हैं। यदि यह इनको प्रकट कर दे तो उसका लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता। बेचैनी और जल्दबाजी में वह मूर्खता कर बैठा है। इसे कैद करना, मार देना उसके वश में है पर उसकी जीभ मेरी कैद में नहीं रह सकती। जीभ का बोलना उसे तबाह कर देगा और इसका जीवित रहना उसे उसके काम में सहायक हो सकता है। मुझे कुछ भी पता नहीं है और वह सब कुछ जानता है। क्यों न उसे मित्र बना लिया जाये जिससे उसका काम संवर जाये। इस तरह कुछ समय गहरी सोच में डूबे रहने के बाद वह हंसा और बोला–नौजवान ! तू बहुत चतुर है? तुझे क्या कठिनाई है, बता ! मैं तेरी सहायता क्या करूं जिससे तू मेरा अहसान माने।

जसवंत– मैं बताने को तैयार हूं परन्तु पहले मुझे वचन दो कि आप मुझसे मित्रता करेंगे।

अधिकारी– यदि तू मेरे काम में सहायता करेगा, तब।

जसवंत– यदि आपका काम पाप का नहीं है तब।

अधिकारी– मेरा काम पाप का नहीं है, बल्कि नेकी का है।

जसवंत– कुछ बता सकते हैं?

अधिकारी– नहीं, इस समय नहीं, यदि मेरी सहायता की तो जरूर बताऊंगा।

जसवंत– जिस भय से आप मेरा विश्वास नहीं कर रहे, वह गलत है।

अधिकारी– शायद (आह भरकर)

जसवंत– फिर वचन दो।

अधिकारी– तू नुकरी को जानता है?

जसवंत– नहीं।

अधिकारी– काबुल में उसे कभी देखा है?

जसवंत– मैं पहचानता नहीं, शायद देखी ही हो?

अधिकारी– अच्छा ! मैं फिर आता हूं।

इतना कहकर वह चला गया। पता नहीं क्यों? परन्तु उस समय जसवंत को अनुभव हुआ कि वह रो रहा है। जसवंत समझ गया कि वह आंसुओं को छिपाने के लिए ही थोड़ा उधर को चला गया है। थोड़ी देर में वह फिर आ गया। चन्द्रमा निकल आया था। चांदनी बता नहीं थी कि वह मुंह धोकर आया है। वह हाकिम है पर किसी गहरे आकर्षण और भार में दबा हुआ बेचैन है। सतवंत ने सोचा कि यही एक मार्ग है जिससे वह तलाशी से बच सकती है। दिन होने वाला है। और कोई उपाय नहीं हो सकता। उसने भगवान से प्रार्थना की कि जैसे गज के बंधनों को काट दिया था वैसे ही हे दीन दयाल इस नौजवान पर कृपा करो। मेरे बन्धनों को काट दो। मुझ पर मेहर करो।

अधिकारी– नौजवान ! देखो यह क्या चीज है।

जसवंत– यह गोल वस्तु कड़ा है और यह एक छोटी–सी कृपाण है।

अधिकारी– क्या सिख बच्चे इससे खेलते हैं।

जसवंत– नहीं, इन्हें बच्चे और बड़े सभी पास रखते हैं। ये जो आपने दिखाये हैं किसी बच्चे के ही हैं और किसी लाडली मां ने बनाये हैं क्योंकि ये बहुत बढ़िया हैं।

अधिकारी– (एक गुटका दिखाकर) यह क्या है?

जसवंत– (ध्यान से देखकर) सिखों की सुबह की नमाज है।

अधिकारी– जप निसाण है?

जसवंत– जी हां, जप निसाण है? बहुत सुन्दर लिखा हुआ है।

जसवंत ने जल्दी से पन्ने पलटे फिर आखरी पृष्ठ देखा। चांद की चांदनी से उसने पढ़ा–शस्त्रजीत सिंह, सतवंती, आसकौर के लिए, यह अक्षर उसने पढ़ लिये फिर उसने कहा–'यह आपके किस काम है। आप तो मुसलमान हैं।

अधिकारी– (जल्दी से वापस लेकर) काम है, फिर क्या मर्जी है।

जसवंत– पहले वचन दो।

अधिकारी– कहीं तुम्हारे पास हीरा तो नहीं और उसे ही छिपाने के लिए सहायता मांग रहे रहो।

जसवंत– जी नहीं।

अधिकारी– फिर मैं वचन देता हूं और अल्ला को साक्षी मानकर कहता हूं कि तेरे साथ सच्चे मित्र का व्यवहार करूंगा। अब तुम भी वचन दो।

जसवंत– मैं वचन देता हूं और एक सिख के नाते वचन देता हूं कि आपका साथ दूंगा और आपके रहस्य किसी को नहीं बताऊंगा।

अधिकारी– मैं अच्छी तरह जानता हूं कि सिख सदा सच्चा है। उसकी जबान झूठी नहीं है। पर फिर भी चाहता हूं कि आप अपना वचन अल्ला की साक्षी में दें।

जसवंत– जब सिख सिख की हैसियत से वचन देता है उस समय अल्ला उसका साक्षी होता है क्योंकि सिख सदा अल्ला की उपस्थिति में रहता है।

अधिकारी– अच्छा तो अल्ला तेरा साक्षी है, अब बताओ तुम्हें मुझ से क्या सहायता चाहिए।

जसवंत– मेरी जामा तलाशी न ली जाए।

अधिकारी– क्यों?

जसवंत– मैं नहीं चाहता कि गैरों के हाथ मेरे शरीर को छुएं। मुझे उनसे नफरत है।

अधिकारी– ठीक है। पर तलाशी में कोई हानि तो नहीं है।

जसवंत– हां, वैसे तो कोई नहीं है परन्तु मेरा प्रण टूट जायेगा। आपको यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि मैं चोर हूं या लुटेरा हूं। मैं एक–एक करके आपको सभी कपड़े दिखा देता हूं। तसल्ली कर लो। या मेरे वचनों पर विश्वास करो कि मैं एक सिख होकर कह रहा हूं कि इस सिख के पास हीरा नहीं है।

अधिकारी– परन्तु तलाशी में मैं कोई दोष नहीं समझता।

जसवंत– आप सिख नहीं हैं आप मुसलमान हैं, हमें और विशेष रूप से मुझे नहीं जानते हैं, इसीलिए मेरी बात को समझ नहीं पा रहे हैं।

अधिकारी– नहीं, मैं जानता हूं कि आप लोग मुसलमानों के स्पर्श से परहेज करते हैं। यदि किसी को कोई मुसलमान छू ले या वह मुसलमानों का खा–पी ले तो बस गया?

जसवंत– नहीं, ऐसी बात नहीं, हम अपने बिछुड़ों को मिला लेते हैं और भटक गये लोगों को फिर सही रास्ते पर डाल लेते हैं।

अधिकारी– (लम्बा सांस लेकर) अच्छा, आप मुझसे इतनी ही सेवा चाहते हो या कुछ और।

जसवंत– बस इतनी सी–ही।

अधिकारी– फिर बचाव का तो और कोई साधन नहीं है, सिवाए इसके कि आप मेरे साथ चलकर इन कपड़ों को उतार दो और मेरे नौकर के मुसलमानों वाले कपड़े पहल लो और मेरे तम्बू में मेरे घोड़े की सेवा में लग जाओ। अपने घोड़े वाले को मैं अपने साथ घुमाने के लिए ले आऊंगा। ऐसे में पता भी नहीं चलेगा। काफिले में रहकर बचना कठिन है। फिर पता नहीं यदि चोर मिल गया तो काफिले के साथ क्या बीतेगी। मेरे नौकरों में तो तुम सलामत रहोगे।

यह कर उसने इशारा किया और एक तरफ जाकर खड़ा हो गया।

उधर जसवंत ने बूढ़े को उठाकर कहा–मैं कहीं जा रहा हूं, परसों आकर आपको मिलूंगा। मेरी खोज मत करना और न ही मेरी चिंता करना।

वृद्ध–हैं ! हैं !

जसवंत– चुप। बोलने का समय नहीं है। मैंने पहले भी सदा अपने वचन पूरे किये हैं, अब भी करूंगा। आप निश्चिंत हो जाइए।

इतना कहकर जसवंत सिंह उस अधिकारी के साथ बिना किसी डर के चला गया। उसके तम्बू में जाकर साईस के कहड़े पहन लिए और अपने सम्भाल कर रख दिये। अफसर को यकीन तो पहले ही हो गया था परन्तु कपड़े उतार देने से उसे तसल्ली हो गयी थी कि इस नौजवान के पास हीरा नहीं है। घोड़े के पास जो साईस सो रहा था, उसे उठाकर वह अपने साथ ले गया और गश्त लगाने लगा। दूसरी चौकी पर जाकर उसने साईस को किसी काम में लगा दिया और खुद डेरे पर आ गया।

जसवंत ने जीवन के कई रूप देखे थे। किसी समय देवी मां–बाप की लाडली लड़की सत्संगियों के परिवार में पिछले जन्म की योगिनी लड़की आनन्द ले रही थी। किसी समय कैदी बनकर

काबुल की मण्डी में बिक गयी थी। किसी अन्य समय गुरूमुख बनकर औरों को रास्ते पर डाल रही है, कभी कैद भोग रही है, कभी सत्संगति कर रही है, आज गरीब दुखिया साईस बनकर घोड़े के पास ही घास के बिस्तर पर लेटी हुई है।

अफसर को जो आगा खान कहलाता है और जो दो सौ सवारों का अधिकारी है और जो काफिले को पेशावर तक पहुंचाने के लिए साथ जा रहा है, एक आश्चर्यजनक रंग ने आकर्षित किया है। हैं नौकर परन्तु उपर से कुछ पागल सा दिखता है, या मूर्ख। किन्तु नहीं दिल की लगी कोई नहीं समझ सकता। जब दिल ठोकर खाता है तो यही हाल होता है।

रात थोड़ी–सी शेष थी। आगा खां थक गया था। आकर लेट गया। बेचैनी बहुत बढ़ गयी थी जबकि उसे अपने काम में एक मददगार मिल गया था। परन्तु अभी कठिनाइयां सामने थीं। अपनी योजनाओं पर सोचता और सिहर उठता। कभी ठण्डी सांस लेता। कभी क्रोध में दांत किट किटाता। ऐसी ही हालत मे उसे नींद आ गयी। सूरज चढ़ जाने तक उसके थके शरीर ने आराम किया। दिन चढ़ते ही तलाशी शुरू हो गयी। आगा खां को कूच की जल्दी थी। उसने शेष की तलाशी जल्दी–जल्दी करवाई। दोपहर के बाद तलाशी पूरी हो गयी। अमीर के पास खबर पहुंचवायी गई कि काफिले के पास हीरा नहीं है। यदि हुक्म हो तो काफिला आगे बढ़े।

सन्ध्या तक काफिले के आगे बढ़ने की आज्ञा मिल गयी। इतनी जल्दी शायद आदेश न मिलता परन्तु चोर किसी अन्य जगह से पकड़ा गया था और हीरा मिल गया था।

रात को डेरा वहीं रहा। आगा खां को बेचैनी सता रही थी। उसकी योजना का लगभग आध फैसला हो जाता यदि कोई सज्जन उसका सहायक बनता। सहायक के बिना उसका काम पूरा नहीं हो सकता था। जसवंत सिंह को उसने मददगार के रूप में पा लिया था, और भेदी भी बना लिया था परन्तु अभी डर रहा था कि विश्वास करूं या नहीं। या जितना किया है उतना ही बहुत है। यही चिंता उसे खाये जा रही थी। यदि उसको मालूम हो जाता कि जसवंत सिंह तलाशी से इतना क्यों डर रहा है तब उसको एक ऐसा भेद

मालूम हो जाता जिसकी जमानत पर वह अपना सारा भेद बता देता। फिर भी उसकी नेकी और सच्चाई उसके मन को आकर्षित कर रही थी परन्तु अभी भी मन में भय बना हुआ था।

: १८ :

समय बीतता रहा। फिर रात आ गयी। आज काफिले में वह रंज, दु:ख, बेचैनी और घबराहट नहीं थी जो कल रात को थी। सभी हंसी–खुशी से खा पी रहे थे। सुबह कूच का नगाड़ा बजेगा और टन–टन घंटे बजेंगे। पर आगा खां बहुत बेचैन है। काफिले से कोई एक मील की दूरी पर एक पेड़ के साथ घोड़ा बंधा हुआ है और वह स्वंय एक ऊंचे से पत्थर पर बैठा है। आगे एक शिला पर साईस के रूप में जसवंत सिंह बैठा हुआ है।

आगा खां– जसवंत सिंह, तलाशी से छिपने का वास्तव में रहस्य क्या था।

जसवंत– खां साहिब, सच बात यह है जिसे कहने में कोई डर नहीं कि आपने और मैंने एक दूसरे की सहायता करने का वचन दिया है, परस्पर भेद खोलने का नहीं। यदि आप मेरा भेद लेना चाहते हैं तो मेरे मन पर विश्वास का प्रभाव डालें जिससे कि मैं समझ जाऊं कि आप मुझ पर विश्वास करते हैं। हां, मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आपका भेद कभी नहीं खोलूंगा और मैं आपकी पूरी सहायता करूंगा। बाकी बात यह कि सिख अपने वचन के पक्के होते हैं कि नहीं, वह आप यहां के किसी भी सिख से पूछ लें। उन पठानों से पूछ ले जो कभी हिन्दुस्तान गये हैं या यहां के सिखों से जिनका सम्बन्ध रहा है, उनसे पूछ लें।'

आगा खां– यह मुझे मालूम है। यदि मुझे सिख कौम के सत्यवादी होने का पूरा पता न होता तो तुम से बात ही नहीं करता। यदि तू सिख न होता तो मेरे होंठ कैसे खुल सकते थे?

जसवंत– फिर बताइये ! क्या बात है जिसमें मैं सहायता करूं?

आगा खां– हे सिख ! मैंने तुम पर विश्वास किया है और मित्रता की है, इसलिए भेद बताता हूं। अल्ला मेरी सहायता करे। मैं अपना भेद तेरे पास अमानत रखता हूं। अल्हा को साक्षी मानकर बचन दो।'

जसवंत– मेरा वाहिगुरू मुझसे धर्म पालन करवायेगा।

आगा खां– मुझे पेशावर तक जाना है। मुझे इस काफिले की रक्षा का काम सौंपा गया है। परन्तु मैं एक कठिनाई में हूं। मेरी एक मां है जिसने मुझे पाला–पोसा है। वह बेचारी कैद में है। वह बेगुनाह है और वह निर्दोष होती हुई भी कत्ल कर दी जायेगी। मुझे वह बहुत प्यारी है। इसलिए मैं उसकी जान बचाना चाहता हूं। काफिला कल चल पड़ेगा। और मैं अभी तक उसे बचाने की कोई योजना नहीं बना सका। मुझे इस नौकरी पर विशेष रूप से इसलिए भेजा गया है कि मेरे पीछे उसका काम तमाम कर दिया जाये, और जब मैं वापस लौटूं जो मुझे कुछ भी पता न चले। जिन्होंने कत्ल करने का निर्णय लिया है वे सोचते हैं कि वापस आकर रो धो–कर मैं चुप हो जाऊंगा।

जसवंत– ऐसी कौन सी ताकत है जो आपकी धाय मां को आपकी मर्जी के खिलाफ मार सकती है।

आगा खां– मेरा अपना पिता।

जसवंत– कारण क्या है?

आगा खां– उनका कोई भेद धाय मां जानती है। मेरी सौतेली मां की भी धाय मां के साथ कुछ खटपट रहती है। मुझ से किसी भी बात में अनबन हो गयी है। इससे उन्हें सन्देह हो गया है कि कहीं वह भेद धाय मां मुझे न बता दे। इसीलिए मुझे उससे अलग कर दिया गया है। मेरी अनुपस्थिति उसकी मौत का पर्दा है जिससे उसके मरने का कारण मुझे पता न चल सके। परन्तु वे यह नहीं जानते कि जिस बात से वे डरते हैं वह बात तो मुझे धाय मां पहले ही बता चुकी है। अब उसको मारकर मेरे पिता को कोई लाभ नहीं होगा। मुझसे पिताजी बहुत प्यार करते हैं वे मुझसे अलग नहीं रह सकते। परन्तु इस काम के लिए वे मेरा वियोग भी सह रहे हैं। बस इतनी ही बात है।

जसवंत– सौतेली मां से आपकी अनबन कैसे हुई?

आगा खां– इसे पूछने से क्या लाभ? मेरा मन प्रारंभ से ही परिवार से विमुख है। धोखा देना, जान से मारना, पाप करना मुझे बुरा लगता है। और समय ऐसा है कि व्यक्ति अन्दर से कुछ तथा बाहर से कुछ है। असल में मुझे क्या पता लगना था। मेरी धाय मां ने ही संकेत

दिया था कि सौतेली मां के प्यार से सम्भल कर रहना। इस प्यार में खोट है।

जसवंत– तब तो धाय मां की शामत आनी ही थी। अच्छा फिर...

आगा खां– (जल्दी से) फिर क्या होगा?

जसवंत– क्या आप उसे घर से निकाल कर ला सकते हैं?

आगा खां– घर से निकालना तो कठिन नहीं है, परन्तु आगे सम्भालना बहुत कठिन है। मेरा कोई हमदर्द नहीं, फिर उसे कहां छिपाऊंगा। पिताजी ने मुझे इतना प्यार दिया है कि कुछ और सोच ही नहीं सकता। यदि मैं साथ लेकर चलूं तो उसे छिपा कर नहीं रख सकता। यदि उसे अकेला भेजूं तो खैबर का दर्रा ऐसा इलाका और खुंखार आदमी वहाँ रहते हैं। उन्हें कोई भी अकेला नजर आ जाये तो मार डालते हैं।

जसवंत– यदि आप उसे यहां ले आयें तो काफिले में छिपाकर ले जाने की जिम्मेदारी मैं लेता हूं।

आगा खां– परन्तु कैसे?

जसवंत– सिखों वाला मर्दाना पोशाक पहनाकर मेरे हवाले कर देना। हम अपने सामान की रखवाली के लिए नौकर के बहाने ले चलेंगे। अपने साथियों से मैं निपट लूंगा। अनसे कोई भेद बाहर नहीं निकल सकता।

आगा खां– (आश्चर्य से) और यदि बात खुल गयी तो मेरे इस गोरे बदन का पुर्जा–पुर्जा हो जायेगा।

जसवंत– परन्तु बात निकलेगी कैसे? और यदि निकल जाये तो अपने शरीर का पुर्जा–पुर्जा होने से पहले आप मेरे शरीर का पुर्जा–पुर्जा कर देना, समझ गये। फिर से सोच लो। आप की तरफ टेढ़ी नजर से देखने की हिम्मत कौन कर सकता है। कुछ अपने पर विश्वास करें। बुद्धि का प्रयोग करें और हिम्मत से काम लें।

आगा खां– मेरे पिताजी बहुत कठोर हैं। गुस्सा आ जाने पर वे अपने प्रिय को भी मौत के घाट उतार देते हैं। आठ–नौ बार हिन्दुस्तान जाकर लाखों रूपये लाये हैं और निरपराधों का खून पीकर भूत बन गये हैं।

जसवंत– फिर क्या हुआ? आप भी साहस से काम लो। जब व्यक्ति कठिनाइयों में फंस जाये तो सिख धर्म में कहा गया है कि ईश्वर पर और अपनी हिम्मत पर भरोसा रखो। व्यक्ति को निराश नहीं होना चाहिए।

आगा खां– यदि मैं ले आऊंगा तो सम्भाल लोगे, वचन दो।

जसवंत– भगवान सब ठीक करेंगे। एक सिख के मुंह से निकले शब्द ही सच्चा वचन हैं।

इतना सुनते ही आगा खां घोड़े पर बैठ गया। चाबुक लगाया। घोड़ा हवा की तरह भागने लगा और कुछ ही क्षणों में आंखों से ओझल हो गया।

सतवंत कौर वहीं बैठी ईश्वर के रंगों को देख रही थी कि उसके भाग्य में एक के बाद एक घटना घटित होती जा रही है। चार दिन भी चैन के नहीं आते कि कोई न कोई चक्कर पड़ जाता है। अब यह नया काम आ पड़ा। देखो परोपकार क्या रंग लाता है। इस तरह विचार करती सतवंत काल्पनिक भ्रमों में पड़ गयी और सोचने लगी कि यह सारा मामला क्या हो सकता है? मन में कुछ विचार उठे, बाद में अपने पर ही क्रोधित हुई कि वह अपना सारा समय व्यर्थ ही गंवा रही है। प्रिय गुरूमुख जी की क्या आज्ञा थी और मेरा मन कहां–कहां भटकने लगा। जो भी हो रहा है, ठीक ही हो रहा है। जो गुरू करेगा ठीक ही करेगा "बैंठ रे मन सबर के हुजरे, जेही जेही आवे तेही तेही गुजरे।" तू वाहिगुरू के साथ रह, सदा साथ रह। तेरे सभी काम साईं संवार देगा।

आधी से अधिक रात बीत गयी थी। सतवंत कौर के कानों में घोड़े के टापों की आवाज पड़ी। पत्थरों में छिपे–छिपे उसने उस ओर ध्यान दिया। अगले ही क्षण 'जसवंत' की आवाज कानों में पड़ी और आगा खां धाय मां सहित पहुंच गया।

वह एक लम्बी–पतली पैंतालीस साल की, सुडौल और चुस्त औरत थी। पठानों की तरह उसका चेहरा गोल नहीं था बल्कि कुछ लम्बा और पतला था। आंखों में कुछ उदासी और बेचैनी थीं यह स्पष्ट दिख रहा था कि ये आंखें वक्त के कई उतार–चढ़ाव देखकर काफी अनुभवी हो चुकी हैं।

जसवंत– बड़ी फुर्ती से काम हो गया।

आगा खां–कुछ अल्लाह ने मदद की। यह तो खुद ही हिम्मत और किसी योजना द्वारा घर से निकल आयी थी। दिन भर कहीं रही और रात भर चलती रही। अब काफिले के पीछे ही आ रही थी कि मुझे रास्ते में ही मिल गयी। मेरे घर से निकलते ही यह समझ गयी थी कि इसे कत्ल कर दिया जायेगा। इसलिए घर की कैद से निकलने का इसने खुद रास्ता निकाल लिया। इसके घर से चले जाने से घर वाले समझ गये होंगे कि वह उनके हाथ से निकल गयी है। उनका सीधा सन्देह यहीं होगा। काफिला दो दिन अटका रहा है। वे समझ जायेंगे कि दो दिनों में तो पैदल भी पहुंचा जा सकता है। इसलिए खतरा है कि वे सुबह तक यहां पहुंच जायेंगे। अब जसवंत सिंह जी ही कुछ सोचें।

इस तरह बातें करते हुए वे अपने डेरे पर पहुंच गये। जसवंत सिंह ने मर्दाने सिखों वाले कपड़े पहन लिए थे और अपने डेरे पर जाकर सामान में से अपनी दूसरी पोशाक लाकर धाय मां को पहना दी और फिर उसे भी डेरे पर ले आया। वृद्ध जी को भी जगाकर समझा दिया कि यह एक सज्जन साथी हैं और किसी वजह से इसे नौकर रखना है। इसे नौकर रखने के लिए फौजदार आगा खां का गुप्त आदेश है। इसलिए इस बात को प्रकट नहीं करना और हर हालत में इस भेद को भेद ही रखना है। मैं खालसा वाला वचन दे आया हूं।

वृद्ध पुरूष ने कहा– सत्य वचन ! शेष रात आराम से बीत गयी। दिन होने से पहले ही आगा खां का भयानक पिता पहुंच गया। काफिले के रूक जाने के कारण वह मिलने आया है–यह उसने अपने आने का कारण बताया। फिर सरसरी तौर पर धाय मां की भी बात की। इधर बाप बेटा बात कर रहे थे उधर उसके साथियों ने काफिले में उसे ढूंढ़ना शुरू कर दिया। कोना–कोना घुमकर देख लिया। उस चंचल पिता के लिए गरीब बेटे के डेरे की तलाशी लेना मामूली काम था। परन्तु उसके हाथ कुछ नहीं लगा।

दिन काफी चढ़ गया था। लोग आगा खां से आज्ञा मांग रहे थे। उसने कूच की आज्ञा दे दी। जैसे–जैसे लोग चले आगा खां के पिता

के आदमियों ने एक एक आदमी और औरत को देखा। जसवंत की भी बारी आयी। धाय मां और वह दोनों हंसते–खेलते निकल गये। सिपाही बदले हुए वेश में कुछ भी नहीं देख सके। प्रेम विह्वल किन्तु निर्दयी पिता बेटे से गले मिलकर आशीर्वाद देकर विदा हो गया। परन्तु नौकरों की टोली में दो–चार अपने आदमी छोड़ गया जो ध्यान रखें कि कहीं आगे जाकर धाय मां काफिले में आकर न मिल जाए और बाप–बेटे में अलगाव पैदा कर दे।

अनेक दुखों, कष्टों को झेलती भगवान की प्यारी आकांक्षित सतवंत कौर काफिले के साथ अपने वतन की ओर जा रही थी। अब कैद की भूमि की तरफ उसकी पीठ थी और प्यारे वतन की तरफ मुख। भगवान का धन्यवाद है जो उसे वतन की ओर वापस लेकर जा रहा है।

तीसरा पड़ाव आ गया। काफिले ने डेरा डाल दिया। सभी लोग अपने–अपने कामों में लग गये। जसवंत ने अपने नये साथी का नाम साईं जी रखा था। दोनों एक तरफ बैठकर बातें कर रहे थे।

साईं–आप मेरे आगा को कब से जानते हैं, जो उन्होंने आप पर इतना विश्वास कर लिया।

जसवंत– जान–पहचान तो पुरानी नहीं है, परन्तु शायद सिख समझकर विश्वास कर लिया।

साईं– यह तो ठीक ही है। मुझे तो स्मरण ही नहीं रहा था, सिख और सत्य दोनों एक ही वस्तु एवं रूप हैं।

जसवंत– गुरू जी का प्रताप है।

साईं– आप पेशावर तक जायेंगे।

जसवंत– नहीं आगे जाना है। (जल्दी से) पर आप अब क्या करेंगे।

साईं– क्यों?

जसवंत– आप दोनों मां–बेटा (भला और क्या कहूं) ऐसे चलते जा रहे हो जैसे वापस इस धरती पर नहीं आना है। विशेष रूप से तुम तो नहीं आ सकतीं।

साईं– है तो ठीक परन्तु आगा खां वापस आ सकता है।

जसवंत सिंह–ठीक है, किन्तु आप दोनों का प्रेम बिछुड़ने वाला नहीं लगता।

साईं– यह भी ठीक है और हो भी क्यों न। यह अभी बच्चा ही था कोई तीन–साढ़े तीन साल का कि उसकी मां मर गयी। फिर मैंने ही इसे पाला–पोसा है। मैंने ही इसे दूध पिलाया और खिलाया है। इसकी मां तो बहुत ही कमजोर थी। जरा सी गर्म हवा चलने से ही शरीर निढाल हो जाता था। यह लाल इसलिए मेरे ही स्तनों से दूध पी पला और मेरी ही गोद में खेला है। इसलिए उसके प्रति मेरा वात्सल्य–भाव है और उसकी भी मुझ में गहरी ममता है। देखो, बेचारे ने अब तक मेरे लिए कितना दुख सहन किया है। अभी जैसा कि आपने कहा है, हो सकता है उसे अपना देश भी छोड़ना पड़े। वह विश्वास के योग्य और वंचन को पूरा करने वाला आदमी है। इस पृथ्वी के तो सभी लोग छली कपटी हैं। पर इसमें कोई छल कपट नहीं है।

जसवंत– इनकी माता जी का स्वर्गवास किस रोग से हुआ था?

साईं– दुख–रोग कैसा? इसी कठोर पठान का, जो सुबह बेटा बेटा करता माथा चूमता, सभी की तलाशी ले गया। इसी का क्रोध उसे खा गया।

जसवंत– ज्यादा ही कोमल होगी जो गुस्से से मर गयी। घुट–घुटकर क्षय रोग से मर गयी होगी।

साईं– (जहर भरी हंसी हंसते हुए) क्षय रोग नहीं, हैजे से भी जल्दी मारने वाले रोग से।

जसवंत– वह कैसे?

साईं– तलवार की तेज धार से।

जसवंत– (कांप कर) स्त्री पर तलवार का वार। (रोककर) कैसे कठोर और जंगली लोग हैं ये। कुछ (परमेश्वर उसकी आत्मा को शांति दे) उस गरीबनी में दोष था?

साईं– वह तो सच्चा हीरा और पूर्ण निर्दोष थी। निर्दोष होना ही तो उसके कत्ल का कारण था। दोषी होती तो उसे कौन मारता? इस धरती पर धर्म–परायण का ही कत्ल होता है। आप लोग शायद इसीलिए हमें राक्षस और अधर्मी कहते हैं।

जसवंत– निर्दोष को क्यों मारा? किस बात से उसका क्रोध भड़का?

साईं हंस पड़ा और जसवंत के हाथ थामकर बोला–आओ कुछ काम करें, डेरे में हमारी सहायता की जरूरत होगी। बातें फिर कर लेंगे। हां, एक बात है, मेरा बच्चा बहुत सीधा है, वह अब मुझे मिलने आएगा। अच्छा हो यदि उसे तुम मिल आओ। कुछ दिन अभी मुझे न मिले तो अच्छा है। उसका कपटी पिता जरूर गुप्तचर छोड़ गया होगा जो मुझे खोज रहे होंगे। यदि उन्होंने उसे इधर आता जाता देख लिया तो उन्हें सन्देह हो जायेगा। यदि उन्हें भेद मालूम पड़ गया तो मेरी निमानी की तो कुछ चिन्ता नहीं, पापी पिता मेरे लाल के भी टुकड़े–टुकड़े कर देगा। लाल को मेरी तरफ से कह देना कि सावधान रहे और पूरी मेहनत करे जिससे काफिले में छोड़े गये जासूसों का वह पता लगा ले।

जसवंत सिंह समझ गया कि धाय मां बात गोल कर गई है और उसे असली भेद नहीं बताया। परन्तु कोई बात नहीं धीरे–धीरे बात खुल जायेगी। दूसरों के भेद जानने के लिए मुझे कोशिश भी नहीं करनी है। अब मैं उसका काम कर आऊं। यह सोचकर कुछ अपना यात्रा सम्बन्धित काम लेकर वह आगा खां को मिला। उसने यात्रा संबंधी बातें ऊंचे स्वर में सुनायी और धीरे–धीरे धाय मां का संदेश भी सुना दिया। आगा खां को सुनकर आश्चर्य हुआ, परन्तु बात उसे भी पसन्द आयी। वह अपनी पालक माता की बुद्धि का सम्मान करता था क्योंकि वह सदा ठीक बात ही किया करती थी। उसे सुनते ही यकीन हो गया कि अम्मा ठीक कह रही है। बात–चीत करके वह अपने डेरे को लौट गया और चुप–चाप उन आदमियों को खोजने लगा जो उसकी जासूसी कर रहे थे।

फिर रात घिर आयी। काफिले ने डेरे लगाये। जसवंत और साईं खा–पीकर एकांत की जगह जा बैठे। बातें चल पड़ी।

साईं– इस धरती पर हजारों लाखों लोग पठान ही नहीं हैं। हिन्दुस्तान से पकड़कर लाये गये हिन्दु भी बीच में ही मिल गये हैं।

जसवंत–जो पकड़कर लाये गये हों वे क्या चुपचाप मिल जाते हैं?

साईं– तो और क्या करें? सिर पर तलवार झूलती है, कर कुछ सकते नहीं। अपने देश में तो साहस दिखा सकते हैं। यह आशा तो है नहीं कि अपना कोई बादशाह आयेगा और छुड़ा कर ले जायेगा। निराश, दुखी, भूख–प्यास से पीड़ित कलमा पढ़ने में ही भला समझते हैं।

जसवंत– परन्तु मुसलमान बनकर स्वर्ग तो नहीं मिल जाता।

साईं– यह तो ठीक है, पर पेट भर रोटी तो मिल ही जाती है और मौत का भय भी दूर हो जाता है।

जसवंत–यह तो ठीक है, परन्तु कत्ल होकर गुलामी की जिंदगी से तो छूट सकते हैं। धर्म, स्वतंत्रता खोकर जीना भी कोई जीना है।

साईं– हिन्दुओं में तो इतना साहस नहीं रहा। हां, सिख हैं जो कैद में नहीं पड़ते। यदि कोई फंस भी जाता है तो रास्ते में ही इनसे लड़कर मर जाता है। यदि कोई बुरे हाल में पहुंच ही जाता है तो वह मरना ही पसन्द करता है। अभी तक किसी सिख स्त्री या पुरूष ने यहां आकर धर्म नहीं बदला और न ही गुलामी स्वीकार की है। उनमें स्वाधीनता से प्यार है और धर्म की आन है। सिख हिन्दुस्तानी है और हिन्दू कुल में से ही हैं परन्तु अमृत पान करके कुछ भिन्न हो जाते हैं। आप तो यह बात बड़े विस्मय से सुन रहे हैं। क्या आपने कभी यहां किसी सिख के कत्ल होने की खबर नहीं सुनी? अभी थोड़ा ही समय हुआ है कि एक लड़की अमीर के महलों में जाते ही अपने कमरे को आग लगाकर जल मरी थी, परन्तु धर्म नहीं छोड़ां आपने सुना था या नहीं?

जसवंत– हां, वह खबर मुझे मालूम है, सिख ऐसे ही होते हैं। मैं खुद भी तो सिख हूं।

साईं– बुरा नहीं मानना, जो सिख यहां रहते हैं, वे वतन से दूर होने के कारण वक्त ही काट रहे हैं, पर जो अपने देश से कैदी के रूप में आते हैं वे तो जंगल में पकड़े गये शेर की तरह क्रोध और जोश में भरे हुए रहते हैं। पठान भी उनका लोहा मानते हैं। परन्तु सिख कम ही पकड़े जाते हैं।

जसवंत– आप ठीक कहते हैं? पंजाब के लोग गर्व से कहते हैं कि एक बच्चा भी कैद में पड़कर गुलाम नहीं बना। या तो वह कत्ल

हो गया या जैसे–तैसे वापस वतन पहुंच गिया।

साईं– ठीक है। इनमें कुछ ऐसी आग की चिंगारी छिपी हुई है कि यदि इन्हें जन्म लेते ही मुसलमान बना लिया जाये वर्षों मुसलमान के घर रखा जाये तो भी जब उनके कान में कह दो कि तू सिख की औलाद है, बस कोयल के बच्चे की तरह उड़कर अपनी मां के पास चले जाते हैं।

जसवंत– (गहरा सांस लेकर और साईं की ओर देखते हुए) आप तो पठान हैं, फिर सिखों की इतनी महिमा क्यों?

साईं–मैं सच कहती हूं, झूठी महिमा नहीं करती। यह इसलिए भी नहीं कह रही कि आपके साथ कुछ दिन रहना है तो अपनी मीठी–मीठी बातों से आपको रिझा लूं। मैं तो बिल्कुल ठीक कह रही हूं। कुछ भी बढ़ा–चढ़ाकर नहीं कह रही।

जसवंत– श्री वाहिगुरू ! आपका भी ख्याल किधर चला गया? मैंने तो इसलिए पूछा था कि पठानों का तो स्वभाव है कि सच को भी नहीं मानते। यदि मानें तो हम जैसे सच्चे लोगों को हमारे ही देश में जाकर क्यों मारें? आप हमारा लोहा मानते हैं, इसलिए हैरान होकर मैंने यह पूछ लिया।

साईं– नहीं जी, इसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं है, मैं तो समझती हूं कि आप लोग जो कहते हैं, वह झूठ नहीं होता। आपके गुण ही ऐसे हैं कि शत्रु भी महिमा करता है। नादरशाह जैसा जालिम बादशाह जिसने देश में खून की नदियां बहा दी थी, सब कुछ नष्ट–भ्रष्ट कर दिया था, जिसे दुनिया सदियों तक नहीं भूल सकती। उस जालिम से भी 2100 हिन्दू औरतों को अटक पार से छीनकर वापस ले गये थे। इन मर्दों का ही काम है। केवल एक सिख स्त्री हाथ–पैर बांधकर लायी गयी थी, वह उन हिन्दुओं के समूह से थी जो पहले ही आगे निकल चुका था। शाबास ! उस बहादुर सिंहनी को जिसने सिर दे दिया परन्तु धर्म नहीं दिया।

जसवंत– क्या आपने उसको देखा है?

साईं– देखा ही क्या मैं उसके साथ थी।

इतना कहते ही साईं की आंखों से आंसू बह चले चेहरा दुख से भर गया।

जसवंत– इस सिंहनी की मौत की याद ने आपको बहुत उदास कर दिया है। अब मैं और कुछ नहीं पूछूंगा, फिर सही। आप धैर्य रखें।

साईं का गला भर आया था और जवाब देने की हिम्मत उसमें नहीं थी। रात गहरी हो गयी थी और लोग सो रहे थे। इसी समय आगा खां घूमते–घामते आ गया। चारों तरफ नजर डाल जसवंत के तम्बू के पीछे साईं के पास आकर बैठ गया। जसवंत इशारा समझ गया। उसने तम्बू के चारों तरफ टहलना शुरू कर दिया। कहीं कोई गुप्तचर न घूम रहा हो। उधर मां–बेटा बातचीत में लग गये।

आगा खां– मैंने गुप्तचरों को ढूंढ़ लिया है। चार आदमी हैं। हर समय मेरे पीछे रहते हैं।

साईं– अब आप कैसे आ गये? कही वे पीछे न हों। मुझे अपनी चिंता नहीं है, आपकी जान का खतरा है। मेरे जैसी तो हजारों लाखों इस खून की प्यासी धरती पर मर चुकी हैं।

आगा खां– चिंता न करो। मैं प्रबन्ध करके आया हूं। अब उन पर मैंने अपने आदमी लगा दिये हैं। इस समय वे चारों शराब पीकर बेखबर पड़े हैं और उनके सिर पर पहरेदार हैं।

साईं– शुक्र है।

आगा खां– जसवंत का क्या हाल है?

साईं– बहुत ही नेक युवक है। बहुत सम्मान करता है। इतना प्यार करता है कि स्वतः उस पर विश्वास करने को मन करता है।

आगा खां– पवित्र खून है। यह तो पता करो कि काबुल का रहने वाला है कि पंजाब का? लक्षण तो सभी पंजाब के हैं।

साईं– मैंने पूछा तो नहीं, पर यह वृद्ध पुरूष उसका बहुत सम्मान करते हैं। वे जानते हैं कि मैं पंजाबी नहीं जानती, फिर भी मेरे सामने बहुत कम बातचीत करते हैं परन्तु जो भी बातचीत मैंने सुनी है उससे मैं इतना ही समझी हूं कि यह युवक पंजाबी है और किसी गुरमुख खानदान में से है क्योंकि डेरे के सभी हिन्दु–सिख उसका आदर सत्कार करते हैं।

आगा खां– बेशक पंजाबी है। उसके गुण ही बताते हैं।

साईं– मेरे साथ बहुत ही प्यार की गहरी बातें चलती हैं। मुझे डर है कि कहीं सारा भेद न खुल जाए। आप बताइए कि छिपाकर रखूं कि नहीं।

आगा खां– आप मुझसे अधिक सयानी हैं। सिख वचन के पक्के होते हैं, कुछ मुंह से निकल भी गया तो कोई डर नहीं। इससे विश्वास ही बढ़ेगा। पंजाब पहुंचकर भी हमें इसकी जरूरत पड़ेगी।

साईं– जब आप अकेले जा रहे थे, तब आपको पंजाब में जाकर जरूरत पड़नी थी। अब तो मैं साथ में हूं, पंजाब के पत्ते–पत्ते से परिचित हूं। इसलिए इस बात की चिंता छोड़ो। वैसे जितना वास्ता पड़ा है, आदमी मित्रता के योग्य है। इसलिए मित्रता तो उससे करनी चाहिए। मैंने यह भी देखा है कि उसे आपसे भी प्यार है। मेरा यह भी विश्वास है कि वह भी हमारे भेद को थोड़ा–बहुत जानता है।

आगा खां– मैंने तो कुछ बताया नहीं। परन्तु सभी नाम उसके कानों में पड़ चुके हैं और उन चीजों को भी वह देख चुका है।

साईं– तभी। आदमी सयाना और विचारशील है। अल्लाह को याद रखने वाला है। इसलिए विचार पवित्र हैं। फिर क्या इच्छा है?

आगा खां– मेरे विचार से कुछ मंजिल और निकल जाने दो। फिर सारी बात बता देना।

: १९ :

पहाड़ों में जब गेहूं के पौधे निकल आते हैं तभी उनपर बर्फ पड़ने लगती है। फागुन तक यह खेती बर्फ के नीचे दबी रहती हैं। जब सूरज तपता है और बर्फ पिघलती है तब खेती बर्फ के नीचे से निकल आती है। उसे रोशनी, गर्मी और खुली हवा मिलती है। तब सभी झिझक उदासी और रूकावट दूर हो जाती है। वह खिल जाती है, लहलहा उठती है और कुछ ही दिनों में पौधों में बालियां निकल आती हैं। इसी प्रकार लम्बे अरसे से क्लेश और दुखों से दबी सतवंत कौर के सिर से ऐसा लगता है जैसे बर्फ हट गयी थी। उस लड़की के स्वभाव में खुशी और मस्ती थी। विचार भ्रम रहित थे, बिना किसी पीड़ा के वह यत्न करती थी। हिरनी की तरह बेपरवाह घूमती थी। ऐसे उसमें अनेक गुण थे परन्तु जबसे वह कैद में पड़ी थी और दुखों

ने उसे घेर लिया था तभी से वह चिन्तनशील रहती थी और फूंक–फूंक कर कदम रखती थी। ईश्वर पर उसका पूरा विश्वास था। दुखों के कारण उसका व्यवहार अधिक विचारशील हो गया था। यही बात थी कि सतवंत कौर ने कभी हौसला नहीं हारा। नाम का अभ्यास करने वालों को जब कलेश और विपदाओं का सामना करना पड़ता है तो मन अधिक एकाग्र हो जाता है। उस समय विचार, धैर्य और ईश्वर पर विश्वास बढ़ जाता है। उल्लास और बेपरवाही कम हो जाती है। चिन्ताओं से थोड़ा मुक्त हो जाने से उसका स्वभाव अधिक सहज हो गया था। डेरे में उसके हंसमुख स्वभाव के कारण चारों ओर गहमागहमी रहती। साईं पर इस स्वभाव का, और उसके सच्चे निर्मल प्यार का गहरा प्रभाव पड़ा परन्तु अभी तक साईं को यह पता नहीं था कि इन गुणों का पुतला वास्तव में स्त्री है। सफर आनन्द पूर्वक होता रहा। तब आज की तरह सफर आरामदायक नहीं था। रास्ते साफ नहीं होते थे। सफर कठिनाई से होता था। परन्तु मिल–जुलकर गुजारा हो जाता था। काफिलों का दस्तूर भी तब और था। काफिले के लोग मिल–जुलकर अपनी रक्षा का प्रबंध करते थे। परंतु प्रायः किसी प्रसिद्ध धाक वाला आदमी रक्षा का प्रबन्ध करता था। खैबर का सारा दर्रा खतरनाक रास्ता था। परन्तु यहां पर भी कुछ नामों का ऐसा डर था कि खैबर के लुटेरे भी डरते थे। अभी कल की बात हैं कि मिट्ठा सिंह नाम के एक सिख का बड़ा सम्मान था। मिट्ठा सिंह का नाम लेते ही लुटेरे लूट का सामान छोड़कर भाग जाते थे।[1] उन दिनों इसी तरह आगा खां के पिता की भी खैबर[2] में ऐसी ही धाक थी।

इसी कारण वह बरखुरदार इतने बड़े काफिले को निर्भय लिए जा रहा था। काबुल के अमीर अपने राज्य में से जाने वालों से कर तो वसूल कर लेते थे परन्तु रक्षा नहीं करते थे। किन्तु कई यात्री जिन्हें

---

1. इस नामी पुरुष के बेटा और बेटी शाम सिंह और राम देई का थोड़ा समय हुआ बड़े–बूढे होकर अमृतसर में निधन हुआ है।
2. खैबर का सफर इस समय तक भी खतरनाक रहा है। काफिले को रक्षा के लिए अमीर के घुड़सवार आते थे। इधर सवारों का दस्ता अंग्रेजी सरकार की ओर से दूर तक जाता था। अब तो मोटर–गाड़ियां बेखटके चलती हैं।

व्यापार से अधिक लाभ की सम्भावना होती थी, रक्षा का प्रबन्ध भी करते थे। जिस समय का हम वर्णन कर रहे हैं उससे कुछ समय पहले काबुल दिल्ली के अधीन था। अकबर से लेकर मुगल बादशाह इस पर अपना सिक्का चलाते रहे। पर मुगल सल्तनत के आखिरी कमजोर बादशाह के हाथ से यह देश निकल गया था और नादिरशाह के आक्रमणों ने तो इसे पूर्ण स्वतन्त्र करा दिया था। अब्दाली के आक्रमण पंजाब को भी दिल्ली से तोड़कर काबुल के साथ जोड़ रहे थे परन्तु सिखों ने उसके मंसूबे पूरे नहीं होने दिये। इसलिए नया राज्य स्थापित करने के लिए अब्दाली पंजाब और काबुल में व्यापार बढ़ाना चाहता था। वह लुटेरा था, परन्तु अफगानिस्तान में बैठकर बंगाल तक राज्य करने की उसकी आकांक्षा थी। शायद कामयाब भी हो जाता किन्तु पंजाब के सिख उसके मनसूबे को पूरा नहीं होने दे रहे थे। जब वह हमला करने आता, सिख जंगलों–पहाड़ों में छिप जाते। जब वह दिल्ली की तरफ चला जाता तो वे फिर बाहर निकल, जगह–जगह कब्जा कर लेते। अहमद शाह को दिल्ली जाकर पंजाब में सिखों के विद्रोह की खबर मिलती। तब उसे चिंता हो जाती कि कहीं ये अपनी शक्ति से अफगानिस्तान और उसके बीच में रूकावट पैदा न कर दें, जिससे कि वह अपने देश ही न पहुंच सके। उसे डर था कि उसका सर्वनाश भी हो सकता है। यह सोचकर वह फिर पंजाब की तरफ लौटता और सोचता कि इन्हें सदा के लिए खत्म कर दूंगा। तब वे फिर जंगलों–पहाड़ों में छिप जाते। और फिर मौका पाते ही सिख विद्रोह कर उठते और लूट का माल जो वह ले जा रहा होता उसमें से कुछ न कुछ हिस्सा छीन लेते और कई कैदियों को छुड़ा लेते। जब वह अपने देश चला जाता, सिख फिर जगह–जगह कब्जा कर लेते। सिखों को आमूल नष्ट कर देने के लिए ही उसने भयंकर युद्ध किया। एक साल पहले ही अब्दाली ने पानीपत के मैदान में मराठों को पराजित करके उनके हिन्दू राज के सपनों को तोड़ दिया था। वही अब्दाली पूरा जोर लगाकर भी सिखों को नष्ट न कर सका।[1]

1. यह युद्ध 28 माघ संवत 1818 वि॰ को कूप रहीड़े हुआ था।

बारह घंटे सिख पीछे हटते गये और अब्दाली उन्हें दबाता चला गया किन्तु सारा जोर लगाकर भी उनका व्यूह न तोड़ सका। इस युद्ध में हजारों सिख मारे गये किन्तु उनकी वीरता और युद्ध प्रवीणता का अब्दाली भी कायल हो गया। इसके बाद सिखों के पैर पंजाब में जमते चले गये और पंजाब में पठान राज स्थापित करने का अब्दाली का सपना नष्ट हो गया। आखिरी हमले में तो उसने खुद सरदार लहणा सिंह को लाहौर की सूबेदारी देनी चाही थी परन्तु उस वीर ने कहा था कि हम अपनी हिम्मत और तलवार के जोर से राज पैदा करेंगे, किसी का दिया हुआ राज हम नहीं लेते।

अब यह काफिला जलालाबाद के पास पहुंच गया था। लुंडा नदी की दायीं ओर बसा हुआ यह तीन चार हजार की आबादी का शहर है। इसके सुन्दर दृश्य ने मन को मोह लिया। सांझ के समय जसवंत और साईं नदी के किनारे बैठे थे। जसवंत ने 'रहुरास' का भोग डाला। साईं ने पाठ ध्यान से सुना और अरदास के समय सम्मान से खड़ा हो गया और भोग पर माथा भी टेका।

जब डेरे में वापस लौटे तो जसवंत ने मुसकरा कर कहा–

साईं जी ! आज तो आप भी काफिर हो गये।

साईं– कैसे?

जसवंत– काफिरों की नमाज मन लगाकर सुनी, उसमें शामिल हुए और काफिरों के खुदा को माथा टेका।

साईं– (हंसकर)–अच्छा, यह बात है। मैंने न तो काफिरों के खुदा को माथा टेका है और न मोमनों के। मैंने तो अपने जसवंत की नमाज पड़ी है और जसवंत के प्यार को माथा टेका है। मैंने तो एक जीता–जागता प्यारा ढूंढ लिया है और उससे प्यार किया है। यही मेरी पूजा और यही मेरी इबादत है। बचपन में मेरा नेक पिता खुदा था। मैं आठों पहर उसे ही याद करती थी। विवाह के बाद मेरा पति मेरा खुदा था, मैं उसी की पूजा करती थी। जब उसका देहान्त हो गया तो आगा खां की मां को माबूद (पूज्य) समझा और उसमें रमती रही। वह मर गयी तो आगा खां मेरे लिए पूज्य हो गया। अब उसी के प्रेम के कारण आपसे भी स्नेह हो गया। मैं क्या समझूं नमाज और

रोजे। मैं तो अपने प्रिय के प्यार को ही रोजा और नमाज समझती हूं।

यह बात कुछ ऐसे प्यार और नम्रता से कही गयी थी कि हंसते–हंसते भी जसवंत की आंखों में आंसू आ गये। उसने हंसते हुए शांति से कहा–है बहुत ही अच्छी बात, जिसका कोई मूल्य नहीं हो सकता, परन्तु खुदा का नाम कुछ अधिक सम्मान से लिया करो। यही प्रेम का पड़ाव हमें उस तक ले जाता है। हर पड़ाव पर, हर पग पर वह स्वयं है। परन्तु पड़ावों और रास्तों का सम्मान करने वाले खुदा (ईश्वर) का नाम लेते समय मौन रहें। वह स्वयं ही प्रेम है, सर्वव्यापक है, किन्तु अलिप्त रहता है। आपका प्यार अमूल्य है। जिस दिल में पिता, पति, मालकिन और आगा खां का निवास है, वहीं उस मालिक को भी निवास करना है। यह सब उसी का प्यार है जो जगह–जगह विभिन्न रूपों में आकर रहता है। साईं ने कहा इस समय मन की कमी को दूर करना कठिन है क्योंकि मन विभक्त है। जब यह पचड़ा खत्म हो जायेगा तो मुझपर कृपा करके कोई सुपात्र मेरी कमियों को दूर कर देगा। जिस घर में मैं चिरकाल से सेवा कर रही हूं उस घर में सभी बहुत उपकारी और सहृदय हैं।

जसवंत– आज मुझसे रहा नहीं जा रहा। मैं गुस्ताखी करके भी आज पूछ ही लूंगा। प्यारे साईं जी ! मुझे, आप कब तक पहेलियां बुझाते रहेंगे और मुझे अन्धकार में रखेंगे। जब आप मुझे इतना प्यार करते हैं, तब सारा हाल क्यों नहीं बताते, घुमा–फिराकर क्यों बातें करते हैं? यदि मुझे कुछ भी मालूम न होता तो और बात थी, कुछ भनक तो मेरे कानों में पड़ चुकी है। मैं इधर–उधर की बातें सोचता रहता हूं। मैं अपने विस्मय को दूर करने के लिए नहीं पूछ रहा बल्कि आपसी प्यार के कारण पूछ रहा हूं। मैं आपके और नजदीक होना चाहता हूं।

साईं– (ठंडी सांस लेकर) प्रिय ! आपसे क्या छिपाना। किन्तु दुख की गांठों को खोलने से कष्ट ही होगा।

जसवंत– सच है। परन्तु हम मिले ही दुखों में हैं। दुखों का मेल प्यार को गोद में जल्दी ले आता है। मैं कौन–से सुखों में हूं?

साईं– मैंने भी ऐसा ही सोचा था कि आप पंजाबी हैं और यदि भूल नहीं कर रही तो कैदी के रूप में आये थे और अब किसी तरह वापस

वतन को जा रहे हो।

जसवंत– बिल्कुल ठीक है। बड़ी मुश्किलों से छुटकारा हुआ है। परमेश्वर भला करे, आपके आगा खां की कृपा से शायद वतन तक पहुंच जाऊं। प्रन्तु आगा खां के पठान होने के कारण मैं उनसे कभी खुलकर बात नहीं कर सका। किन्तु साईं जी ! प्रेम–पात्र से बात कब तक छिपायी जा सकती है?

साईं– आसमान ही न टूट पड़े, मेरा लाल सिर देकर भी वचन को पूरा करेगा।

जसवंत– उससे और आपसे मुझे यही आशा है। यदि मैं भूल नहीं कर रहा, तो मेरे प्रिय साईं जी ! जो मैं देख रहा हूं उससे प्रतीत होता है कि मेरे और आपके खून में कोई अधिक अन्तर नहीं है।

साईं– यह बात भी ठीक है। मैं पठानी नहीं हूं और न ही मुसलमान हूं। मेरे ये रूप भी प्रेम के कारण ही हैं या (हंसकर) पूर्वजन्मों के कराण हैं।

जसवंत– (साईं का हाथ, अपने हाथों में लेकर) भगवान कृपा करे, जल्दी बताओ आप किस कुल में से हैं? मेरा कलेजा उछल रहा है, वह बेबस हो रहा है।

साईं– मैं स्पत सिंधु (सात नदियों वाले) पंजाब की पुत्री हूं। वैसे मैं राजपूत कुल की हूं किन्तु पंजाब के पहाड़ों में ही मेरा जन्म हुआ। मेरे पिता नामी जमींदार थे। नादौन में मेरा घर था, शक्तू मेरे पिता का नाम था। बड़ी होते ही पिता ने मेरा विवाह कर दिया। विवाहित जीवन मैं कुछ ही समय देख पायी। पति और पिता दोनों एक साथ स्वर्ग सिधार गये। उस समय हम लाहौर में थे। जिस मुहल्ले मे मैं रहती थी, वहीं एक गम्भीर स्वभाव वाला व्यक्ति रहता था। मेरे दुख के समय उनकी पत्नी ने, जो नेकी का अवतार थी, मुझे बहुत प्यार दिया। उसी प्यार ने पति की जगह मुझे यह शरीर दे दिया। मैं प्रेम में खोयी उनकी ही हो गयी, सो प्यारे जसवंत जी ! मेरी रगों में पंजाब के पर्वतों का पवित्र जल से निर्मित खून बहता है। जब कि आप मर्द हो और मैं औरत, पर आप मेरे बेटे जितने ही हो। मैं आपको देश का भाई या सगा भाई जानकर आपसे बिना मिले रह नहीं सकती। यह कहते ही उसने कसकर जसवंत को आलिंगन में ले लिया। और

ऐसा कसकर मिली कि आंखों से आंसू बहने लगे। काफी देर उसने उसे अपने आलिंगन में ही रखा।

जसवंत– साईं जी ! प्यार के अवतार साईं जी ! इस विदेश में, इस उजाड़ और विदेशी भूमि पर, इस एकाकीपन में मुझं देश–बहन मिली है। मैं कृतज्ञ हूं। यह मिलन ऐसे समय हुआ है कि अब हम में कोई भी अलगाव नहीं रहा है। यदि मेरी एक और इच्छा भी पूरी हो जाये तो मेरी खुशी सम्पूर्ण हो जाए। हां, अब प्रिय साईं जी, अपनी मधुर वाणी से वह मधु भी दान करो।

साईं– वह क्या?

जसवंत–मेरा खून उछल कर कह रहा है कि आगा खां की रगों में भी पंजाब की पवित्र धरती का खून बह रहा है। उस जोश से भरी नाड़ियों में कठोरता का विदेशी खून नहीं है। वहां तो उत्साह और शक्ति वाला रक्त जोश से उछल रहा है। प्रिय बहिन ! मेरी इच्छा को ठुकराना नहीं। परमेश्वर करे तेरा उत्तर और सच दोनों मेरी इच्छा को पूरी करने वाले हों।

साईं– प्रिय भाई ! क्या बताऊं? दुख की गांठें हैं। पर सुनो, अपना कलेजा थाम कर सुनो। आपके प्रश्नों के उत्तर मेरी व्यथा–कथा में ही आ जायेंगे।

मैं अपनी व्यथा– कथा को फिर से आगे चलाती हूं। जब मुझे प्यार का नया आलम्बन मिला है, मैं उसी में खो गयी। मैं उसे अपनी मालकिन कहूं या बहिन कहूं। उसमें भलाई ही भलाई थी। सच की पुतली थी। उसने स्वप्न में भी किसी का बुरा नहीं सोचा था। हंसमुख, सदा दूसरों का सुख चाहने वाली दिन–रात भजन गाती। गुरू जी की वाणी का पाठ करती और गुरू गुरू करती थी। वह सुन्दर, बांकी, कोमल और बुलबुल जैसी मधुर आवाज। पति उसके वीर, नेक, सच्चे, धर्मपरायण और परोपकारी थे। यह जोड़ी एक अनुपम जोड़ी थी। एक बच्ची उनके घर में थी। वाहिगुरू की बरकत से उनके घर एक लड़के का जन्म हुआ जो सुन्दरता में चांद को भी मात करता था। मेरे वे दिन इस परिवार की खुशियों और भजन–कीर्तन में बीते। मुझे वे दिन मायके में बीते दिनों से भी अधिक सुखी लगते हैं।

हमारे घर मेहमान बहुत आते थे। स्वामिनी खुशी से मेहमानों का स्वागत करती थी। वह सदा सेवा में लगी रहती थी और बच्चे के पालन पोषण में लगी रहती थी। मालकिन जब काम में अधिक व्यस्त होती, या कमजोरी के कारण कुछ बीमार हो जाती तो बच्चे को मैं ही छाती से लगाती। प्यार का आकर्षण देखो कि मेरी छाती में दूध उतर आया। फिर तो आराम हो गया। पहले से अधिक बच्चे को मेरा दूध मिलने लगा। प्यार की और क्या कथा सुनाऊं? याद करते ही रोना आता है। वह सत्संगति, उपकार, खुशी के रंग, मैं बता नहीं सकती जो हमारे घर में था।

देश का दुर्भाग्य, दिल्ली के सिंहासन पर बैठते ही औरंगजेब ने प्रजा में द्वेष और घृणा के बीज बो दिये। उससे प्रबंध बिगड़ने लगा। अन्त में निकम्मा और रंगीला बादशाह मुहम्मद गद्दी पर बैठा। उधर से नादिरशाह और शामत बनकर हमारे देश पर विशाल सेना लेकर चढ़ आया।[1] पेशावर से दिल्ली तक का क्षेत्र उसने वीरान कर दिया। खून की नदियां बहने लगीं। सत्तर करोड़ का सोना–चांदी और रत्न नादिर ने दिल्ली से लूटा। गोलकुण्डा का कोहनूर हीरा और शाहजहां का तख्त–ए–ताउस भी इसी में लूटा गया।[1] सिखों ने वापस जा रहे नादिर से रात को छिप कर हमला कर के बहुत कूछ वापस छीन लिया। बहुत से कैदियों को भी छुड़ा लिया पर जिनका भाग्य ने साथ नहीं दिया उनका क्या हो सकता था। लाहौर में आ कर उसे सिखों के बारे में पता चला तो वह विस्मित हुआ। उसने खान बहादुर को कहा–सम्भल कर रहना, इन लोगों के गुण सूचित

---

1. एक टाइरोलीस जेसुस्टीफन वालर नाम का यौरूपीयन उन दिनों भारत में था। वह लिखता है कि उन्होंने बसे बसाये घर जलाये, लोगों को तलवारों आदि से कत्ल किया। बच्चों, स्त्रियों जवानी से भरपूर युवतियों आदि को कैद कर लिया। मन्दिरों में गऊओं को मारा और उनके रक्त को मूर्तियों पर मल दिया। 2. इससे अलग दस करोड़ उसके अफसरों और सिपाहियों ने लूटा। 20 करोड़, नादिर ने फौज को वेतन के रूप में दिया। 1000 हाथी, 700 घोड़े, 10000 ऊंट, 100 खुसरे, 130 मुंशी, 200 लौहार और सुनार, 300 राज, 200 वास्तुकार, 200 बढ़ई आदि भी नादिर साथ ले गया।

करते हैं कि ये राज करेंगे।[1] किन्तु कौन सुनता। और वह स्वयं कौन सा सिखों के साथ कुछ कम दुर्व्यवहार करता था। हम उन दिनों बटाला में थे। महाराज ने बुलाया था। लुधियाना के पास इस आगा खां के पठान पिता के हाथों फंस गये। वह किसी सरकारी काम से पीछे आ रहा था। मैं, मेरी मालकिन, बच्चे और घर के मालिक हम सभी फंस गये। लाहौर की ओर जाते हुए पहली रात को सिखों ने छापा मारा। मालिक और बेटी तो सिखों के हाथ आ गये पर हम तीन पीछे ही रह गये। फिर तो अटक तक सिख छापा मारते रहे। शायद हमें छुड़ाने के लिए मालिक भी साथ आते रहे होंगे। परन्तु उनकी कुछ पेश न गयी। वे हम तक नहीं पहुंच सके। इस समय जालिम हसन खां (आगा खां का पठान बाप) फौज के आगे वाले दल में था। जिस दिन नादिर अटक पर रूका, वह नदी पार कर चुका था।[1] हमारी मुश्के कसी थीं और बन्दी के रूप में हम पार पहुंच गये। इसीलिए अटक पर सिखों का जो भारी छापा पड़ा उसमें हम नहीं छूट पाये। वैसे कई सौ हिन्दू औरतें, बच्चे, सिख छुड़ा कर ले गये थे। यह बात हमने काफी आगे आकर सुनी थी। किन्तु हमारा दुर्भाग्य बना रहा। बुरे हाल हम काबुल पहुंचे। हसन खां ने नादिर से विदा लेकर अपने गांव में डेरा डाला। लूट का माल सम्भाला और हिन्दुस्तान के बगीचे के फूलों को मसलना शुरू कर दिया। पांच–पांच रूपये में भारत वर्ष के बेटे–बेटियों को मण्डी में पशुओं की तरह बेचा गया। मेरी मालकिन की सुन्दरता और बालक की सूरत और गुणों पर हसन खां भी रीझ गया। उन्हें घर में ही रख लिया। और उनकी सेवा के कारण मैं भी बाजार में बिकने से बच गयी, परन्तु दुर्भाग्य अभी पीछा कहां छोड़ रहा था? हसन खां ने मेरी देवी जैसी मालकिन को अपनी पत्नी बनाने के लिए कलमा पढ़वाना चाहा। परन्तु वह तो सतियों के वंश में से थी और वीरों की संतान थी। धर्म

---

1. अहमदशाह बटावली लिखता है कि (नादर) गुफत आन ऐशां धुत हुजद बाइद बूद व नजीदीकमत कि ईमुफस दह सर खाहदकसीद व ई मुलक खाहंद ग्रिफत अनुवाद....नादर ने कहा कि इनसे डरकर रहना चाहिए। शीघ्र ही यह झगड़ा (फसाद) सिर उठायेगा और यह देश को हस्तगत कर लेंगे।

की पुतली यह पतन कैसे देख सकती थी। हसन खां को मुंह तोड़ जवाब दे दिया और उसकी एक न मानी। कहर में हसन खां ने तलवार दिखायी और डराया, किंतु डरता कौन? जिसने अभय को पूजा हो, वह भय को क्या जाने? हसन खां ने बहुत जोर लगाया, पर मेरी प्यारी बहन ने एक न मानी। हसन खां का क्रोध बढ़ता गया। अन्त में उसकी तलवार प्यारी बहन पर चल गयी और मेरे प्यार का आश्रय, मेरे जीवन का आधार, नष्ट हो गया। कोई दो घंटे तड़फ–तड़फ कर प्यारी ने जान दे दी। उस समय मैं और बच्चा पास ही थे। बच्चे का रोना और मां को तड़फते हुए देखना ऐसे नजारे थे जो गुरू किसी को भी न दिखाये। मेरा मन कर रहा था कि छुरी मारकर मैं भी मर जाऊं, पर प्यारी ने आख़िरी समय में मुझे सौगन्ध देकर कहा था–जैसे भी हो मेरे बच्चे को पालना, जो भी विपदा आये झेलना, जो भी करना पड़े करना, परन्तु इस बच्चे को पालना और जब यह बड़ा हो जाए, अपने पैरों पर खड़ा हो जाए तो मौका लगते ही इसे मेरी व्यथा सुनाना। फिर उसका परिणाम देखना कि वह अपने स्रोत को पहचान लेगा। यदि मेरा बच्चा अपने स्रोत को पहचान ले तो उसे मेरी इच्छा बताना कि वह देश जाकर अपने देश और कौम की सेवा करे, सिखों का सिदक धारण करे। बस यह मैं तेरे सिर छोड़कर जा रही हूं और तुझ पर यह सब छोड़कर मैं शांति से मरती हूं। इस तरह मेरा विश्वास है कि मेरा बच्चा अब अपने देश में पहुंच जायेगा। रात तो मैंने रो–रोकर अन्धेरे में तड़फते और बच्चे को प्यार करते हुए बिता दी। दिन में कुछ साहस का संचार हुआ। मैंने बच्चे को हसन खां के चरणों में रख दिया और कहा–मां तो इसकी मर गयी। अब इसके लिए क्या आज्ञा है? कहने लगा–यह भी कलमा नहीं पढ़ेगा? मैंने हाथ जोड़कर कहा–'यह मासूम बच्चा है, यह पढ़ना और न पढ़ना क्या जानता है? इतना मैं आपको बता देती हूं कि यह ऊंचे खानदान का है और एक सिखों के सरदार कुल में से है। यह ऐसे ही गंवा देने वाली वस्तु नहीं है। यह अमूलय लाल है और आपके रहम दया के योग्य है। पता नहीं क्या आश्चर्यजनक घटना हुई, बच्चे ने दोनों हाथ ऊपर उठाकर जो उसकी ओर देखा तो हसन से आंखें चार हुई और उस कठोर हृदय ने बच्चे को उठाकर गोद में लिया

और कहा–मेरी गोद सूनी थी। अल्हा ने भर दी है। यह मेरा बेटा हुआ। जियो बेटा। उसी समय बड़ी बेगम को बुला कर उसकी गोद में दे दिया। परन्तु बच्चा उसकी गोद में टिका नहीं। वह बार–बार मेरी तरफ देख रहा था। बेगम को जब मालूम हुआ कि इसकी मां कत्ल कर दी गयी है तो उसके कलेजे को भी ठंडक पहुंची। बच्चे को बेटा बनाना उसे भी पसन्द आ गया। परंतु मुझसे दोनों संकोच करते थे। उनके मन की बात समझ कर मैंने कहा–'खां साहिब ! अब बाकी मैं रह गयी। मैं इनकी नौकर हूं इस बच्चे की धाय मां हूं। इसका पालन–पोषण मैंने ही किया है। यदि आप मारना चाहें, तो हाजिर हूं, यदि रखना चाहें तो इसकी सेवा करूंगी। रात को इसकी मां मरी है और यदि मैं भी मर गयी तो बच्चा इन दो घटनाओं को सहन नहीं कर पायेगा और रो–रोकर मर जायेगा। अब आपने इसे बेटा बना लिया है। इसके प्राणों के लिए मुझे इसकी सेवा के लिए रख लो। हसन खां कहने लगा,–तू भी सिखनी है? मैंने कहा–'मैं तो पहाड़िन हूं।' कहने लगा–'तो कठोर स्वभाव की नहीं है। (मेरी तरफ देखते हुए) क्या तू कलमा पढ़ेगी। मेरे मन पर बहिन की आज्ञा थी। मैंने सोचा मेरा धर्म तो प्यार है, मुझे हिन्दुत्व से क्या और मुसलमानपन से क्या? मुझे तो प्यार का निर्वाह करना है। बच्चे को पाल–पोस कर बड़ा करना है। इसलिए मुझे जो भी करना पड़ेगा, वही मेरा धर्म है। मैंने कहा–जैसे कहो हाजिर हूं। यह सुन कर वह खुश हो गया और कहने लगा–देखो इस बच्चे को इसके जन्म का रहस्य कभी मत बताना। यह सुनकर मेरा सिर नीचा हो गया और चक्कर से आने लगे। जबान से भला मैं क्या कह सकती थी। क्योंकि यही तो मेरा कर्त्तव्य था जिसके लिए मैंने जीने का प्रबन्ध किया था। थोड़ी देर में एक मुल्ला आ गया। मुझे मुसलमान बनने के लिए हुक्म हुआ। तब मैंने कहा– मैं उपस्थित हूं पर पहले मुझे उस शव को जला लेने दो जो अन्दर पड़ा है। फिर जो, कहोगे करूंगी। हसन खां कहने लगा–उसके शरीर को इसी तरह सड़ने दो। तब मैंने समझाया–'मृत के साथ वीर लोग बैर नहीं करते। फिर वह सरदारनी थी, आप सरदार हैं। आपकी सरदारी के यह उचित नहीं है कि राज कुल के

लोगों के साथ ऐसा व्यवहार करें। बहुत देर की बहस के बाद वह उसे नदी में बहाने के लिए मान गया। मैंने अपने थैले में से चादर निकाली। अपनी प्यारी को उसमें लपेट कर अपने कंधे पर उठाकर एक नदी के किनारे ले गयी। 'श्री वाहिगुरू' क़हते हुए और रोते–रोते मैंने उसे स्नान करवाया और फिर चादर में लपेटकर साथ कुछ पत्थर बांधकर जिससे मुर्दा तैरे नहीं, और नीचे–नीचे ही बहे नदी में प्रवाहित कर दिया। मैंने अपनी प्यारी को तत्व के मुख्य देवता जल क़े अर्पण कर के मन से कहा–हे मन ! तीन प्यारे तो अपने हाथ से भेज दिये। अब चौथे प्यारे की सेवा कर, देखो उसका क्या बनता है? भाग्य बलवान है। हे वाहिगुरू ! तेरे नियम न्यारे हैं।

प्रिय का प्रण पूरा करने के लिए मैं जुट गयी और उस घर में ऐसे घुस गयी जैसे सदा से वहीं रहती होऊं। मेरा विश्वास बैठ गया और मैं पठानियों में पठानी हो गयी। अपने लाल को पालती रही। सो प्यारे जसवंत जी। इस आगा खां की नाड़ियों का खून आपके बहुत पास है, वह देश भाई भी है और आपका धर्म भाई भी है।

सतवंत ने यह कथा सांस रोक कर सुनी थी। कई बार रोई, सिसकियां भरी थी। अब उसने उछल कर सांई को गले लगा लिया और बोली–तुम्हारा मुंह गुलाबों से भर दूं। तू धन्य है, जो मेरी इच्छा और आशा के उच्च शिखर से नीचे का स्थान नहीं रखती। प्यारी मां मैं भी यही सोच रही थी कि आगा खां की नीली नाड़ियां पंजाबी हैं और उनमें बह रहा पवित्र खून सिखों क़ा है। अब शेष कथा सुनाओ।

सांई– और क्या बताऊं? कोई सत्तरह साल इस कैद में बीते। नौकरानियों की तरह सेवा की। जी जी करके खुशामद की। राजपूत होकर तुर्कों के घर का खाया पिया। अनेक़ पापड़ बेले। उस वचन में बंधी थी कि लाल को पालना है और भेद बताना है। वैसे तो सिखों के घर रहते हुए मेरा राजपूती मन और दृढ़ हो गया था। मैंने भी दूसरे दिन ही कत्ल होना था। पर प्रेम के अन्त तक निबाहना कोई आसान नहीं होता। जब बालक कुछ बड़ा हो गया तो मैं सोचने लगी कि लाल को रहस्य बता दूं। परन्तु फिर सोचा, पता नहीं वह क्या करेगा, कहीं मां का उद्देश्य पूरा न हुआ तो? इसलिए इसकी जवानी और

सयानी अवस्था की प्रतीक्षा करती रही। जवान हो जाने पर काबुली मेवे खाकर इसमें उत्साह और उमंग भर गयी। आपने देखा है कि उसे देखते ही मन की भूख मिटती है। हां– जिस पठान मां की गोद में इसे डाला गया था वह बड़ी अच्छी औरत थी। इससे बेटे जैसा प्यार करती थी। मुझे भी सुखी रखती। पर अफसोस है कि वह मर गयी। हसन खां ने और विवाह कर लिया। यह नयी औरत हसन खां की पत्नियों की सरदार थी। बहुत सुन्दर लड़की थी। पहले तो वह मेरे लाल को टेढ़ी आंखों से देखती थी पर कुछ समय बाद उसका बच्चे के साथ प्यार बढ़ता गया। मुझे यह बात मालूम हो गयी। पर भोले लाल को पता नहीं था कि उसकी सौतेली मां के मन में क्या खोट है? वह उसे मार डालना चाहती थी। उसका कारण यह था कि उसका अपने पहले घरवाले से एक बच्चा था जो पहले तो उसके मायके रहा पर जब वह उसे घर ले आयी थी। अब चाहती थी कि आगा खां को वश में कर ले जिससे हसन खां को कोई संदेह न हो और धीरे–धीरे उसका बच्चे के प्रति स्नेह कम करके (जो हसन खां के मन में इतना गहरा था कि निकल नहीं सकता था) अपने बेटे के प्रति मोहसिक्त कर ले और फिर किसी समय आगा खां को खत्म कर दे। फिर हसन खां खुद ही उसके लड़के को प्यार करने लगेगा। इस बूढ़े ने तो मर ही जाना है। फिर वह सारी सम्पत्ति की अकेली मालकिन हो जायेगी।

उसके इन मनसूबों का पता लग जाने पर मैंने लाल को समझाया। लाल का मुझसे बहुत प्यार था। उसने सुना तो सही पर जवानी की मस्ती में उसे यह सुनना अच्छा नहीं लगा कि कोई उसे भी मार सकता है। ऐसे ही कुछ समय बीत गया। लाल तो जवानी की मस्ती में था और मैं उसकी रक्षा के उपाय सोचती रहती थी। एक दिन मैंने फिर समझाया। उस समय अचानक मेरे मुंह से निकल गया–लालजी ! आप चौकस नहीं रहते, पछताओगे। इन पठानों पर विश्वास मत किया करो। यह सुनते ही लाल ने कहा–इन पठानों से क्या मतलब? आप और मैं पठान हैं कि कुछ और? मैं हंस पड़ी और जैसे कोई छिपाता है ऐसे बात को टाल कर चली गयी। दूसरे दिन

सुबह वह मुझे उठाकर कहने लगा–मां ! तुम मुझे सबसे प्यारी हो। तुमने ही रात को मुझसे बात की और फिर कोई बात मुझसे छिपा ली है। मैं अब क्या करूं? सारी रात सो नहीं पाया। मन तड़फता है कि मुझ में और मां में कोई पर्दा है। यह सुन कर सोचा कि सब कुछ बता देने का यही समय ठीक है। इसीलिए उसी समय लाल को सौगन्ध देकर और तलवार आगे रखकर कहा–बच्चे ! यदि तुम्हें मेरी बात पर विश्वास न हो, या मेरी बात तुम्हें अच्छी न लगे तो मुझे अपने ही हाथ से कत्ल कर देना। पर किसी और को यह बात मत बताना। इस तरह लाल से वचन लेकर मैंने उसे सारी कथा सुना दी। जैसे–जैसे मैं उसे हाल बता रही थी कि सत्तरह–अट्ठारह साल गैर लोगों के बीच रहकर, एक अच्छे इलाके का सरदार होकर, दौलत का मालिक होकर जब वास्तविकता को सुनेगा तो सिवाय इसके कि बताने वाले पर क्रोधित हो और क्या करेगा? परन्तु वहां तो कुछ और ही हुआ। वह मुसलमान और पठान नवयुवक जब अपने स्रोत के बारे में सुन रहा था तो अपनी माता के दुखों को समझता, मेरी कुर्बानी की बात को सुनकर लाल–पीला हो रहा था। अन्त में होंठ काटने लगा, उसके तेवर बदल गये, आंखों में अंगारे बरसने लगे। वह तलवार उठाकर चल दिया। मैंने बांह पकड़कर कहा–किधर? कहने लगा–अपनी मां के कातिल से बदला लेने। मैंने बांह खींचकर बैठा लिया और छाती से लगा लिया। फिर प्यार से उसे समझाया कि तेरी मां देवी थी। वह उसे माफ कर गयी है। जो वह कह गयी थी, उस बात को पूरा करना तुम्हारा धर्म है।

मेरी बात सुनकर वह रूक गया और उन लाल आखों से दो गर्म–गर्म जलते आंसू निकल आये। उसने कहा–जल्दी बताओ, मेरी मां की क्या इच्छा थी। मैंने कहा–वह मैं अभी नहीं बताती। मुझे उसकी वाक्शक्ति को देखना है। पहले तुम बताओ कि अब क्या करोगे? कहने लगा–मैं क्या करूंगा, हसन खां का कत्ल करके पंजाब चला जाऊंगा और अपने बूढ़े बाप को ढूंढूंगा और उसे बताऊंगा कि मैं तेरा बेटा हूं और मां का बदला लेकर आया हूं।" मैंने कहा–पर पता नहीं वह तुम्हें स्वीकार करे या नहीं क्योंकि मुसलमानों

के साथ हमारे देश के लोग खाते–पीते नहीं हैं। यह सुनकर कहने लगा–क्या मेरा बाप मुझे अपने घोड़ों के लिए घास काटने पर भी नहीं रखेगा? क्या मेरी बहिन नहीं है? वह मुझे अपने दरवाज़े पर पहरेदार रख लेगी। तुमने द्रोह किया है जो मुझे पहले नहीं बताया। मैं अपनी मां के कातिलों के घर पलता रहा। मैं कातिलों का अन्न–पानी खाता–पीता रहा। धिक्कार है मेरे जीवन पर।

यह सुन कर मैं रो पड़ी और घड़ी भर मुझे होश भी नहीं रहा कि मैं कहां पर हूं। मैं अपनी प्यारे की वाक् शक्ति को देख देख कर विस्मित हो रही थी। इधर लाल कभी खून के आंसू गिराता, कभी होंठ काटता, कभी धरती पर एड़ी मारता। आखिर मुझे हिला कर पूछा–मां। जल्दी बताओ मेरी मां का क्या आदेश है। मैं बहुत बेचैन हूं। मेरा खून खौल रहा है और जोश मेरे वश से बाहर होता जा रहा है। तब मैंने उसे बताया कि तेरे लिए कोई आदेश नहीं है, आदेश मेरे लिए था कि मैं तुझे पालूं और इस भेद को बताऊं। हां, वह कह गयी थी कि जब मेरा लाल यह सुनेगा तो वह कभी भी गैर लोगों में नहीं रहेगा, अपने देश चला जायेगा। यह मेरी इच्छा है और उसे तुम बता देना। लाल ने कहा–इसके ऊपर और क्या हुक्म है? मैं अपने देश जाऊंगा और अपनी मां के कातिल का सिर नेजे पर टांग कर खैबर के दर्रा में से ले जाऊंगा और पंजाब के दरिया ऐसे ही पार कर जाऊंगा। अपने पिता के चरणों में वह मनहूस सिर जाकर रख दूंगा और कहूंगा–बापूजी ! यह अपराधी है, जिसने आप को दुख दिया है। मुझे शाबाशी दो कि मैं इन्तकाम लेकर (बदला चुकाकर) आया हूं। मैंने कहा–लाल जी ! आपकी अम्मी ने अपने अन्त समय, बेहोश होने से पहले अपने पति और बेटी की कुशलता के लिए प्रार्थना की थी, मेरी और आपकी कुशलता के लिए और एक प्रार्थना हसन खां के लिए की थी कि मैंने अपने कातिल को भी क्षमा किया। इस पर लाल दांत किट–किटा कर बोला तो मेरी मां में बहादुरी नहीं थी। मैंने कहा–लाल जी ! अभी आप सिखों से परिचित नहीं हैं। वे जंगली योद्धा नहीं हैं। वे उत्साह से भरे वीर हैं। वे रोज 'सरबत दा भला' (सभी का भला) मांगते हैं। वे फकीर हैं जो धरती का भार हरने के

लिए आये हैं। वे बदले नहीं लेते। वे वैर भाव से रहित हैं। किन्तु बदी से लड़ते हैं। पाप और जुल्म से टक्कर लेते हैं। इसी तरह मैंने उसे सिखों के बारे में बताया। इससे उसका क्रोध दूर हो गया और नयनों से विराग की वर्षा होने लगी। अब वह अपनी तुलना सिखों से करता और उनसे बिछड़ जाने की वजह से रोता।

इसी समय मैंने लाल को उसका कड़ा और कृपाण दिये जो उसे हसन खां के हवाले करने से पहले मैंने सम्भाल लिये थे और उसकी माता का गुटका जो उसके पति के हाथ का लिखा हुआ था, दिया और सारी बात समझायी कि आपकी माता आपके लिए यह दे गयी थी और कह गयी थी कि ये सब चीजें तब देना जब सारी बात सुन ले। इस उपहार को उसने सिर से लगाया और फिर बोला–अब तुम्हारा और मां का कहना मानकर मैं हसन खां को नहीं मारूंगा। परन्तु मैं इसके घर में नहीं रहूंगा। फिर मैंने समझाया कि जल्दबाजी अच्छी नहीं। कुछ समय यहीं और बिताओ और फिर किसी विधि से यहां से निकलो। सफर ख्तरनाक है, रास्ता खराब है, किसी युक्ति से ही वहां पहुंचा जा सकता है। सीना जोरी ठीक नहीं है। उसने मेरा कहना मान लिया और हसन खां की जान लेने से टल गया। फिर यह समझकर कि उसकी जान बचाने के लिए मैंने अपने धर्म को छोड़ दिया है और उसकी मां को दिया वचन निभाया है, उसका मेरे प्रति प्यार और बढ़ गया। इस तरह मेरे समझाने–बुझाने से उसमें पहले वाला आवेश न रहा।

लाल का हृदय स्वतः ही मां–बाप के लिए बदल गया। मेरे कहने पर वह जोर तो बहुत लगाता कि मां–बाप को उसके मन की बात पता न चले, पर उसकी मां उसके इस परिवर्तन को समझ गयी और कारण ढूंढ़ने लग गयी। उसे और तो कुछ पता नहीं चला परन्तु एक–दो बार मेरे साथ गहरी बातें करते उसने देख लिया। यह बात उसने हसन खां को बतायी। हसन खां भी बेटे के व्यवहार में परिवर्तन देख रहा था। शायद उसे पता लग गया था। उसे मुझ पर शक हो गया कि कहीं मैंने उसे भेद न बता दिया हो या कोई भनक न डाल दी हो। कई बार उसने लुक–छिप कर भी पता लगाना

चाहा। पता तो उसे कुछ नहीं लगा परन्तु कभी–कभी आगा खां की अकारण उदासी ने उसे चिंता में डाल दिया कि कहीं मैंने उसे बताकर सारा काम खराब न कर दिया हो। इसलिए उसने फैसला किया कि उसे विदेश भेज दे और उसके पीछे मुझे मार दे और वापस आने पर कह दे कि बीमान होकर मर गयी।

जसवंत– तुम्हें इस तरह चोरी छिपे क्यों मारना चाहता था?

सांई– वह डरता था कि आगा खां का मुझसे बहुत प्यार है। और वह आमने–सामने हुआ तो क्रोध में आ सकता है जिससे घर में ही तलवार चल सकती है। इसीलिए उसने ऐसा ढंग निकाला। लाल ने पंजाब जाना तो स्वीकार कर लिया। परन्तु मेरा पीछे रहना उसे पसन्द नहीं था। किन्तु वाहिगुरू धन्य है। आपसे मेल हो गया और यह ढंग निकल आया और मैं बच गयी।

इस तरह की बातें करते रात काफी बीत गयी। सांई तो सो गया परन्तु सतवंत को नींद नहीं आ रही थी। मन में सोच रही थी कि हे परमेश्वर ! हमारे देश को क्या हो गया है कि अपने आप को सम्भालता ही नहीं। यहां आकर हमारे देशवासियों का क्या हाल होता है। यहां तो किसी के मन में दया नहीं। अपने देश में शक्ति है, किन्तु खंडित है। यह तो हमारा दुर्भाग्य है कि देश को होश ही नहीं आ रहा है। अपने हालात, गुरमुख जी से तथा और भाई–बहनों से हालात सुने और यह आगा खां और सांई की कथा तो बहुत ही विस्मयपूर्ण है। इन बातों से हैरान होते, विचार करते और अपनी कौम की वीरता और बहादुरी पर विचार करते रात बीत गयी, परन्तु सतवंत अभी भी सोच रही थी। माई आस कौर का परदेश में कत्ल होना और सत्तरह वर्षों के बाद बेटे का अपनी कहानी को सुन पितृ–भक्ति, धर्म और वतन के प्यार का उमड़ना, सुख और अमीरी से मुंह मोड़कर अपने लोगों से जंगल–पहाड़ों का जीवन व्यतीत करने के लिए चल पड़ना, उसके उच्च जीवन का आश्चर्यजनक उदाहरण था, जिसने सतवंत के दिल पर उसके गुणों तथा पंथ की सत्यता का काफी गहरा असर हुआ। इस तरह से विस्मित और चिन्तनशील अवस्था में उसे न जाने कब नींद आ गयी।

: २० :

शाहजादा तैमूर काबुल पहुंच चुका था। अब्दाली मराठों के पंजाब में आने की बात सुनकर भड़क उठा। अब नया हमला करने की तैयारियों और उसके प्रबन्ध के बारे में सोचने लगा। तैमूर गुप्तचर छोड़ आया था जो पंजाब की खबर भेज रहे थे। जब काफिला जलालाबाद से चलकर चोर गली पहुंचा, तब आगा खां को कुछ अफरीदी आदमी मिले जो पंजाब के ताजा समाचार अब्दाली के पास ले जा रहे थे। असरो आगा खां को पता चला कि अटक तक मराठे पहुंच गये हैं, और इस ओर की सीमा पर मोर्चा लगाकर बैठे हैं। परन्तु सारे देश में सिखों का सिक्का जम गया है और उनकी सेनाएं घूम रही हैं और अपने इलाकों पर कब्जा करके प्रबन्ध कर रही हैं। मराठे उनका दमन करने में असफल रहे थे। ये बातें सुनकर आगा खां का दिल खुशी से उछलने लगा। वह उस समय अपने देश पहुंच रहा था जब उसके लिए सेवा करने का उचित अवसर था। वह जानता था कि अब्दाली फिर से आक्रमण करने की तैयारियां कर रहा है। अब आमने–सामने टक्कर होगी और देश सेवा में प्राण अर्पित करने का अवसर मिलेगा।

हसन खां के गुप्तचर जो अब तक साथ ही चल रहे थे इन अफ्रीदियों के साथ वापस लौट गये। उन्हें विश्वास हो गया था कि आगा खां की धाय मां काफिले में नहीं है। उन्होंने अपनी खोज में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। जसवंत का डेरा भी उनकी तेज नजर के सामने से कई बार निकला, परन्तु वेश बदले हुए होने के कारण कुछ भी पता नहीं चला। अब उनके वापस लौट जाने से आगा खां के सिर से यह विपदा भी टल गयी और आपस में मिलने–जुलने पर जो रोक थी, दूर हो गयी। जब भट्टी कोट के पास आकर डेरा लगाया गया तो एक रात सांई ने आगा खां को बताया कि जसवंत के आगे सब बात खुल गयी है। वह भी पंजाब से कैदी के रूप में आया था। अभी मैंने उसके दुखी जीवन की कहानी नहीं सुनी। उसने भी बड़ी बहादुरी से कैद से छुटकारा पाया है और वृद्ध पुरूष के परिवार के साथ वापस जा रहा है। आप की कृपा का उसके हृदय

पर गहरा प्रभाव है। जब उसे पता लगा कि आप भी सिख हैं और शत्रुजीत सिंह के सुपुत्र हैं तो उसको बहुत प्रसन्नता हुई है। मुझे उससे पता चला है कि आप की बहिन जीवित है। आपके वियोग में हृदय विदारक गीत गाती है। आपके बारे में बेशक उन सिख गुप्तचरों को खबर नहीं मिली जो वेश बदलकर अपने कैदियों को छुड़ाने अफगानिस्तान आते रहे हैं। परन्तु अभी तक आपके लिए और आपकी माताजी के लिए जत्थों में अरदास होती है। सिखों में आपके लिए इतना गहरा प्रेम है कि उन्होंने अभी तक आपको मृत नहीं समझा है और प्रत्येक सिख गुप्तचार इधर आता है आप की और आपकी माताजी की खोज करता है। जसवंत सिंह ने मुझे बताया है कि एक गुरमुख जो कुछ समय पहले ही आये थे जिन्होंने बहुत से सिख कैदियों को खोजा और अनेक विधियों से निकाला वे भी आस कौर, उसकी सहेली और पुत्र की खोज कर रहे थे। उन्होंने जसवंत सिंह को बताया था कि उनका विश्वास है कि उस परिवार का कुछ हिस्सा कहीं न कहीं जरूर जीवित है और वे अपनी खोज से निराश नहीं थे। जब आपने जसवंत सिंह से प्रश्न पूछे थे और अपने परिवार के नाम बताये थे, तभी उसे सन्देह हो गया था और मेरे आने के बाद तो उसे विश्वास ही हो गया है। जो थोड़ा बहुत संशय था, वह मेरी बातों से दूर हो गया। अब वह बहुत ही प्रसन्न है। जब पंथ में उसके साथ आप के वापस पहुंचने की खबर पता चलेगी तब पंथ को बहुत ही खुशी होगी। उसके पिता जी उसे इस सेवा के लिए शाबाशी देंगे।

आगा–अम्मा ! मुझे समझ नहीं आ रही कि जिस कौम में मेरा जन्म हुआ है, वह किस मिट्टी की बनी हुई है। आपस में इतना प्यार रखते हैं कि सत्तरह–अठरह वर्ष बीत जाने पर भी एक स्त्री और एक बच्चे के लिए और उसकी सहेली के लिए अरदास करते हैं। उनकी खोज के लिए आदमी भेजते हैं और कुछ भी खबर न मिलने पर निराश नहीं होते। काश मैं, कैद न होता, अपने घर में पलता। काश मैं सिख अन्न खाकर पलता ! मैं इस समय अपने वृद्ध पिता की बुढ़ापे की लाठी होता और पंथ की सेवा के लिए तलवार तानकर, सिर हथेली पर रखकर सेवा करता। अफसोस है कि मेरे यौवन का पहला हिस्सा छली वैरियों को अपना समझकर और अपनों को वैरी

समझने की भूल में बीत गया। परन्तु ईश्वर की जो इच्छा। जो हुआ सो हुआ, अब भगवान सहायता करें, मैं सारी कसर पूरी कर दूंगा।

सांई– भगवान सकुशल हमें घर पहुंचायें। जिस कौम के आप नौनिहाल हैं, वह आपस में इस तरह गुथी हुई है कि प्रतिदिन प्रत्येक सिंह अपने भाइयों के लिए इस तरह दुआ मांगता है।

'जहां–जहां खलसा जी साहिब,
तहां–तहां रक्षा रिआइत।'

साथ ही अपनी अरदास में प्रतिदिन सरबत्त (सर्वस्व) का भला मांगते हैं। किसी का बुरा नहीं चाहते। उन लोगों के लिए जिनसे वे परिचित नहीं, जो युद्ध भूमि में लड़ रहे हैं, परदेश में हैं, कैद में हैं, या कत्ल हो रहे हैं, अरदास करते हैं। वैसे वे उन सबके लिए जो कठिनाइयों में हैं तन–मन से कोशिश करते हैं, और प्रत्येक भाई के लिए प्रार्थना करते हैं कि गुरू उनकी रक्षा करें और उनके कष्टों को दूर करें। सिख के मर जाने, कत्ल हो जाने को भी वे रक्षा रियायत ही समझते हैं क्योंकि वह धर्म में दृढ़ होता है और उसका ईश्वर से प्यार अटल होता है। यदि सिख धर्म में दृढ़ होता है और उसका ईश्वर से प्यार अटल होता है। यदि सिख धर्म छोड़ दे या कायर हो जाये तो उसे बुरा समझते हैं। अरदास इसलिए की जाती है कि कठिनाइयों में फंसे सिखों को ईश्वर कष्ट सहने की शक्ति दे और वे अपने धर्म–पालन में दृढ़ रहें। मैं तो जसवंत जी से अब पंजाब की बातें रोज सुनती हूं जबकि सत्तरह वर्ष बीत गये हैं, परन्तु मेरे संस्कार वही हैं। आप भी उनसे किसी समय बातें करो तो आनन्द आ जायेगा।

यह बात अभी मुंह में ही थी कि जसवंत जी आ गये। वे एकान्त स्थान में बैठे और बातें चल पड़ी।

आगा खां– आओ, अपने सम्बन्धी जी।

जसवंत– भगवान का धन्यवाद कि हम एक ही कौम के हैं वाहिगुरू धन्य हैं जो हमें इतना प्यार करते हैं और अपने भक्तों की लाज रखते हैं।

आगा– मैं तो कोयल होकर भी सत्तरह बरस कागों के बीच में रहा हूं। मैं अपने कुल की महिमा क्या जानूं? परन्तु यह जानते हो कि मैं

कोयल वंश में से हूं, मेरी रग–रग में जोश उछल रहा है। मुझे रोककर मां ने जुल्म किया है नहीं तो मैं अपनी माता के कातिल का सिर अपने पिता के चरणों में रखता। और उनसे शाबाशी लेता। किन्तु क्या करूं? मां मुझसे अधिक सयानी हैं। मैं तो उन्हीं की सलाह पर चलता हूं जसवंत सिंह जी, आप ही बताइए क्या मेरे पिताजी नहीं कहेंगे कि तू कैसा निर्लज्ज है जो मां के खून का बदला लेकर नहीं आया।

जसवंत सिंह– आप चिंता न करें शत्रुजीत सिंह जी ऐसा नहीं कहेंगे। सिखों को व्यर्थ खून बहाने का शौक नहीं है। जब सिंह देखते हैं कि निर्दोषों पर अत्याचार हो रहे हैं, तभी तलवार उठाते हैं। वैसे वे फकीर हैं, वीर रस के फकीर। सिख अत्याचारी के अत्याचार को पहले उपदेश से रोकते हैं, जब देखते हैं कि प्रेम, मित्रता, उपदेश आदि से अत्याचारी नहीं मानता, तब जैसे हीरे को हीरा काटता है, दीन–दुखियों की रक्षा के लिए वे तलवार उठाकर ललकारते हैं। जब अत्याचारी को समझा–बुझाकर रोकते हैं और वह उत्तर में तलवार उठाता हे, तो अपनी रक्षा के लिए वे वार को रोकते हैं। वार रोकने में जोर लगता है। परन्तु रक्षा वार रोकने में ही है। यदि वार को न रोकें तो कत्ल हो जायेंगे और यदि उस शत्रु के वार को रोकें तो मुकाबला होगा। वह तो वार पर वार करेगा परन्तु जब बार–बार उसका वार रोकने पर भी न टले तो उस पर वार करना ही पड़ेगा। बस तभी युद्ध छिड़ जाता है। सिख ऐसे योद्धा हैं। युद्ध में उन्हें किसी पदार्थ की लालसा नहीं होती। वे तो दूसरों का भला और प्रेम चाहते हैं। अपने गुलाम देश को आजाद देखना चाहते हैं। इसीलिए उनमें उत्साह, दया और सच्ची वीरता है। यदि अन्दर खोट हो, द्वेष, ईर्ष्या, जलन हो तो बुरे काम करें। प्रेम करने से तात्पर्य केवल दूसरे को खुश रखना ही नहीं है। शराबी को शराब पिलाने से वह खुश होगा परन्तु यह उसके प्रति प्यार नहीं शत्रुता है। किसी बच्चे को जब हम कुसंगति से रोकते हैं तो उसे दुख होता है, परन्तु यह प्यार है और मां बाप बच्चे के भले के लिए ऐसा करते हैं। इसी तरह लोभ तरंग में जो लोग मूर्खता कर बैठते हैं, सिख उन्हें प्यार से समझाते हैं, उपदेश देते हैं। जब देखते हैं कि मूर्ख समझ नहीं रहा और तबाही

पर आ गया है और हमला करने पर उतारू हो गया है तो उसे तलवार के बल से रोकते हैं। जैसे मस्त हाथी को तबाही करने से अंकुश के द्वारा रोक लिया जाता है, वैसे ही तलवार से सिख अत्याचारियों को रोक लेते हैं। सिखों के मन में उनके लिए वैर—भाव नहीं है बल्कि प्यार है। इसीलिए वे शत्रुओं की तरह मारते, लूटते और कत्ल—ए—आम (नरसंहार) नहीं करते। वे निर्भय और वीर योद्धा हैं जिन्हें कोई जीत नहीं सकता। बाबा बंदा के बाद अब तक कई बार नर—संहार हो चुका है, हजारों की गिनती में, बेरहमी और वहशियाना ढंग से अनगिनत सिख कत्ल हो चुके हैं, फिर भी वे न डरते हैं, न कम होते हैं, न ही पीछे हटते हैं बल्कि और अधिक वीरता से लड़ते हैं। मीर मन्नू द्वारा किये गये नर संहार बहुत भयानक थे, परन्तु सिखों में उस समय क्या कहा जाता था:

"मंनू साडी दातरी असी मंनू दे सोये
जिऊं जिऊं सोये बडीए दून सवाए होए।"

मन्नू हमारी हसिया है और हम मन्नू की फसल हैं। वह हमें जितना काटता है हम और बढ़ते हैं।

आपकी माता का दिल कितना श्रेष्ठ था कि उसने अपने कातिल को भी क्षमा कर दिया। वह अपने दिल को वैर की आग से साफ करके, क्षमा, परस्पर प्रेम और ईश्वर से प्रेम की उच्च श्रेणी में इस संसार से विदा हुई है। और उसकी वीरता देखो, जान दे दी, परन्तु धर्म नहीं छोड़ा। फिर पंथ की सेवा के लिए अपने वीर गुणों से आपको शूरवीर बना दिया।

आगा— मैं इन उच्च विचारों को बड़ी कठिनाई से समझ पा रहा हूं। मेरा बदले के लिए जी तड़फ रहा है।

जसवंत—यह तो सत्तरह वर्ष की शिक्षा और उनके आदर्शों का फल है।

आगा— बदला लेना और साथ निभाना यह दो बातें ही तो मैंने यहां सीखीं हैं।

जसवंत— (हंस कर) साथ निभाना तो बहुत अच्छी बात है। इनमें यह गुण कौमी—प्यार के कारण हैं। हिन्दियों में स्वार्थ का भाव अधिक

है, इसीलिए उनमें यह गुण नहीं रहा। इसीलिए सदा हानि सहते हैं। सिखों में साथ देने का भाव बहुत है, क्योंकि वे प्यार करते हैं, उनमें वैर भाव तो है ही नहीं। इसीलिए नीच प्रकृति के वशीभूत होकर नीच कर्मों में नहीं पड़ते।

आगा– सत्तरह वर्ष बीत गये फिर भी मेरी खोज कौम ने नहीं छोड़ी। यह प्यार और इश्क से भी परे की चीज हैं हां, परन्तु क्या सिख मुझे पंथ में शामिल कर लेंगे?

जसवंत– बड़ी खुशी से।

आगा– मुझसे सम्बन्ध रखेंगे?

जसवंत– क्यों नहीं। इतने लम्बे समय के बाद मिलने पर जो खुशी पंथ को होगी वह देखना तभी आपको पता लगेगा। जब उन्होंने सुना कि अपने जन्म के बारे में जानते ही आपने एक पल भी नहीं सोचा और राजपाट के लालच ने आपको नहीं घेरा और आप तत्काल बदल गये तो 'धन कलगी वाले' के जयकारे लगायेंगे। हां, यह बात तो सारे पंथ के लिए एक उदाहरण होगी कि सिख का खून बड़ा पवित्र है और कोई भी प्रभाव उसे उसके स्रोत से अलग नहीं कर सकती।

आगा– सिख कितने हैं?

जसवंत– सिख तो थोड़े ही हैं किन्तु हैं एक जान। इसीलिए बहुत बली हैं। एक–एक सिख कई बार अनेक लोगों पर भारी होता है। देश की हालत बहुत ही खराब है–इधर कोई न कोई आक्रमणकारी आता रहता है और देश को तबाह कर जाता है। अब्दाली के हाथ से तो पंजाब वीरान हो गया है। पंजाब के गांव–गांव में एक कहावत मशहूर है–'खाधा पीता लाहे दा बाकी अहमद शाहे दा' जो हम खा पी लेंगे वही हमारा है शेष तो अहमद शाह का ही है।

शायद आपको पता नहीं कि नादिर बादशाह की सिखों से सम्बन्धित राय कुछ और थी तथा अहमद शाह की कुछ ओर थीं

आगा– वह क्या थी?

जसवंत–काबुल में ही मुझे भाई साहिब ने बताया था कि लाहौर में नादिर ने जब सिखों के बारे में सुना,[1] तब खान बहादुर को समझाया था कि ये लोग एक दिन देश पर से आपका राज्य समाप्त कर देंगे। यदि राज्य को बनाये रखना चाहते हो तो इनकी शक्ति को मत बढ़ने दो, और इनको सम्भालो।

खैर, नादिर तो चला गया था और उधर खान बहादुर को पहले ही मालूम था कि सिखों को काबू में रखने के लिए उसने उन पर जो अत्याचार किये हैं, वह उसकी भूल थी। खान बहादुर ने दिल्ली के बादशाह की आज्ञा लेकर चूणीयां आदि क्षेत्र की एक एक लाख रूपये की जागीर सिखों को देनी चाही जिसमें वे राज काज में व्यस्त हो जाएं। इस खिलियत खिताब और जागीर पट्टा लेकर जो वकील खान बहादुर की तरफ से सिखों के पास गया वह भी एक सिख था (सुभाग सिंह) पंथ ने गुरमता (विचार विमर्ष) कर निर्णय इिया और सभी ने इन नवाबों को स्वीकार करने से इनकार कर दिया,और कहा कि परमात्मा हमें राज्य देगा, अधिकार हम अपने बाहुबल से करेंगे।

इस पर सिख वकील ने बहुत समझाया तब जब जत्थेदार ने कहा किसी सेवक को दे दो। उस समय पंखा कर रहे–कपूर सिंह के पैरों में खिलयत फेंक कर उन्होंने कहा–ले भई। नवाबी सम्भाल। कपूर सिंह ने कहा–मुझे नवाबी की आवश्यकता नहीं। परन्तु जत्थेदार की आज्ञा मानकर इसे स्वीकार करता हूं और निवेदन है कि पंखा करने की सेवा वृत्ति मेरी ज्यों की त्यों बनी रहे।[2]

आगा खां–शाबाश कपूर सिंह। शाबाश! यह सिखी तो बहुत अच्छी है।

---

1. नादिर शाह ने खान बहादुर से सिखों का ठिकाना पूछा खान बहादुर गुफत खानाएं उशां खानां जी ने अस्य, । बादशाह बखंदीद व गुफत अज एशां पुर हजर बाइद बूद व नजदीक अस्प कि मुफसदह सर खाहद कशीद व ई मुल्क खाहंद गरित। अर्थात खान बहादुर ने कहा कि इनका घर घोड़े की जीन पर है। बादशाह हंसा और बोला इनसे डरो, यह फसाद जल्दी बढ़ जायेगा और ये (सिख) देश पर अधिकार कर लेंगे। (उमद)
2. रतन सिंह भंगू।

जसवंत– इसके बाद सिख शांति पूर्वक रहने लग गये; किन्तु जब कुछ समय शांति पूर्वक बीत गया तो जागीर छीन ली गयी।[1] कुछ समय बाद खान बहादुर की मृत्यु हो गयी। उसके बाद की बात है कि जालन्धर–दुआब के मालिक ने एक तजवीज भेजी कि खालसा जी ! आप होशियार पुर के जिले में आबाद हो जाओ। राज्य करो, नवाबी ले लो और टिक कर रहो। खालसा ने गुरमत्ता कर निर्णय लिया कि उनकी चाल को वे एक बार देख चुके हैं, इसलिए अब स्वीकार नहीं करेंगे। हम अपने सुख और आनन्द के लिए सिख नहीं बने हैं जो रिश्वत लेकर अत्याचार होते हुए देखते रहें। हमने तो देश के दुखों को दूर करना है। यदि देश के दुखों को दूर करो तो हम बातचीत करने के लिए तैयार हैं। सिखों के दूत ने यही समाचार हाकिम को सुना दिया कि वे देश की आजादी, खुशी और खुशहाली मांगते हैं, अपने लिए ऐश्वर्य नहीं चाहते। यह सुनकर नवाब को क्रोध आ गया। और यह देखकर कि इस बहाने सिख इकट्ठा हुए हैं उसने सोचा इनको भून दो जिससे ढूंढने पर भी कहीं सिख न मिलें। उसने सेना तैयार की और सिखों पर आक्रमण कर दिया। जब दोनों दल आमने–सामने आ गये तो सिखों ने सन्देश भेजा कि इतना खून खराबा करने से क्या लाभ है। ऐसे ही बेगुनाहों को क्यों मारते हो मजा तब आये जब तुम और हमारा सरदार अकेले–अकेले मैदान में आओ और युद्ध करो। इसी हार जीत पर फैसला हो जायेगा। ऐसे ही सेना को मारने से क्या लाभ। हाकिम को अपनी वीरता और बहादुरी पर गर्व था उसने यह बात मान ली और सेना को आदेश दिया कि जिस समय मैं सिख सरदार को चित कर दूं अचानक सिख सेना पर टूट पड़ना और सभी को कत्ल कर देना।

उधर खालसा ने युद्ध के लिए कपूर सिंह को भेजा। सिंह साहिब संजोय और खीद[2] से सज्जित हो घोड़े पर सवार होकर सूरज

---

1. यह जागीर और नवाबी खान बहादुर ने छीन ली और वचन का पालन नहीं किया। बाद में मीर मंनू से महाराजा कौड़ामल ने यह जागीर फिर चालू करवा दी थी। 2. सिखों के संजोय और खीद के नमूने जो छोटी पगड़ी के ऊपर पहने जाते हैं और जूड़े के लिए उनमें अलग से स्थान होता है। पटियाले के शस्त्र सँग्रहालय से देखे जा सकते हैं।

निकलते ही आमने–सामने आ जुटे वार पर वार होने लगे। वीर नाजम काबू नहीं आ रहा था और न ही कपूर सिंह उसकी पकड़ में आ रहे थे। दोनों कई बार घोड़ों की एड़ी लगाकर एक दूसरे पर लपके। कई बार लोह–कवच से टकरा कर शस्त्र टूट गये। सिख सदा जंगलों में रहे और अनेक कष्टों को सहते रहे। इसलिए कपूर सिंह में धैर्य और साहस था, इधर गोश्त और मक्खन पर पला हाकिम वीर योद्धा था। सन्ध्या तक घमासान युद्ध होता रहा। कभी लगता कि हाकिम की विजय होगी तो कभी लगता कपूर सिंह जीतेंगे।

कपूर सिंह जी समझ गये थे कि उसे जीतना सहज नहीं है। इसलिए उन्होंने एक और दाव चलां वे खुद तो भूख–प्यास सह सकते थे परन्तु उनका विचार था कि नवाब इन कठिनाइयों को सह नहीं सकता था इसलिए वे अनेक प्रकार के दाव और आक्रमणों के द्वारा समय बिताने लगे। अब सन्ध्या के समय उन्होंने तलवार म्यान में रख ली और घोड़े को एक चक्कर लगाकर इस तरह से दौड़ाया कि नवाब के घोड़े से टकराकर आगे बढ़े। नवाब के पास आकर उसकी बांह पकड़कर नीचे खींच लिया। वह घोड़े से गिर पड़ा। वे स्वयं भी नीचे उतर आये। दोनों घोड़े दौड़ गये। दोनों में मल्ल युद्ध होने लगा। इस कुश्ती में नवाब की सांस फूलने लगी तब कपूर ने ललकार कर पंथ को आवाज दी–"खालसा जी ! दुम्बे की सांस फूल गई है इसे अब लिया कि तब लिया ही जानें।"

दो–चार दाव के बाद ही कपूर सिंह ने नवाब को चारों खाने चित गिरा दिया और उसकी छाती पर चढ़ कर बैठ गये। इसी समय नवाब का हाथ बगल की कटार पर पहुंचा किन्तु इससे पहले कि वह कुछ कर पाता कपूर सिंह ने उसका क्वच हटाकर उसकी गर्दन पर वार किया। इसके बाद कपूर सिंह उछलकर खड़े हो गये। छाती

इसी तरह की एक घटना लाहौर में खुडियां गांव में सिखों और गिलजियों के बीच हुई थी जब दुर्रानी अहमद शाह पंजाब में आया था। जब भाई सुखा सिंह रामगड़िया ने गिलजे सरदार को युद्ध में मारा था और गिलजियों पर विजय प्राप्त की थी और भी तेरह चौदह सिखों और गिलजियों के बीच अकेले–अकेले युद्ध हुआ था जिसमें कि विजय सिखों ने प्राप्त की। (पंथ प्रकाश रतन सिंह)

ठोक कर आकाश की ओर देखा। खालसा जी खुशी में आगे बढ़े और विजेता कपूर सिंह को उठाकर जय–जयकार करने लगे। इसी समय धावा बोल दिया गया और जालन्धर पर कब्जा कर लिया गया। उसी सन्ध्या बहुत बड़ा दीवान हुआ। कपूर सिंह को नवाब की उपाधि से सुशोभित किया गया और बड़े–बड़े सिंहों को सरदारी की उपाधि प्रदान की गयी। यह पहला दिन था कि सिखों ने सरदारों की पदवी को प्राप्त किया।

आगा– तब तो दुआब में हमारा राज्य है।

जसवंत– नहीं, ऐसा नहीं है। कुछ समय के बाद सिखों ने हुजराशाह मुकीम के पास शाही सेना को पराजित किया। परन्तु फिर खान बहादुर विशाल सेना लेकर आ गया। सिख जत्थे दूर–दूर बिखर गये। क्योंकि इतनी बड़ी सेना का सामना करने के लिए हमारे पास अस्त्र–शस्त्रों का अभाव था। यह समय सिखों के लिए बहुत कठिन था। भाई मणि सिंह, भाई तारा सिंह, भाई सुभाष सिंह तथा अन्य अनेक सिख शहीद हो गये और गांव–गांव में नर संहार हुआ इसके बाद कई बार सिखों ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया, कई बार पीछे भी हटे परन्तु नवाबी और सरदारी की उपाधियां सिखों में अब भी कायम हैं। वैसे वे भूख–प्यास सहकर जंगलों में पड़े हुए हैं किन्तु जगह–जगह विजय और सफलताएं भी उन्हें मिलती रहती हैं।

आगा– मैं तो नादिर के आक्रमण के ही भ्रम में पड़ा हुआ हूं। नादिर ने ही वास्तव में हिन्दुस्तान को नष्ट कर दिया, नहीं तो काबुल तो दिल्ली के सिंहासन के अधीन रहा करता था।

जसवंत– ठीक है, परन्तु मैंने जो बात सुनायी है वह नादिर के हमले के पहले की है, जब लाहौर की ओर से सिखों को नवाबी मिली थी और उन्होंने स्वीकार नहीं की थी।

नादिर ने देश को कैसे वीरान कर दिया था वह इन काव्य पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है जो पंजाब में बच्चे–बच्चे की जबान पर है–

आया नादिर, कुल्ल कुडे। कपाही पैंदे फुल कुडे।
रंनां चढ़ पहाड़ी गयीआं, मरदां मल्ली चुल्ल कुडे।

मुड़िआ नादिर रूल कुडे। सरहों सड़ेंदे फुल कुडे।
दिल्ली रंड़ी करके आया, साडी ठंडी चुल्ह कुडे।[1]

ऐ बालिके ! नादिर चढ़ आया है। कपास में जैसे ही फूल उग आये हैं। स्त्रियां तो पहाड़ों में जा छुपी हैं। पुरूषों ने ही स्वयं चूल्हे जलाये हैं। नादिर लूट कर लौटा हे, सरसों के फूल सड़ गये हैं। वह दिल्ली को विधवा बना आया है और हमारी रसोई को ठंडा कर गया है।

आगा– इसका क्या अर्थ है?

जसवंत ने उसे इसका अर्थ समझाया तथा देश की दशा, विशेष रूप से दिल्ली के नर–संहार के बारे में बताया, जिसे सुनकर आगा खां के रोम खड़े हो गये और क्रोध से उसकी भुजाएं फड़क उठीं। जब जसवंत ने उसके चेहरे के भाव को देखा तो उसने सिखों के एक अन्य करानामें की ओर उसके ध्यान को मोड़ा जिससे उसे कुछ शांति मिले और वह जाने कि सिख भी बहुत महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं।

जसवंत सिंह– यहां काबुल में आये गुरमुख जी ने मुझे बताया था कि अहमद शाह ने भी सिखों के ही नर–संहार पर ही कमर कस रखी है अतः उसने अपने एक आक्रमण के बाद प्रत्येक दुआब में एक तुम्मण (सेना की एक टुकड़ी) छोड़ आया है। तुम्मण में सिपाहियों का एक बड़ा दस्ता होता है। इसके अधिकारी का नाम

---

1. यह टप्पा नादिर के हमले का इतिहास है। आश्विन की ऋतु थी जब कपास को फूल आते हैं। नादिर के आने की सूचना मिलते ही लोगों ने अपने कुटुम्ब सम्पत्ति सहित पहाड़ों पर भेज दिये।

जब नादिर दिल्ली से लाल जवाहर रूपये मोहर आदि लूटकर उसे वीरान करके लौटा था शरद ऋतु का अन्त आ चुका था जब कि पंजाब में सरसों फूलती है सरसों की फसल को काटने वालों के न होने से उसके फूल सड़ गये और अन्न और जल के अभाव में चूल्हे ठंडे पड़ गये। नादिर बरसात की ऋतु के आसपास अटक पर पहुंचा था। (तवारीख खालसा।)

तुम्मणदार[1] होता है। यह दस्ता दुआब में दौरा करता रहता है। जिस गांव जाता है लगान वसूल करता है फिर सिखों को ढूंढ़ा जाता है। जो भी सिख मिल जाते हैं मार दिये जाते हैं। परिवार में यदि कोई सिख हो तो पूरे परिवार को नष्ट कर दिया जाता है। गांव वाले किसी न किसी तरह सिखों के पास खबर पहुंचाते हैं कि आत्म–समर्पण कर अपने परिवार को बचाओ नहीं तो सारा परिवार मार दिया जायेगा। यदि सिख हाथ नहीं आता तो निर्दोष परिवार को ही पीड़ित किया जाता है।

रचनां दुआब में सदरहमत नाम का तुम्मणदार था। दौरा करता हुआ वह दुआब के बुलाकी चक की ओर आया। बुलाकी शाह, गुराएं गोत्र का एक प्रसिद्ध और दबदबे वाला चौधरी था। उसके कई गांव अपने हैं। बड़े गांव का नाम बुलाकी चक हे। इस गांव में जब तुम्मणदार सारा लगान वसूल कर चुका तो सिखों के बारे में पूछ पड़ताल हुई। पता चला कि गांव में तो कोई सिख नहीं है परन्तु बुलाकी शाह के दो लड़के सिख बन गये हैं जिनका नाम सुखासिंह और मनसा सिंह है।[2] तुम्मणदार ने चौधरी से पूछा। उसने कहा–जनाब ! जो पुत्र सिख बन गये, उन्हें मरा समझो। परन्तु तुम्मणदार ने उसके पूरे परिवार को बांध लिया। साथ ही सारे गांव को घेरकर आदेश दिया कि या तो आठ दिनों में सुखा सिंह और मनसा सिंह समर्पण करें, या कोई आदमी गांव का उनको पकड़कर लाये, नहीं तो सारा गांव जलाकर राख कर दिया जायेगा।

सो सिखों का यह हाल था कि दिन में सब छिपे रहते थे। रात को रहिरास के समय किसी निश्चित जगह पर दो–दो चार कोस की

---

1. मीर मुअघ्यनुद्दीन मँनू ने अब्दाली को लगान नहीं दिया था इसीलिए 1810 वि॰ में अब्दाली ने फिर आक्रमण किया। मीर मँनू को पराजित किया। किन्तु फिर लगान लेकर नवाबी प्रदान कर दी। मँनू ने शिकायत की कि सिख शांति नहीं रहने देते, लोगों से लगान वसूल करने में कठिनाई होती है, इसलिए समय पर मैं आपको पैसा नहीं भेज सका। इसीलिए अहमदशाह तुम्मणदार बनाकर छोड़ गया था कि दौरा करके लगान वसूल करते रहें। (तवारीख खालसा)
2. परम्परा के अनुसार उनके नाम जस्सा सिंह और मन्सा सिंह हैं।

दूरी पर इकट्ठा होकर दीवान करते और सोदर रहिरास का भोग डालकर अगले दिन की योजना बनाते थे। दिन में यदि कोई भी सिख दिखाई दे जाता तो पकडा जाता था। पकड़ने वाले को पुरस्कार भी मिलता था।

एक घना जंगल गुरू[1] की रोड़ के निकट ही है। यह जगह अमृतसर से लगभग नौ कोस की दूरी पर है। यहीं सिखों का एक गुरूद्वारा भी है जो जंगल में होने से किले के समान है। मनसा सिंह और सुखा सिंह इसी जंगल में थे। बुलाकी शाह ने किसी विश्वस्थ के हाथ अपने बेटों के पास चिट्ठी पहुंचवायी जिसमें लिखा कि तुम्हारे सिख बन जाने से हमारी तो किस्मत फूट गयी। जब समस्त परिवार और गांव पर आ बनी है। अच्छा है कि तुम दोनों मर जाओ और सारा गांव बच जाए। तुम दयावान गुरू के शिष्य हो। दया करो और हजारों निर्दोषों के प्राण बचाने के लिए अपने प्राण न्यौछावर करके सच्ची शहीदी प्राप्त करो। मुझे तुम्हारे मरने का दुःख है परन्तु पूरे गांव की रक्षा के लिए मैं इसकी चिन्ता नहीं करूंगा। आओ और अपने आपको तुम्मणदार को सौंप दो।

जब यह पत्र उन्हें मिला तो सन्ध्या को गुरू की रोड़ में एक दीवान का आयोजन किया गया। रहिरास के बाद वह चिट्ठी पढ़ी गयी। यह निर्णय हुआ कि कायरों की तरह मरना और आत्मसर्पण करना तो बहुत बुरा है। तुम्मणदार को निर्दोष प्रजा पर अत्याचार करने दिया जाये यह भी पाप है। हमें रातों रात कूच करना होगा और पौ फटते ही तुम्मणदार से युद्ध करना होगा। पूरा जोर लगाने पर लगभग डेढ़ सौ सिख रात ही रात में इकट्ठे हुए। कूच करके तड़के ही सिख दरिया के किनारे पहुंच गये। दरिया के पार तुम्मणदार का डेरा था। कार्तिक–माघ की ऋतु थी। आसमान में बादल छाये हुए थे और बूंदा–बांदी हो रही थी। यह सलाह की गयी कि दो सिख तैर कर पार जाएं और शत्रु की स्थिति का पता लेकर आयें। पूरी जानकारी मिल जाने पर फिर रात में नदी पार की आये और दिन होते ही युद्ध किया जाये। सुखा सिंह और मनसा सिंह ने इस काम की जिम्मेदारी ली। वे तैर कर नदी पार कर गये। उस समय चारों तरफ धुंध फैली थी।

1. गुरू का बाग

प्रकृति ने उनका साथ दियां वे तैर कर पहुंचे, सिर से कपड़े उतार कर पहने और शस्त्र धारण किये तथा वेश बदलकर आगे बढ़े तो सदरहमत खां के डेरे के पिछली ओर पहुंच गये। उस समय सदरहमत खां पानी का लोटा हाथ में लिए जंगल–पानी के लिए जा रहा था। धुंध में अचानक दो अपरिचित चेहरे देखकर उसने पूछा–कौन है? वे उसे देखते ही समझ गये कि यही प्रजाद्रोही है। कहने लगे–हम बुलाकी शाह के बेटे हैं और गांव मुक्त कराने आये हैं। यह सुनकर वह प्रसन्न हो उठा। उसने सोचा–डर कर स्वयं ही आ गये हैं। अब उन्होंने पूछा–परन्तु आप कौन हैं? तुम्मणदार ने अकड़कर कहा–मैं सदरहतम खां तुम्मणदार हूं। यह सुनकर उन सिखों को तसल्ली हो गयी। पूछने लगे–भले मानुष ! सिख तो हम बने और तुमने सारे गांव को बन्दी बना लिया, यह कौन सा इन्साफ है।

सदरहमत खां– बस इन्साफ की खूबी देखो कि तुम खुद ही शरण में चले आये हो।

सिख– हम शरण में नहीं आये बल्कि मरने–मारने आये हैं।

सदरहमत खां यह सुनते ही कांप उठा। उसने साथियों को बुलाने के लिए ज़ोर से आवाज दी। परन्तु आवाज कहां पहुंचनी थी? मनसा सिंह ने कहा–लो आपका आखिरी समय आ गया है, अपने गुनाहों का फल भोगो। कत्लों के बदले अब कत्ल हो जाओ। यह कहते ही सिख ने अपनी तलवार सदरहमत खां के हाथ में दे दी। और दूसरी तलवार को तान कर कहा–आओ दो–दो हाथ कर लो। सदरहमत खां इस अचानक युद्ध के लिए तैयार नहीं था, परन्तु क्या करता, योद्धा था, तलवार लेकर आगे बढ़ा। दो हाथ किये, परन्तु फुर्तीले सिख के आगे पेश नहीं गयी। दो–चार वार में ही मारा गया। उसके कुछ आदमी जो अब पहुंच गये थे, सरदार को कत्ल हो गया देखकर चकरा गये और भागने लगे। धुंध के कराण उन्हें यह भी पता नहीं चला कि सिख तो केवल दो ही हैं। बस यही शोर मच गया–सिख आ गये, सिख आ गये। तुम्मणदार का कत्ल और सिखों के अचानक हमले की हैरानी में सभी गिलजे और पंजाबी सिपाही भाग गये। यह तमाशा होते देख वे दोनों सिख वापस लौट गये। नदी

के पार खालसा जी प्रतीक्षा कर रहे थे, पार पहुंचकर मिली विजय की खबर सुना दी। खबर सुनते ही सरा दल नदी पार करके आ गया। जय–जयकार करते सभी बुलाकी चक में घुस आये। दीवान हुआ। दीवान में यह निर्णय लिया गया कि सुखा सिंह और मनसा सिंह को इस क्षेत्र का सरदार नियुक्त किया जाये। वे वहां सेना को इकट्ठा करें और उनके छिपने तथा रक्षा के लिए स्थान बनायें। उन्हें राजतिलक देकर कुछ सिंह तो वहीं रहे, बाकी सभी चले गये। अभी छः सात महीने ही बीते थे जेठ के दिन थे, सन्ध्या का समय था। लोग छतों पर बैठकर खाना खा रहे थे तभी आवाज आयी कि गिलजे बदला लेने आये हैं। बुलाकी चक में अब भय नहीं रहा था। सिखी वीरता अब सभी में थी। प्रत्येक स्त्री–पुरूष में साहस था। लगभग सभी सिख हो गये थे। कुछ सरदारों के पास तो अच्छी गिनती में सिख रहते थे। बात क्या? उस समय प्रत्येक व्यक्ति लड़ने–मरने को तैयार हो गया। जो शस्त्र जिसके हाथ में आया उसे ही कंधे पर रख लिया। औरतें भी तलवारें, कुदाल, फावड़े, दरातियां आदि लेकर पीछे चल दीं। गिलजे दिन के थके हुए दो कोस दूर ही ठहर गये थे। गर्मी के दिन थे। वे तो सोच भी नहीं सकते थे कि उनसे टक्कर लेने यहां भी होई पहुंच जायेगा। उन्होंने तो अगले दिन बुलाकी चक पर हमला करना था। उन्होंने रात को आराम करने के लिए डेरा लगाया था कि उनका स्वागत शुरू हो गया। घमासान युद्ध हुआ।

दो घंटे के युद्ध में ही बहुत से तो मर गये शेष घबरा कर सिर पर पैर रख कर भागे। भागते भी जा रहे थे ओर हाय तौबा भी करते जा रहे थे। 'थूह थूक्क बुलाकी चक्का दें'।[1] अर्थात 'उसकी दाढ़ी पर थूक जो फिर कभी भूल से भी बुलाकी चक की ओर मुख करे' तभी से जरूरत पड़ने पर सिख उस इलाके में आ छिपते हैं। और पंथ की जरूरत के समय वहां से बाहर आ जाते हैं।

---

1. यह कहावत बुलाकी चक्कों में बोली जाती रही है। इस इलाके के स्वामी अब तक सुखा सिंह मनसा सिंह की सन्तान में से चुने जाते हैं जिन्हें गुराये कहा जाता है। यह घटनायें पुरातन सिखों को स्मरण थीं। हमें ये सरदार हरचन्द सिंह (मैनेजर डुमरी राज्य) ने सुनाई थीं। सरदार साहिब को पुरानी घटनाओं की बहुत जानकारी थी।

आगा–मुझे बहुत खुशी हुई है कि मेरे भाई ऐसे–ऐसे बहादुरी के काम करते हैं और दुश्मनों को मुंह की खानी पड़ती है। वे धन्य हैं। धन्यवाद ! कि अब तो मेरी तलवार भी देश की रक्षा के लिए चमकेगी। और मेरी रगों का खून अपनी जन्म–भूमि की रक्षा करता उसी पवित्र भूमि में समायेगा जिससे कि वह पैदा हुआ था। सिंह जी! आप को अपनी कौम के बहुत समाचार ज्ञात हैं।

जसवंत– हमारा पूरा पंथ एक ही कुटुम्ब है। हमारा लंगर एक ही है। हमारे भय और दुःख एक हैं। हमारे घरों में भक्ति और सेवा के अतिरिक्त बात नहीं होती। मृत्यु के लिए तैयार रहते हैं। शस्त्र और युद्ध, शहीदी और मौत, यही बातें प्रत्येक सिख के घर, प्रत्येक सिख मंडली में होती है। बच्चे–बच्चे को पंथ के हालात का पता है। हम पंथ के सभी व्यक्ति एक जान हैं। एक ही खून पंथ की लाखों नसों में जोश मारता है। सभी एक की ही सन्तान हैं, इसलिए सगे भाई बहिन हैं। देश जाओगे तो देखोगे। कुछ बातें तो मुझे ज्ञात थीं परन्तु अधिकांश जो बाद में आये संत जी ने बतायी थीं।

: २१ :

पंजाब में मराठों की शक्ति बढ़ जाने की गुप्त खबरें सुनकर आगा खां ने सोचा कि वह ऊपर के रास्ते से जाये, मालाकांद के दर्रे से हिन्दुस्तान में प्रवेश करे और सीधा दरबंद या पिदुर के पास से अटक नदी को पार करे। परन्तु काफिले ने पेशावर जाना था। यह भी सहज था कि काफिले को मालाकांद पार कराकर चार सद्दे के मार्ग से पेशावर तक पहुंचा दे। मराठों के पेशावर पहुंच जाने तथा जमरौद पर नाकाबंदी की खबरें उसके पास पहुंच चुकी थीं। इस हालात में ही ये स्वयं विचार उसके मन में उठ रहे थे। इसलिए वह काफिले को हाती पहुंचाकर स्वयं ऊपर के रास्ते से अर्थात अटक के साथ–साथ ऊपर–ऊपर से अमृतसर की ओर भाग जाने की ठान रहा था। परन्तु यदि मराठे अटक पर ही अटके हुए हो और अभी आगे न बढ़े हो तो इसी में अधिक भला था कि काफिला खैबर के रास्ते सीधा पेशावर पहुंचे और आगा खां पेशावर से शाहबाजगढ़ के रास्ते से पहुंचे। यह रास्ता बहुत पुराना है। इसी रास्ते से प्रसिद्ध

चीनी यात्री गये थे और इसी रास्ते पर सम्राट अशोक का शिलालेख अभी तक है। आगा खां इसी रास्ते से आगे बढ़ता हुआ सिंध नदी को पार करना चाहता था। प्रत्येक स्थिति में पेशावर से आगे जाने के रास्ते का उसने निश्चय कर लिया था। परन्तु पेशावर कैसे पहुंचा जाए। सीधा या ऊपर के रास्ते से, इसका निर्णय वह नहीं कर पा रहा था। खैबर की तरफ अफरीदियों आदि पठान कौमों का भय भी था; परन्तु हसन खां का जो सिक्का वहां जमा हुआ था उससे अधिक डर नहीं था।

काफिला दो दिन तक रूका रहा। गुप्तचर आगे भेजे गये। वे खबर लाये कि मराठा सेनापति झनकार राव अटक के किले पर ही नाकाबंदी करके बैठा हुआ है और खैबर से लेकर खैराबाद तक मराठों के अधीन कोई भी क्षेत्र नहीं है। आगा खां अब जल्दी पहुंच जाना चाहता था। काफिले को पहुंचाना उसका कर्त्तव्य था। परन्तु इच्छा यही थी कि वह कब अपने पिता की छाती पर सिर रखकर पिता का प्यार प्राप्त करें गुप्त सूचनाएं आ जाने पर उसने खैबर के रास्ते से जाना ही ठीक समझा और भट्टी कोट पहुंच गया और फिर वहां से ढाक्का की तरफ मुड़ गया।

जसवंत और सांई जी को मिलने के लिए आगा खां का उनके डेरे में आना जाना अधिक हो गया था। काफिले में इस सम्बन्ध में कानों–कान बात भी होने लगी थी कि हमारे काफिले के सरदार का इन सिखों से बहुत मेल–जोल है। हालांकि उन्हें कारण कुछ भी पता नहीं था और न ही कोई भेद पा सकता था। लेकिन लोगों के हृदय रूपी दर्पण में उनके अधिक मेल–जोल का प्रतिबिंब प्रतिभासित होने लगा था। अफगान सवारों का दस्ता आगा खां के अधीन था। उन्होंने भी इस बारे में सोचा परन्तु बुरा नहीं माना क्योंकि उन्हें पता था कि ये सिख काबुल के रहने वाले हैं और उन्हें वे अपने देश का व्यापारी समझते थे जिनके बिना उनका लेन–देन, व्यापार, सामान का आदान–प्रदान नहीं चल सकता था। पंजाब के निर्भय विचरण करने वालों और सदा युद्ध के लिए तैयार खालसा की बात सुनकर जो

क्रोध उन्हें आता था वह इन सिखों के बारे में सुनकर नहीं आ सकता था। इसलिए बिना किसी क्लेशपूर्ण घटना के सफर होता

रहा। आग खां का साहस, उसकी जवानी सिंहाकृति और शूर वीरता उन्हें भा रही थी और अपने सरदार के आदेशों का वे आदर के साथ पालन करते जा रहे थे। आगा खां की खुशी अपार थी, सांई बहुत प्रसन्न थी कि उसकी जीवन तपस्या सफल हुई है। पर सतवंत ने अनेक विपदाओं को देखा था। इसलिए कभी–कभी उसका मन घबड़ा जाता था। वह प्रार्थना करती–"अजहु सु नाउ समुन्द्र महि क्या जानऊ क्या होइ, हे वाहिगुरू ! तू ही नाव को पार लगाने वाला है, हम पर कृपा कर।"

यहां से भी काफिला चला और ढक्का आकर डेरा लगाया। यहां से सरहदी पठान कौमों का आरम्भ हो जाता है। सरहद की कौमों से तो अकबर भी तंग आ गया था और अब तक हिन्दुस्तान के सभी बादशाह इनका विशेष प्रबन्ध करते आये हैं। यह न तो काबुल की अधीनता मानते हैं और न इधर के बादशाहों के अधीन होते हैं। हां; यदि कभी लोहा मानते हैं तो शक्तिशाली वीर का।

यहीं आगा खां ने कुछ आदमी पेड़ के नीचे इस तरह बैठे देखे जैसे पठान जिरगा (पंचायत) कर रहे हों। उसने पास जाकर देखा कि वे तो सिख हैं और एक सिख अपराधी की तरह बैठा है और शेष कुछ विचार कर रहे हैं। ये सिख पंजाबी नहीं थे। बल्कि उसी क्षेत्र के थे। पूछने पर बताया कि यह हमारा भाई है। इसने धर्म मर्यादा के विरूद्ध आज किसी दूसरे सिख से नाराज होकर उसे गालियां दी हैं। फिर एक पठान के सामने उसकी निंदा भी की है और उससे मिलकर यह योजना भी बनायी है कि उसकी सहायता से उसकी मार पीट भी की जाए। आगा खां ने हैरान होकर कहा कि जब दोनों में ठन गयी तो जैसे भी बन पड़े उन्हें आपस में बदला लेने का हक है। आप इस पर पंचायत क्यों कर रहे हैं। सिखों के जत्थेदार ने कहा–खां साहिब। हम सिख हैं, हमारा मत और ढंग न्यारा है। हम आपस में सब भाई–भाई हैं। हमारे यहां यदि दो भाइयों में कोई विरोध हो तो गुरूद्वारा में फैसला कर लेते हैं। आपस में लड़ना हमारे धर्म में वर्जित है। फिर निंदा करना भी हमारे धर्म में वर्जित है। कोई भी सिख दूसरे सिख की निंदा पीठ पीछे नहीं कर सकता और विधर्मी, दूसरे धर्म वाले के सामने तो कभी भी नहीं। यदि सिख ने

किसी अन्य सिख के किसी अवगुण को बताना है तो उसे प्यार के साथ अलग ले जाकर कहे। यदि ऐसा सम्भव नहीं है तो अपने परिवार के मुखिया के सामने उसे समझावे, और ऐसा कहने से भी बात न बने तो गुरूद्वारे के ग्रंथी सिंह को बता दें। वे खुद समझा देंगे। या दीवान (धर्म सभा) में बता देंगे। जिससे उससे पूछ–पड़ताल करने के बाद समझौता हो सके।

आगा खां ने कहा– ये बातें तो बहुत कठिन हैं। आपकी कौम इन सब बातों को निभा लेती है?

सिख– खां जी, क्यों नहीं। हम सभी एक परिवार के सदस्य हैं। परिवार में प्यार न हो तो परिवार कैसा।

आगा खां– इसका कारण क्या है?

सिख– गुरू का आदेश। आदेश है (क) सिख को बुरा मत कहें (ख) पीठ पीछे निंदा न करें। (ग) किसी सिख या गैर सिख से मिल कर सिख का बुरा मत करें।[1]

यदि ये बातें हम में न रहें तो हम भाई नहीं रह सकते। भाई यदि भाई में अवगुण देखे तो उसका धर्म है कि वह भाई को सुधारे, न कि बदला ले और दुख दे। यदि भाइयों में ही वैर भाव हो जाये तो बाहर के बैरियों को मारने की भला क्या जरूरत है। आपस में ही मर

---

1. देखिए 'रहितनामा' भाई चौपा सिंह जी जो इस प्रकार है :

5 जो सिख की निंदा करे सो पक्का (दण्डनीय अपराधी) तनखाहीया।,

6 सिख को सिख हाथ से मुक्का मारे सो पक्का तनखाहीया।

7 जो सिख सिख की दाढ़ी पर हाथ डाले सो पक्का तनखाहीया।

8 जो सिख की चुगली करे सो पक्का तनखहीया।

9 जो सिख सच झूठ बोलकर सिखों को लड़ाये सो मसखरातनखाहीया।

10 जो सिख योजना बनाकर सिखों के मतभेद उत्पन्न करे सोतनखाहीया।

11 जो सिख का बुरा होने लगे, कार्य बिगड़ने लगे उसे बताये नहीं सो तनखाहीया।

12 जो सिखों को ताअने मारे सो तनखाहीया।

13 सिखों का झगड़ा सिखों में ही तय किया जाए।

जायेंगे। इसलिए हमारा असूल हैं कि सिख का आपसी प्यार और एकता टूटे नहीं। मनुष्य से भूल हो सकती है। उसके लिए व्यवस्था यह है कि सिख सिख की भूल को अनदेखा कर दे, अपने भाई में सुधार लाने की कोशिश करे। सुधार चुपचाप करें और उससे बदला न लें। बुरा भला कहना, निंदा स्वयं करना अथवा मीरासी द्वारा गुड्डा बंधवाना,[1] या किसी अन्य विधि से नशर[2] करना यह सभी बातें सिख धर्म में वर्जित हैं। भाई–भाई के बीच फैसला करनाने के लिए सिख का प्यार, परिवार का प्यार और दीवान (धर्म सभा) का प्यार ही न्यायालय[3] है। इस सिख भाई ने जो भूल की है वह बड़ी है और आज पंथ का जत्था उसका फैसला कर रहा है।

आगा खां ने पूछा– तो फिर क्या फैसला हुआ?

सिख– अपराध साबित हो गया है और सिख ने स्वीकार कर लिया है। इसलिए दंड यह दिया गया है कि सवा रूपया गुरू की गोलक के लिए दे। जपुजी साहिब के पांच पाठ करे। फिर अपने घर सिखों को भोजन कराए। जिस सिख भाई की इसने निंदा की है उसे खुद बुलाने जाए और भोजन वाले दिन सभी इकट्ठे बैठें और भोजन करें। इसके बाद जिस भाई की निंदा हुई है उसके घर सभी भोजन करें। अब तो केवल इतनी बात हो रही है कि ग्रंथी जी उसे समझा रहे हैं कि अपने भाई से बदला लेने के लिए जो उसने पठान की शरण लेने की भूल की है, वह बहुत ही हानिकारक है।

---

1. जिस प्रकार लोगों की मानहानि करने और बदला लेने का कार्य आज कल समाचार पत्र करते हैं। पहले समय में मीरासी एक बांस पर फटे कपड़ों की गुड़िया बांधकर गांव गांव घूमता था और जिस व्यक्ति की निंदा करनी होती थी उसकी स्थान–स्थान पर निंदा करता था। इसको गुड्डा बान्धना या गुड्डी बान्धना कहते हैं।
2. 'नशर' करना पठान–मुगल बादशाहों द्वारा दिया जाने वाला एक दण्ड था। जिस को केवल बदनाम करके छोड़ देना होता था उसे गधे पर बैठा, मुंह काला कर नगर में घुमाकर छोड़ देते थे जिससे कि उसकी मानहानि हो जावे। इससे नशर करने का अर्थ हो गया किसी को बदनाम करना।
3. सिखों का प्रत्येक झगड़ा सिखों में ही निपटे।

खां साहिब! आप बुरा न मानिए। हमारी कौम की यही व्यवस्था है कि चाहे कितना भी अच्छा मित्र हो परन्तु जो सिख नहीं है उसकी सहायता किसी सिख के विरूद्ध कभी नहीं लेनी चाहिए। दो विरोधी सिख भी, जो सिख नहीं हैं उनकी अपेक्षा अधिक निकट के सम्बन्धी हैं।

इस प्रकार की बातें सुनकर आगा खां अपने डेरे में आ गया और शाम को उसने यह सारा वृत्तान्त जसवंत और सांई को सुनाया। उसने पंथ में प्रचलित इस अलौकिक रीति की महिमा का बखान किया और कहा कि पंजाब में तुर्क राज अवश्य नष्ट होगा और सिख जरूर राज करेंगे।

इस प्रकार सफर कटता रहा। लंडी कोतल[1] जमरौद होते हुए वे पेशावर पहुंचे। सभी अपने–अपने स्थानों को चले गये। आगा खां पेशावर के खान का मेहमान बना। सभी प्रबन्ध करने के बाद यह निश्चित किया गया कि जसवंत सिंह तथा अन्य व्यापारी जो यूसफजई के क्षेत्रा से होती जाना चाहते हैं, कुछ सिपाही उनके साथ जायें और उन्हें पहुंचा आयें। पेशावर से एक काफिला काबुल जाने के लिए तैयार था, परन्तु इस काफिले ने होती, दरगई, कालाकांद के रास्ते से जाना था। यह प्रबंध भी पेशावर के खान के साथ हो गया और यह निश्चित किया गया कि इस काफिले का नेतृत्व भी आगा खां ही करे। खान को हसन खां का संदेश मिल गया था कि वह आगा खां की आवभगत करे और जल्दी ही वापस भेज दे, वह अभी बच्चा है और उसका यह पहला सफर है। इसलिए अपने जत्थे को पेशावर छोड़कर, कुछ सिपाहियों को साथ लेकर आगा खां होती आ गया। यहां वह पेशावर के खान का मेहमान हुआ। जसवंत सिंह और उसके साथी एक धर्मशाला में ठहरे और आगे की यात्रा के सम्बन्ध में विचार करने लगे। खान एक दिन आगा खां को आखेट पर ले गया। शिकार खेलते हुए वे तख्तवाही की पहाड़ी पर जा चढ़े। ऊपर

---

1. खैबर के पहाड़ों में जंमरोद से 20 मील पहले एक छोटा पथरीला मनमोहन स्थान है।

जाकर आगा खां ने कुछ गुफाएं देखीं जिससे उसे पता चला कि वहां कभी काफिरों (बुद्ध धर्म के अनुयायियों) के बड़ी संख्या में मंदिर और विद्यालय थे। मिट्टी में सब कुछ दब गया था, परन्तु कहीं–कहीं कुछ नजर भी आ रहा था। टूटी हुई मूर्तियों के टुकड़े, कई मूर्तियों के नाक कान आदि कटे हुए थे। कई इमारतों की दीवारों का चूना आदि दिखाई पड़ा। यह देखकर उसने गहरा निश्वास लिया और कहा–'कमजोर कौमों के वैभव को शक्तिशाली कौमें कैसे तबाह कर देती हैं?' फिर डेरे पर आने के बाद वह उस जगह एक बार अकेला गया जहां कलपानी नदी के किनारे जसवंत सिंह से मिलना निश्चित हुआ था। यहां बातें करते हुए उसने पूछा कि 'सिख भी मूर्तिपूजक नहीं हैं पर क्या कभी उन्होंने हिन्दुओं के मन्दिरों को गिराया है?'

जसवंत सिंह– कभी नहीं। सिख मात्र मूर्तिपूजक ही नहीं हैं, बल्कि मूर्ति–भंजक भी। किन्तु वे जबरदस्ती मूर्तियों को हथोड़ों से नहीं तोड़ते। वे अपने उपदेशों से, पवित्र जीवन से, लोगों के मन से मूर्तियों से विश्वास उठाकर वाहिगुरू में उनका मन लगा देते हैं और इससे उनके मन से मूर्ति खुद ही टूट जाती है। मूर्तिभंजक तो अपने उद्देश्य में असफल रहता है क्योंकि वह जब मंदिर की मूर्तियों को अपनी शक्ति से तोड़ देता है तो भी मूर्तियां लोगों के मन में बसी रहती हैं। कुछ ही समय पश्चात लोग अपने मन की मूर्तियों के आधार पर मिट्टी–पत्थरों की मूर्तियां घड़ लेते हैं।[1] जो जबरदस्ती लोगों को अपने धर्म का अधिकार मनवाकर उन्हें उसमें मिला लेते हैं, वे भी भूल करते हैं, क्योंकि यह बहुत बड़ा अनयाय है। उच्च मन एवं पवित्र हृदय वाले लोग शक्ति के आगे झुकते नहीं है। वे तो मृत्यु को स्वीकार करते हैं। शेष निर्बल, कायर तथा निम्न कोटि के हृदय वाले लोग शक्ति और लोभ के वशीभूत होकर ही दीन को स्वीकारते हैं। ऐसे लोगों के दीन में आने से दीन का ही नैतिक स्तर गिर जाता है। इन्सान के विचारों को मोड़ देने के लिए प्रेरणा ही उत्तम ढंग है। जबरदस्ती दोनों पक्षों के लिए उचित नहीं। जबरदस्ती लोगों को

---

1. कशमीर इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

गुलाम बनाने वाली कौम अत्याचारों के कारण ऐसी गलतियां कर बैठती है जिससे वह नैतिक तौर पर गिर जाती है। केवल बुत ही बुत नहीं, एक बुतखाना, मन्दिर इन्सान के हृदय में भी है। सिख इन हृदय में स्थापित मूर्तियों को भी गिराते हैं। अपने हृदय में जान, धन, इज्जत, पुत्र, स्त्री या किसी अन्य वस्तु को वाहिगुरू से भी अधिक प्यार करना मूर्ति को पूजना ही है, ऐसे मूर्तिपूजक मोमिन और मूर्तिभंजक लोग भी हैं। सिखों के पास ऐसी मूर्तिपूजा का इलाज भी है।

कुछ दिन यही क्रम रहा कि आगा खां जसवंत सिंह और सांई प्रातः ही कलपानी नदी किनारे आ जाते और मिल–जुलकर बात करते। पंजाब की यात्रा के बारे में योजना बनाते तथा इधर–उधर की अन्य बातों पर विचार करते। आखिर पेशावर का काफिला आ गया। कुछ लोग होती से भी काफिले में मिल गये। काबुल को कूच करने की तैयारियां होती रहीं। अब आगा खां तीन दिन तक जसवंत को नहीं मिल सका। इधर उसने यह प्रबंध किया कि एक उपजत्थेदार को रूपया और सामान का उत्तरदायित्व सौंपकर काफिले को सेना के एक दस्ते के साथ मालाकांद की ओर से भेज दिया और उपजत्थेदार को कहा कि आप चलकर दरगई डेरे लगाओ। मैं होती के खान के पास दो–चार दिन ठहर कर आ जाऊंगा। इस तरह काफिले को आगे भेजकर आगा खां होती के खान का मेहमान बना रहा।

आगा खां और जसवंत जब शाम को एक दूसरे को मिले तो आगा खां ने बताया कि उसने काफिला सेना के दस्ते के साथ आगे भेज दिया है। तब जसवंत सिंह ने कहा कि आपने दस्ते को कहा है कि वे एक निश्चित जगह पर डेरा लगाये और आप दो–चार दिनों में उनके पास पहुंच जाओगे। यह तो सांसारिक चाह है। सिख ऐसी नीति में विश्वास नहीं रखते। सिख की नितियों की नींव सच्चाई पर होती है। वह झूठ नहीं बोलता। मुझे भी मालूम है कि दस्ते से छुटकारा पाना आसान नहीं है परन्तु सिख की जिह्वा का झूठ से कोई सम्बन्ध नहीं। सिख के सामने जब इस तरह का मामला आता है तो वह बुद्धि से काम लेता है परन्तु इसमें आपका दोष नहीं। आपका

पालन–पोषण अपनी जाति में नहीं हुआ तभी आपको अपनी कौम के बारे में पता नहीं है।

आगा खां– 'वीर जी, जब हमारा शत्रु झूठा हो, चालाक और फरेबी हो और वह हमें दाव तथा चालों से, छल–कपट से जिसे वह अपनी नीति कहता है, मारे तो उसे मारने के लिए हमें भी झूठ, फरेब, छल–कपट की नीति क्यों नहीं अपनानी चाहिए।'

जसवंत सिंह– मुझे भी अपने देश से अलग हुए बहुत समय हो गया है। जो गुरमुख काबुल में मुझे भगवान के मार्ग पर डाल गये, वे बताते थे कि सिख कभी भी झूठ के मार्ग पर नहीं चलते, क्योंकि सिख झूठ का मार्ग अपनाने वाला जीव नहीं है। सिख 'याद (प्रभु–स्मरण)' में वास करता है, इसीलिए जीता है। वह सच के पैरों पर खड़ा होकर ही सारे संसार का चक्कर लगा लेता है। झूठे आदमी अपनी कौम का कभी भी कुछ संवार नहीं सकते। झूठ तभी पल्लवित होता है जब स्वार्थी लोग किसी स्वार्थ के लिए इकट्ठे हों। वे झूठ का आश्रय लेकर जब अपने वैरी को मार देते हैं तो फिर बाद में झूठे व्यवहार के कारण, एक दूसरे पर विश्वास न होने के कारण विघटित हो जाते हैं। सांई की ओर ध्यान रखने वाले, वीर, बांकुरे सच

पर खड़े होकर सच्ची वीरता दिखाते हैं हमारे गुरू का कथन है–"हरि नामै के होवहु जोड़ी," कि वाहिगुरू का नाम लेकर जुड़ जाओ। हमारी जत्थेबंदी हरि नाम वालों की है, जिनमें द्विविधा नहीं। जत्थेबंदी गुरमुखों की है, इसीलिए उनमें वैरभाव नहीं होता।

इसके बाद वे सोचने लगे कि अमृतसर कैसे पहुंचा जाए। सफर, किसी दशा में भी खतरे से खाली नहीं था। हिन्दु वेश में मुसलमानों का डर था और मुस्लिम वेश में जगह–जगह मराठों के दस्तों का डर था। सिख वेश में दोनों का डर था। अंत निष्कर्ष यही निकला कि पंजाबी मुसलमान के वेश में खतरा कम है। आगा खां की इच्छा कुछ दिन और ठहरने की थी, परन्तु जसवंत शीघ्रता में था। अगले ही दिन तड़के उन्होंने कूच किया। सब ने पोठोहारी मुसलमानों के कपड़े पहने हुए थे। घोड़ों पर सवार थे। आवश्यक सामान खच्चरों पर लदा था। जत्थे में आगा खां, जसवंत सिंह, सांई जी, लदधा सिंह का

विश्वासपात्र नौकर थें आपसी भेद खुल चुके थे और सभी में प्यार पड़ चुका था। परन्तु सतवंत कौर का भेद कि वह एक कन्या है और नवयुवक सिख नहीं, अभी तक नहीं खुला था। होती से चलकर वे शाहबाजगढ़ पहुंच गये। यह क्षेत्र पहाड़ी टीलों से सुशोभित, पथरीला और फिर सुहावनी हरियाली से भरा हुआ था।

सतवंत कौर की तरह यह धरती भी अनेक दुखों को भोग चुकी है। किसी समय इसी भूमि पर आर्य लोगों ने अपने पैर रखे थे जो धीरे–धीरे एक सभ्य, वैभवसम्पन्न जाति के रूप में विकसित हुई थी। जिसे आजकल पेशावर का क्षेत्र कहते हैं, तथा आस–पास के क्षेत्र में उस समय 'गांधार' राज्य था। बड़े–बड़े शक्तिशाली राजाओं ने यहां राज्य किया। पेशावर को राजा पोरस ने बसाया था जिसे उसने पौरूषपुर नाम दिया था। इसे पेशावर नाम अकबर ने दिया। आज से बारह–चौदह सौ साल पहले जो चीनी यात्री आये वे लोग भी इस नगर का नाम 'पौरूषपुर' ही लिखते हैं। यहां पहले हिन्दू धर्म का ही जोर था। पाणिनी जैसे विद्वान पंडित भी इसी धरती में पैदा हुए थे। जहां आजकल लाहौर[1] नामक गांव है वहां पुराने नगर सालतूरा के खंडहर है। इस नगर ने ही संस्कृत के प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनी को जन्म दिया था।

फिर हमारा देश बुद्ध धर्म का अनुयायी हो गया और बौद्ध मंदिर, मूर्तियों तथा अन्य वास्तुकला की रचना हुई। पुराने नगर 'ऊदा बंध' और आजकल के 'उंद' और बाबर के बताये हुए 'द्वारहिंद' नामक गांव से यह जगह सात–आठ मील की दूरी पर है। इसी धरती पर यूनानी सिकन्दर आया जिसने यहां के लोगों की महिमा गायी। चन्द्रगुप्त और अशोक जैसे महाबलियों का डंका यहां बज चुका है। इसके बाद पश्चिमी और हिंद की सभ्यता का मिला–जुला रूप यहां बज चुका है। इसके बाद पश्चिमी और हिंद की सभ्यता का मिला–जुला रूप यहां पनपता रहा। सीथियन और यूनान के लोगों

1. यह सिंध पार एक गांव का नाम है। पंजाब (पाकिस्तान) का मुख्य नगर लाहौर नहीं।

की मिली–जुली जाति यहां राज्य करती रही। कनिष्क जैसे महाराजा ने यहां राज्य किया। चीनी यात्री बताते हैं कि गांधार देश, प्राकृतिक छटा, फल–फूलों, बाग–बगीचों, चश्मों, शीतल व सुहावने स्थानों के कारण बहुत ही सुन्दर देश है। आजकल भी भूमि धन–उपजाऊ है परन्तु न वन हैं और न उद्यान। न वे चश्मे हैं और न वह प्राकृतिक धरती है। महमूद गजनवी ने इस क्षेत्र को नष्ट किया।[1] सुन्दर वास्तुकला के स्तूप मंदिर, बुद्ध विहार, गुफाएं सभी नष्ट भ्रष्ट कर ढेर कर दिये। कुछ समय तो हिन्दू ये अत्याचार तथा कष्ट सहते रहे परन्तु फिर कुछ पठानी कौमों ने जमींदारी छीननी आरम्भ की। धीरे–धीरे सभी हिन्दू तथा बौद्ध चिन्ह मिट गये। हिन्दुस्तानियों को कत्ल किया गया, कुछ मुसलमान हो गये, कुछ अटक के पार चले गये। केवल गांवों में कुछ लोग मुसलमानों के बीच रह गये या बाद में कुछ रहने के लिए आ गये। अब सारा क्षेत्र पठानी है, हिन्दू–सिख बहुत कम हैं। जब यह क्षेत्र सिखों के अधीन आया तो कुछ हिन्दू–सिख और आकर बस गये परन्तु यह राज ज़ल्दी ही सपना बन गया। प्रकृति की लीला देखें या इतिहास से सबक लें तो यही बात स्पष्ट होती है कि जब गांधार के ऐश्वर्यशाली लोगों में फूट पड़ गयी तब धीरे–धीरे वही भूमि जहां प्रतापशाली हिन्दू और बुद्ध धर्म के अनुयायी निवास करते थे, जहां पाणिनी जैसे विद्वान पंडित ने जन्म लिया, जहां अनेक सम्राटों–महाराजाओं ने राज किया, जहां अनेक विद्या के केन्द्र थे, जहां पौरूषपुर, पुस्करावती, पोलूसू और ऊदाबंध जैसे प्रमुख नगर तथा भारी व्यापारिक मंडियां थीं, जहां अनेक बौद्धस्तूप तथा हजारों मंदिर थे, उनके लिए परदेस और यवन–भूमि बन गयी। जहां सारे हिन्दुस्तान से लोग तीर्थयात्रा को जाते थे अब वहां जाना मुसलमान होने के बराबर कहा जाने लगा। लोग कहने लगे..."जो अटक से पार गया वह हिंदू नहीं रहा।" फिर हिंदुस्तान के लोगों की उदासीनता देखो कि कोई सपने में भी नहीं सोचता कि उनकी भूमि क्या थी और क्या हो गयी। जिस कौम

---

1. इससे बहुत समय पूर्व हूण लोग भी यहां तबाही मचा गये थे।

में आपसी प्यार नहीं रहता और फूट पड़ जाती है, उसका यही हाल होता है।[1]

पाठक जी ! क्या आपको ज्ञात है कि जहां इस समय चारसद्धा और प्राग नामक गांव हैं, वहां कभी पुष्क्रावती नाम का एक विशाल नगर था। क्या आपको पता है कि जहां आजकल शाहबाजगढ़ है और जहां अशोक की भारी शिला पड़ी है, उसका नाम कभी 'विर्षापुर' और 'पोलूसू' था। इसके साथ के टीले[2] पर मंदिर थे और राजकुमार विश्वातरा ने अपने देश–निकाले के दिन यहीं एक कन्दरा में व्यतीत किये थे। यहीं इस राजा ने अपना सफेद हाथी दान में दिया, फिर रथ दान में दिया, फिर पुत्र भी दान में दे दिये, और कि उसी निर्दयी ब्राह्मण ने जो उसे यह सभी यातनाएं दे रहा था उन बच्चों का वध कर दिया जिनके खून से धरती लाल हो गई।[3] इन घटनाओं से सम्बन्धित पत्थरों पर अंकित कुछ चित्र पृथ्वी में से निकले हैं जो ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित पड़े हैं। उनकी प्रतिलिपि कलकत्ता के संग्रहालय में देखी जा सकती है। क्या आपको याद है कि शाहबाजगढ़ का नाम ही कभी पोलुसू था? यह इतना सुन्दर और रमणीक स्थान था कि चीनी यात्री शौंगयून उसे अपनी आंखों देखकर लिखता है–

"धार्मिक पुस्तकों में वर्णित सभी स्वादिष्ट फल और रमणीक चश्मे यहीं हैं। वादियां सुहावनी और गर्म हैं। वृक्ष शरद ऋतु में भी हरे रहते हैं ठंडी पवन बहती है, पक्षी गाते हैं और तितलियां फूलों की धरती पर नाचती हैं।"

---

1. महाराजा रणजीत सिंह ने अपने बाहुबल से इस क्षेत्र को एक बार फिर से स्वतन्त्रता के झूले में झुलाया और सुख समृद्धि प्रदान की।
2. इस टीले का पुराना नाम विश्वातरा पर्वत है।
3. इस स्थान अर्थात अशोक पत्थर के निकटवर्ती टीले पर किसी दिन पंथ–प्यारे भाई हीरा सिंह जी रागी तथा कभी अमृतसर के प्रसिद्ध महन्त तखत सिंह जी श्री गुरूवाणी का कीर्तन, कीर्तन प्रेमी डॉ॰ दीवान सिंह तथा अन्य सतसंगियों को बहुत आनन्दपूर्वक सुना आये हैं।

क्या आपको याद है कि निकटवर्ती 'कड़ामार पहाड़' का नाम 'भीम देवी पर्वत' था? जहां सारा हिन्दुस्तान अमरनाथ के मंदिर की तरह तीर्थ–यात्रा करने आता था? इसके पूर्व की ओर शेवा गांव है। आपको याद होगा यहां एक विशाल शिव मंदिर था और शिवजी से ही अब तक शेवा नाम चला आ रहा है। इस प्रकार गांधार में अब जो खण्डहर हैं जैसे कि 'परीयान खण्डहर'[1] 'सरात पक्खो खण्डहर'[2] और 'शाहजी का खण्डहर'[3] तथा अन्य अनेक नामों से उपलब्ध हैं वे सब प्राचीन मन्दिरों बुद्ध स्थानों और नगरों के भग्नावशेष हैं। खंडहर भी मिट्टी के ढेर हो गये हैं। बाला हिसार का ऊंचा स्थान जिससे खालसा जी अपने राज्य के समय किले का काम लेते थे, वहां भगवान बुद्ध के नेत्रदान का एक अद्वितीय मंदिर है। चीनी यात्री फाहियान लिखता है कि यह चांदी और सोने से जड़ित था।

समय ने कितने परिवर्तन देखे हैं ! हिन्दू प्रताप के समय का कोई चिन्ह नहीं, बुद्ध समय का प्रताप मिट्टी के ऐर के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। ऐसे लगता है कि पठानों के अतिरिक्त यहां कभी कोई रहता ही नहीं था। कहीं–कहीं गांवों में यदि कोई हिन्दू नजर भी आता है तो यात्री सा लगता है। ऐसा लगता है कि पठान जमींदारों ने उन्हें छोटे–मोटे कामों के लिए रखा हुआ हो। या वे लोग हैं जो महाराजा रणजीत सिंह के समय यहां आकर बस गये थे।

हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने वाले सभी आक्रमणकारी इस मार्ग से आये। आर्य भी इसी मार्ग से आये, सिकन्दर इसी मार्ग से आया। सीथियन तथा अन्य यवन एवं असुर (असीरयन) भी इसी मार्ग से आये। अफगान और मुगल भी इसी मार्ग से आये और गांधार की पृथ्वी ने मुख्य द्वार होने के कारण सबसे अधिक उतार–चढ़ाव देखे। यह क्षेत्र कई बार उजड़ा और बसा।

---

1. श्यामा स्तूप।
2. हरीती देवी (बुद्धमत की शीतला देवी) का स्थान। यहां से खुदाई में निकली हरीती की मूर्तियां लाहौर के कला–संग्रहालय में पड़ा है।
3. कनिष्क चैत्य (अर्थात महाराजा कनिष्क द्वारा बनवाई गई बुद्ध की समाधि) ये पुराने नाम हैं।

शाहबाजगढ़ में अशोक के समय की एक शिला है, जिस पर उनका एक आदेश अंकित है। वास्तव में पंजाब जाने वाला प्राचीन मार्ग यही था। हिन्दू एवं बौद्ध प्रभाव के समय पर्वतों के साथ–साथ ही शाही मार्ग जाता था क्योंकि इन स्थानों में नदियों की चौड़ाई कम होती थी और पार पहुंचना आसान होता था। यदि कभी कोई यमुना किनारे 'कालपी' के पास पड़ी अशोक शिला और यहां शाहबाज गढ़ में पड़ी अशोक शिला को देख ले तो वह समझ जायेगा कि पहाड़ों के साथ–साथ ही यह मुख्य मार्ग इसी प्रकार चलता चला जाता होगा क्योंकि राजा–महाराजाओं के आदेश मुख्य मार्गों पर ही अंकित किये जाते थे। लगभग उसी रास्ते पर जाने का निश्चय करके हमारा यह साहसी दल चला। अटक के किले के पास से निकलने का इरादा नहीं था, क्योंकि वहां पर मराठे थे। इसीलिए वे ऊपर–ऊपर से ही आगे बढ़े।

जब वे सिंध के किनारे पहुंचे तो इन्होंने नीचे की ओर कुछ दूरी पर दरिया के किनारे आदमियों के एक झुंड को देखा। उन्हें गाने की आवाज भी सुनाई दी। जसवंत सिंह समझ गया कि यह सिखों का समागम है। उसके मन में आया कि आगा खां को सिखों के कीर्तन का नजारा दिखाये। इसलिए वहीं डेरा लगाया गया और नौकर को पूरी खबर लेने के लिए नीचे भेजा गया। उसने पता लगाकर बताया कि दस–बीस सिखों और सिख स्त्रियों का दीवान सजा हुआ है और कड़ाह प्रसाद की परात पड़ी है तथा कीर्तन कर रहे हैं। थोड़ी देर उन्होंने विचार किया। फिर लद्धा सिंह नौकर और सांई को डेरे पर छोड़कर जसवंत सिंह सिख वेश में और आगा खां को भी पहली बार सिख वस्त्र पहिनवाकर दीवान में जाकर बैठ गया। सिंहों ने एक को वेशधारी और दूसरे को सहजधारी सिख समझकर सम्मान दिया। शब्द–कीर्तन के बाद अरदास हुई। अरदास से जसवंत सिंह सारा मामला समझ गया। किसी तुर्कानी हमले के बाद वापस जाते हुए लूटमार के सामान तथा बहुत से हिन्दू कैदियों को लेकर कई नौकायें यहां से बाहर जा रही थीं। उन कैदियों में एक सिख लड़की को भी हाथ पैर बांधकर ले जाया जा रहा था। वह लड़की राह में सबको साहस से काम लेने का भी उपदेश दे रही थी तथा पुरुषों और

औरतों को कह रही थी कि क्या चुप–चाप बकरियों की तरह कसाई के पीछे–पीछे जा रहे हो? क्यों नहीं लड़ मरते? तुम सब गुलामी में जा रहे हो। परतन्त्रता से मौत भली है। गुलामी का जीवन मौत से भी बुरा है, उस जीवन का क्या लाभ? लड़ने से मौत ही तो होगी। वह मौत तुम्हें उस गुलामी से स्वतन्त्र कर देगी जिसे भोगने के लिए तुम जा रहे हो। उसका उपदेश प्रभावपूर्ण था। कैदी अकड़ जाते, सिपाहियों से झड़प हो जाती, कभी मरते, जख्मी होते परन्तु कैद करने वालों को भी जख्मी कर देते। कभी कोई मर भी जाता। उन्हें बाद में पता चल गया कि कैदियों में एक सिख लड़की है। हम जाल में फंसी मछलियों के साथ–साथ एक (निहंगे) मगरमच्छ का बच्चा भी ले जा रहे हैं। उस पर बहुत कठोरता दिखाते। उसके हाथ–पैर बांध दिये गये थे। यहां पहुंचकर सलाह की गयी थी कि उसे यहां ही मुसलमान बना लिया जाये। उसे आदेश दिया गया परन्तु उसने नहीं माना। काजी आया, बहस हुई। निडर लड़की ने खूब खरी–खोटी सुनायी। वैरी उसका कुछ भी नहीं कर पाये। अन्त में नौबत मार–पिटाई की आ गयी। जब उनकी कुछ भी पेश न चली तो उन्होंने लड़की को उठाकर नदी में फेंक दिया। शूरवीरों की वंशज वह वीर कन्या जीवन से मुक्ति पा गयी। शरीर की कैद और वैरियों से बंदी जीवन से स्वतन्त्र और मुक्त हो गयी। वह ईश्वर के वश में चली गयी। आक्रमणकारी अन्य कैदियों के साथ पेशावर की ओर चल दिये। इन सभी घटनाओं की खबर सारे इलाके में फैल गयी। इलाके के सिखों ने जो दूर–पास थे जब यह खबर सुनी तो इकट्ठे हो गये। लाश तो क्या मिलनी थी परन्तु कड़ाह प्रसाद किया और उस लड़की के लिए अन्तकाल की अरदास की। तब से हर साल आस–पास के सिंह इकट्ठे होकर कीर्तन करते और कड़ाह–प्रसाद बांटते हैं और उस लड़की के लिए अरदास करते हैं। जब पहले खबर मिली थी तो उस लड़की के नाम, ग्राम का पता नहीं था। देश के पठानों से ही उस लड़की की कहानी सुनी गयी थी। पंथ के साधू गुप्तचरों के प्रयास से और विभिन्न ब्योरों के मिलने के से सारी जानकारी प्राप्त हो गयी। वह लड़की घड़थल के प्रसिद्ध घराने की थी जो सिखी धर्म–विश्वास में पूरा था। उसके पिता जी सिख बने

थे और किसी जंग में शहीद हो गये थे। उसकी मां और वह लड़की अपने गांव से गुजरात शहर में किसी के घर शोक व्यक्त करने जा रहे थे। तभी पठानी दल ने इस कन्या को किसी प्रकार कैद कर लिया था और कैदियों के दल में शामिल कर लिया था। इस कन्या के बारे में यह बातें सिखों ने जसवंत सिंह को बतायीं। उन्होंने बताया कि इस क्षेत्र के पठान बताते हैं कि वह लड़की अपने साथी कैदियों को कहती थी कि यदि और कुछ नहीं कर सकते तो नदी में डूब मरो। सतलुज, व्यास, रावी, चिनाब, जेहलम, सिंधु, लुंडा सात नदियां रास्ते में पड़ती हैं।

यह हाल सुनकर आगा खां की भुजाएं फड़क उठीं। अपनी मां के कैद में पड़ने और उसकी गोद में कैदी के रूप में जाने के दृश्य आगा खां के आगे घूमने लगे। बरबस उसका हाथ तलवार की ओर जा रहा था परन्तु आगे सभी भाइयों को देखकर वह रूक गया। इसी तरह उसका जोश उठता और स्थिति को देखकर ठंडा होता हुआ शांत हो गया फिर सिखी प्यार का दृश्य आंखों में आंसू ले आया। वह मन में बोला–वाह परमेश्वर ! ऐसी सूरमा कौम बनाने वाला ! तू धन्य है ! एक कैद में पड़ी, जिससे न कोई जान न पहचान, जिसे कभी देखा नहीं, केवल यह सुनकर कि वह शहीद हो गयी है, यहां लोग हर साल इकट्ठा होते हैं, कीर्तन करते हैं और उसके लिए अरदास करते हैं। यह कौम है कि एक परिवार है, यह एक धर्म है या कि एक कुटुम्ब है। कैसा प्यार का दृश्य है? कैसा मुहब्बत का चित्र है। भगवान का लाख–लाख धन्यवाद कि मेरी रगों में यही पवित्र खून है। इसी पवित्र खून ने मुझे अपनों की ओर आकर्षित किया है। भगवान का धन्यवाद कि सिखी खून सिखी की ओर आया है। मेरा ह्रदय अन्य खून में रहकर भी अत्याचार, गुलाम बनाने और नष्ट करने की ओर नहीं गया है।

कड़ाह प्रसाद प्राप्त करके और अपने वतन में अपने भाइयों से पहली बार मिलकर, उनके दर्शन करके आगा खां खिल गया। सारे सिख उसे आलिंगन में लेकर मिले। सतवंत कौर जो सिखों के स्वभाव से जानकार थी, उसने अफगानिस्तान से वहां तक पहुंचने का हाल संक्षेप में सुना दिया। सतवंत कौर को जरा भी डर नहीं था

कि उसने यह सब जानकारी उन्हें क्यों दे दी है। क्योंकि वह जानती थी कि ये सिख हैं, हम सिख हैं, हमारा और इनका रहस्य एक है। जो बात इनको मालूम है वह सिखों के बीच ही रहेगी। सिख कौम में उस समय कोई भी सिख किसी तुर्क का गुप्तचर बनकर रहस्य बताने का काम नहीं करता था,[1] परन्तु फिर भी सतवंत कौर ने अपने लड़की होने और आगा खां के शत्रुजीत का बेटा होने की बात को गुप्त ही रखा। वह अपना भेद अभी छिपाकर ही रखना चाहती थी।

: २२ :

श्री दरबार साहिब के दर्शनी द्वार और अकाल बुंगे के बीच जो बड़ा मैदान है इस जगह पर प्राचीन काल में एक बुंगा होता था। जिसे तोशाखाना का बुंगा कहते थे। इस बुंगे का अस्तित्व अकाल बुंगे के सामने के मैदान को एक ऐसा रूप दे देता था जिससे वहां गुप्त सभा हो सकती थी। इसी कारण गुरमता (विचार–विमर्श) यहीं होता था। चारों तरफ से रास्ते बंद कर दिये जाते थे और द्वार पर पहरा बैठा दिया जाता था। अन्दर केवल वे ही जा सकते थे जिनको आमन्त्रित किया गया हो और पहरेदारों को ऐसा बोल (गुप्त संकेत) ज्ञात होता था जिसे सुनकर ही वे अन्दर जाने देते थे।

जो सज्जन गुप्त संकेत बता देते थे वे ही गुरमता में सम्मिलित हो सकते थे। यह गुप्त संकेत अकाल बुंगे साहिब के अकाली जत्थे के जत्थेदार नियत करते थे।

अकाल बुंगे का अकाली वही हो सकता था जो नाम–वाणी का प्रेमी और साथ ही पूर्ण त्याग विराग की वृत्ति वाला हो।[2] घर–बार, धन–ऐश्वर्य से उसने न केवल सम्बन्ध तोड़ लिया हो बल्कि सचमुच

---

1. रहति नामा भाई नौपा सिंह में किसी तुरक को घर का भेद देने वाला सिख तनखाहीया (दन्डनीय अपराधी) कहा गया है।
2. निहंग कहावे सो पुरख दुख सुख मन्ने ना अंग। (रतन सिंह कृत–प्राचीन पंथ प्रकाश)

मुंह मोड़ लिया हो।[1] जो किसी वस्तु को अपना न समझता हो और धन–सम्पत्ति का अधिकारी न हो। परन्तु वे वैरागी संन्यासी नहीं होते थे। वे उच्च मन वाले, नाम का रसपान करने वाले, वैर–विरोध से रहित, निडर और शूरवीर होते थे। यदि इनसे पदार्थ की बात करो तो उचित उत्तर देंगे। यदि इनका सत्संग करो तो नाम का रंग चढ़ायेंगे। यदि उनसे स्नेह और प्यार करना चाहो तो वे काबू में नहीं आयेंगे, यदि लालच दो तो ठगे नहीं जायेंगे, यदि कामिनियों के कटाक्ष रूपी वाणों की वर्षा भी इन पर हो तो किसी एक कटाक्ष–रूपी वाण की नोक की चुभन भी नहीं खायेंगे।

इनकी रसना नाम के रस से भीगी होती है। प्रायः ये मौन रहते हैं। बोलते हैं तो ब्रह्मज्ञान के बारे में। यदि जगत की बात करो तो पंथ की रक्षा, पंथ को भलाई, पंथ के बचाव की योजना पर ही बात करेंगे। अन्य कोई बात छिड़े तो वे मौन रहते हैं। इनका वजूद

---

1. सच्चे अकाली साहसी और स्वतंत्र होते थें सभी से प्यार से मिलते थे, परन्तु उनसे घृणा करते थे जो अहं में चूर होते थे। उनके जीवन का आदर्श गुरूद्वारों का सुधार, मर्यादा और पवित्रता को कायम रखना, कौम के आचरण की रक्षा, दीन–दुखियों और शरणागतों की सहायता करना होता था। अपने कर्तव्य के लिए वे प्राणों की बाजी लगा देते थे। मौका आने पर सिर देने के लिए सदा तैयार रहते थे। वे लोग सम्पत्ति पर अधिकार के नियम को नहीं मानते थे। वे मकान, जमीन–जायदाद आदि पर किसी का भी अधिकार स्वीकार नहीं करते थे। उनके अनुसार सभी कुछ वाहिगुरू का है, सभी मनुष्य आपस में भाई–भाई हैं। इसीलिए प्यार से मिलकर निर्वाह करना चाहिए। जैसे जल और पवन पर सभी का अधिकार है ऐसे ही जमीन पर भी। जमीन की उपज पर भी सभी का अधिकार है। यह बात वे लूटने और खाने पीने के लिए नहीं करते थे। वे न कभी हाथ में आए धन को अपना समझते थे और न ही दूसरों के पदार्थों को उनका समझते थे। ऐसी अवस्था में उनका निर्वाह कठिन प्रतीत होता है किन्तु उनका आचरण ऐसा ही पवित्र था और वे बहुत अधिक फैला नहीं सके किन्तु अपने निर्वाह में तंग भी नहीं रहे।

अन्यधिक आकर्षण का केन्द्र होता है। तब लैक्चर, उपदेशकों के व्याख्यान नहीं होते थे। बस अकाल बुंगे आओ इन व्यक्तियों के दर्शन–मिलन से चुम्बकीय प्रभाव पड़ता था और मन गुरू–चरणों में लग जाता था। श्री दरबार साहिब के ग्रंथियों, सेवादारों का जीवन भी इसी तरह नाम के रस में लिप्त, शांति–सरोवर होता था।

'अकाली' वह जो एक अकाल को ही आश्रय मानता हो, 'अकाली' वह जो अकाल बुंगे के सेवक–जत्थे का सभसद हो। अकाल बुंगे की रचना छठे गुरू साहिब ने की और साथ ही अकाली की नींव भी रखी और यही वृत्ति उस समय धारण करवायी गयी। नाम का अभ्यास करने वाले, जिन्होंने धन–सम्पत्ति के मोह को त्याग दिया हो, वही अकाल बुंगे की सेवा कर सकते थे। अकाल बुंगे के सेवक अकाली होते थे।

'अकाली' नीले वस्त्रों को धारण करने वाले हैं। जब अमृत प्रचार हुआ और पंथ की रचना हुई तभी से नीले वस्त्रों को धारण करने की प्रथा भी चली जैसे कि–"इयों उपजे सिंह भुजंगिए, नीलांबर धारा।"[1]

सिंहों के अलग–अलग दस्ते भरती हुए। उन्हें अलग–अलग चिह्न और परख के लिए विभिन्न रंगों की पोशाकें दी गयीं। प्रमुख रंग नीला है। जिस जत्थे या फौज के दस्ते की पोशाक नीली थी, वह साहिबजादा फतह सिंह के नाम थी। एक दिन उनकी पोशाक और दोशाला इसी रंग के थे। बस तभी से उनके नाम पर सेना की एक टुकड़ी नीलाम्बरी रची गयी। उनका दुमाला खुले लड़ का होता था जो उस समय दस्तार के ऊपर की ओर से होता था।[2] यह रंग और वेश जो उस समय सेना के मुख्य अंग के साथ सम्बन्ध रखता था, बाद में अकाली और निहंग सिंहों का साम्प्रदायिक चिह्न बन गया[3] जिसकी व्याख्या इस प्रकार है–

1. भाई गुरदास सिंह।
2. दुमाला पहनने की प्रथा बाद में चली, ऐसा भी विचार है।
3. कई निहंग सिंह नीले पहरावे की प्रथा का स्रोत 'बाबा फिर मक्के गया नील वस्त्र धारे वनवाली' को मानते हैं।

जब भाई मान सिंह जी और भाई दया सिंह जी माछीवाड़ा में सतगुरू के पास पहुंचे और बाग में आराम से जाकर बैठ गये तब प्रसन्न होकर सतगुरू ने वर दिया[1] खालसा पंथ में आपकी तरह खुले स्वभाव वाले, निर्भय और सीधी–सादी पोशाक धारण करने वाले अनेक सिंह होंगे जिनकी वृत्ति अकाली (वाहिगुरू में एकाग्र) होगी और निरंकुशता निहंग जैसी होगी। मान सिंह नीलांबरी सेना के मुखिया होने के कारण उस समय भी नीली पोशाक में ही थे। फिर जब दशम गुरू के नीले वस्त्रों को जलाया तो एक टुकड़ा बचाकर उसे खंजर से बांध दिया।[2] संभवतः इसका तात्पर्य यही था कि शस्त्र–विद्या में इसकी फिर आवश्यकता पड़े तो खालसा उसका प्रयोग करे। जला देने से नीलाम्बर सदा के लिए तिरस्कृत मत समझे। ऐसा भी कहा जाता है कि जब नीले वस्त्र फाड़–फाड़कर जलाये तो एक टुकड़ा अग्नि से बाहर गिर गया। धर्मपरायण मान सिंह पास ही खड़े थे, उन्होंने उस टुकड़े को गुरू साहिब से मांग लिया और अपनी दस्तार में खोंस लिया।[3] इसे दूसरे प्रकार के दुमाले का प्रारंभ और नीली पोशाक के सम्प्रदाय का प्रारंभ समझाा जाता है। ऐसा लिखा मिलता है कि एक नीला टुकड़ा सतगुरू ने स्वयं मान सिंह जी को दिया था। उस समय वे प्रिय सतगुरू के चरणों के प्यारे, पूर्ण त्यागवृत्ति वाले और ईश्वर में विश्वास रखने वाले तथा उनकी इच्छा को स्वीकार करने वाले हो रहे थे। इन में वह जीवन का भाव–बर्ताव और रंग था जो पूर्ण प्रेमी, पूर्ण त्याग और पूर्ण नाम का पूर्ण अभ्यास करने वाले में आवश्यक है। मान सिंह ने दुमाला

---

1. होइ प्रसन्न वर देवत जोवैं। पंथ खालसे महि तुम होवै ॥
   तुम सम बेख सुभाउ बिसालीं नाम निहंग अनेक अकाली ॥
   (सू॰, प्रा॰ रू॰ 6, अंसु 44)
2. सगले फूक चुके नीलांबर तनक तिसि तै राख लिया। जमधर संग बंधि करि सोऊ पंथबेख हित सभ न छया।
   (सूरज प्रकाश ऐन 1 असु 5 छन्द 40)
3. तवारीख गुरू खालसा भाग 13 साखी 1316 का अंत।

सजाकर रखा और प्रिय जनों ने उनका अनुकरण किया। अब वह त्याग–वृत्ति जो अकाल बुंगे के अकालियों में होती थी, इस प्रकार परिवर्तित हो गयी समस्त पंथ में और इन लोगों का नाम हो गया निहंग। निहंग फारसी में मगरमच्छ को कहते हैं और तात्पर्य है–अतीव निर्भय, किसी भी भय के आगे जिसकी आंख तक न झपके। निहंग का अर्थ यह भी है कि जो दुःख–सुख दोनों के समय अपने सिद्धांतों पर दृढ़ रहे। लगता है निहंग का मूल पद है–निःसंग–निहंग जो अकेला ही विचरता है।[1] वह पारिवारिक सम्बन्ध अर्थात् स्त्री आदि से स्वतंत्र होकर साधुओं की तरह विचरता है। ऐसा कहा जाता है कि अकाल बुंगे के अकाली छठे सतगुरू से लेकर दसवें सतगुरू के समय तक उनके आदेशानुसार सेवा करते रहे परन्तु उनको उतनी जिम्मेदारी के काम नहीं करने पड़ते थे जितने कि दशवें पातशाह के अन्तर्धान होने के बाद करने पड़े। तब वे काम के रस में लीन और शुभ और सुन्दर के त्यागी सेवक और तख्त साहिब की सेवा करने वाले होते थे। अकाल बुंगे पर भुजंगियों[2] का पूरा अधिकार जीतमल्लियों, बंदियों, चुवंदियों आदि के हट जाने पर हुआ। तब वे अकाल पुरखईए नाम से कुछ समय तक प्रसिद्ध रहे हैं। इनका कोई खास वेश नहीं था और दसवें पातशाह के अन्तर्धान के बाद बाबा फतह सिंह के नाम की सेना वाले श्री मान सिंह के सम्प्रदाय के निहंग और अकाली सिंह लगभग एक ही हो गये और दोनों के लिए एक ही पद का व्यवहार होने लगा परन्तु दुमाले का अन्तर जारी रहा। उपर्युक्त वार्णित गुण बुंगे के अकालियों में थे और वे तख्त साहिब की सेवा में लगे रहते थे। अन्य स्वतंत्र रूप से विचरने वाले अकाली पंथ के विभिन्न कार्यों से इधर उधर घूमते रहते थे। कभी–कभी सभी अकाली इकट्ठे हो जाते थे। स्वतंत्र रूप से विचरने वालों का मानो 'बहुदक संन्यास'[3] था और बुंगे

1. संस्कृत निःशंक अर्थात जो मोह माया से अलिप्त हो।
2. अर्थात खालसा का।
3. जगह–जगह का पानी पीने वाला बहूदक अर्थात जो घूमता रहे।

के सेवकों का, जो कभी–कभी बहूदक संन्यास में से चुने जाते थे, 'कुटिर संन्यास' था[1]। अन्तर इतना ही था कि ये संन्यासी त्याग करके स्वयं को कौम, देश और पंथ की सेवा में लगाते थे। वे अन्य संन्यासियों की तरह जंगलों या पहाड़ों की बर्फों में नहीं गलते थे।[2] विवाहित जीवन–यापन उनके लिए वर्जित नहीं था पर वे अविवाहित ही रहते थे। इनकी जत्थेदारी का ढंग इस प्रकार से था–प्रत्येक जत्थे का एक जत्थेदार होता था। जत्थेदार का गुण उसकी निडरता और उसका नाम–रस होता था। इसे जत्थेदार या बहीरिया भी कहते थे। अपने जत्थे का वह गुरमुख और सरदार होता था। सारा प्रबन्ध उसी के हाथ में होता था। सभी उसके आदेशों का पालन करते थे। जत्थेदार को कभी कभी गुरदेव सिंह नाम से भी सम्बोधित किया जाता था। अमृतपान करवाना भी इसका काम होता था। यदि सभी जत्थेदार के विरोधी ही हो जायें तो नये जत्थेदार की नियुक्ति की जाती थी, जत्थेदार की कभी अवहेलना नहीं की जाती थी। ऐसी बात बहुत कम होती थी क्योंकि वे पूर्ण त्यागी, नाम रस में लीन होते थे इसलिए स्वार्थ और पद का मोह आदि द्वेष जो जत्थों में बार बार भेदभाव उत्पन्न करें विद्यमान ही नहीं थे। चारों ओर मुसीबतें थीं। आपस में प्यार था, इसलिए ऐसी घटनाएं उनमें बहुत कम होती थीं। प्रायः निहंग सिंह वहीर या जत्थे में नहीं रहते थे, अकेले ही घूमते रहते थे। गुरूद्वारों की सेवा, देखभाल में ही वे अपना जीवन सफल मानते थे। अकाली और निहंग सिंह अब एक ही अर्थ का सूचक हो गया है। प्यार से मिली भेंट से ही इनका निर्वाह होता था या गुरूद्वारों के लंगर से भोजन करते थे। ये लोग मांगते नहीं थे और किसी भी दशा में किसी के आगे हाथ नहीं फैलाते थे। सफर में होने पर यदि पास कुछ नहीं है और भोजन का समय है तो किसी भी शहर या गांव की गली में चले जाते थे। किसी भी घर में घुसकर

1. एक ही स्थान पर रहने वाला फकीर अर्थात कुटिचर
2. केवल पंथ के लिए और उपकार के लिए वे युद्ध भी करते थे परन्तु अपने लिए रियासत की स्थापना नहीं करते थे।

खाने भर का अन्न, भोजन उठा लेते थे। हीरे मोती पड़े रहे परन्तु उनकी तरफ देखते भी नहीं थे। यहां तक कि उस समय के भोजन से अधिक कुछ नहीं उठाते थे। लोगों में उनका बहुत सम्मान था। जब लोगों को पता चलता था कि निहंग आये हैं जो घर के द्वार खोलकर उनके स्वागत के लिए घर के बाहर आकर हाथ जोड़कर खड़े जो जाते थे। सभी चाहते थे कि वे उनके घर में घुसें। जिस घर में वे चले जाएं, वह अपने अहोभाग्य समझता था। तभी से यह कहावत प्रसिद्ध है–'आये नी निहंग, बूहा खोल दे निशंग' (निहंग आये हें, निसंकोच द्वार खोल दो।) इसका भाव यह है कि वे उच्च विचारों वाले लोग हैं, इनको रोको नहीं बल्कि खुले दिल से अन्दर आने दो, वे आपके घर के माल, धन–दौलत, रूप–यौवन किसी के भी लोभी नहीं। निर्वाह के योग्य अन्न ग्रहण करेंगे और आपकी कमाई को सफल बना जायेंगे।

इसका कारण यही था कि निहंग सिंहों में धन–सम्पत्ति का त्याग उनका मुख्य गुण था। वे न तो पदार्थों के मालिक बनते थे और न किसी अन्य को पदार्थों का मालिक समझते थे। सभी माल, अन्न वस्त्र पदार्थों का मालिक उनकी दृष्टि में वाहिगुरू ही था। वे जरूरत के समय जब किसी के घर से अन्न मात्र स्वीकार करते थे, तब भी उस घर के अन्न को उसका समझकर नहीं छूते थे बल्कि दाना–पानी गुरू का समझकर ईश्वर पिता के सांझे भण्डार में से भूख मिटाने के लिए अन्न स्वीकार करते थे। वे जबरदस्ती भी कभी नहीं करते थे। जबर (अत्याचार) सहना और जबर करना, वे इन दोनों से ऊंचे थे। निहंग सिंहों के पास कच्छे तो दो होते थे, परन्तु चोला, दस्तार, चादर आदि कभी भी दो नहीं होते थे। दिन का अन्न प्राप्त कर लेने के बाद रात को अन्न वे साथ नहीं रखते थे। इसी कारण इनका बाद में विहंगम[1] नाम पड़ गया अर्थात् पक्षियों की वृत्ति वाले। जहां भी जिस समय दाना मिल गया चुग लिया, जहां रात पड़ गयी वहीं ठहर गये। इन सभी त्याग की बातों और इनकी पूर्ण

1. श्वेत वस्त्रधारी त्यागी सिंह को भी विहंगम कहा जाता था।

स्वतंत्रता का आधार नाम था अर्थात् आत्म जीवन (आध्यात्मिक जीवन) मूल था। 'पदार्थों के बंटवारे' और 'भौतिक एकता' आदि का विचार इनका मूल नहीं था। आत्म–जीवन से रहित, उच्च विचारों से विलगता, केवल माया का आकर्षण या राजसी भूख वाली सांसारिक वृत्ति इन अकालियों का आदर्श कभी नहीं थी।

निहंग सिंहों में सुखनिधान (भांग) का रिवाज कष्ट के जीवन, थकान और शारीरिक दुखों से छुटकारा पाने के लिए पड़ा था। इसीलिए उसका नाम सुखनिधान पड़ा था। इसका प्रयोग नशे के रूप में होने लगा और यही उनके पतन का कारण बन गया। बाद में जायदाद वाले (सम्पत्ति–धारी) निहंग सिंह भी हुए, परन्तु ऐसा उनके पतन के समय में ही हुआ और यह पतन महाराजा रणजीत सिंह के समय से कुछ पहले से ही शुरू हो गया था। महराजा रणजीत सिंह के समय आदर्श निहंग भी अनगिनत थे। आदर्श निहंग उसके बाद बहुत थोड़े रह गये। बाबा नैन सिंह जी और बाबा फूला सिंह जी महाराजा रणजीत सिंह के समय के श्रृंगार थे।[1]

जिस समय का हम वर्णन कर रहे हैं, निहंग सिंह और अकाल बुंगे के अकाली अपने आदर्श पर खरे थे। हमने पहले बताया है कि इनका एक काम था अकाल बुंगे रहना, पंथ की आवश्यकताओं का ध्यान रखना। जब कोई जत्थेदार पंथ सम्बन्धी कोई समस्या बता जाता तो वे गुरमते (विचार–विमर्श) के लिए सभी को आमन्त्रित करते थे। पंथ की सर्वश्रेष्ठ जत्थेबंदी का नाम 'गुरमता' था। यह पंथ का एक आश्रम था। उनका कार्य यह था कि अकाल बुंगे के अकाली सभी जत्थेदारों, जिम्मेदार सरदारों, ग्रंथियों, प्रसिद्ध धार्मिक बुजुर्ग (वृद्ध) लोगों तथा अन्य महत्वपूर्ण सिखों को आमन्त्रित करते थे। नियत समय पर सभी उपस्थित हो जाते थे। यदि कभी दो सिख

---

1. निहंग और अकाली सिंहों के जत्थे युद्धों में भी भाग लेते थे और प्रायः कठिन युद्ध इन्हीं की सहायता से जीते जाते थे। नुशहरे का मुसलमानी जहाद का युद्ध जो संसार के विकट युद्धों में माना जाता है, अकालियों के नेतृत्व और अदभुत साहस का एक उतकृष्ट उदाहरण माना जाता है।

जत्थे आपस में लड़ भी पड़ते थे (यह मिसलों के समय की बात है) तो भी 'गुरमता' का आमन्त्रण मिलते ही लड़ाई को बन्द करके दोनों चल पड़ते थे और न ही एक दूसरे पर वार करते थे। गुरमते के नियत समय पर सभी अकाल बुंगे के सामने एकत्र हो जाते, सभी रास्ते बंद हो जाते, मैदान में दीवान सजता, कीर्तन होता, कढ़ाह प्रसाद बंटता सभी खाते।[1] फिर अकाली जत्थेदार सिंह अरदास करता इसके बाद प्रत्येक उपस्थित सज्जन उठकर अकाली जत्थेदार के सामने आता और कहता कि "मैं सच्चे वाहिगुरू सच्चे सतयुग की उपस्थिति में पंथ के कल्याण के लिए आया हूं। मेरी निजी लाभ–हानि, लोभ–लालच मेरे मन में नहीं है। किसी भी प्रकार की लोभ–लालसा मेरे विचारों में कोई खोट नहीं डाल रही और न ही वह किसी प्रकार मेरे विचारों में सम्मिलित हो रही है।" इस प्रतिज्ञा के बाद फिर अरदास होती और कार्यवाही आरम्भ की जाती। विचार विमर्श करने के बाद निर्णय लिया जाता। जो फैसला होता उसे अकाली जत्थेदार सभी को सुना देता। फिर सभी अपने–अपने स्थान पर चले जाते। फिर अकालियों का यह कर्तव्य हो जाता था कि उस फैसले को स्वीकार करें। अकालियों का पवित्र जीवन, नाम की सत्यता और स्वार्थ हीनता ऐसे गुण थे कि जिनके सामने पंथ का प्रत्येक घटक सिर झुकाता था और बरबस झुकता था। फौज और

---

1. ऐसा भी विचार है कि उस प्रसाद में एक एक 'भूसरी' भी होती थी। भूसरी कहा जाता है उस रोटी को जिसे शक्कर डालकर पकाया जाता है। एक ही स्थान पर बैठकर मिल–जुलकर खाने से जाति–भेद और ऊंच–नीच और जाति–अभिमान आदि को मिटाने और परस्पर प्रेम उपजाने का आशय था। सं॰ 404 गुरू नानक साहिब, 1872 ईसवी के दशहरे के दिन यह (सिंह सभा की) जत्थेबन्दी अमृतसर में आरंभ हुई। पहला विचार–विमर्श मजीठिया के बुंगे पर होता रहा और यह गुरू के बाग में पहला समागम कर आरम्भ हुई। मंजी साहिब समागम का ठिकाना अब तक सिंह सभा के लिए प्राप्त है। पहले प्रधान सरदार ठाकुर सिंह जी सन्धांवालिये थे।

तोपों के जत्थे इन विहंगम वृत्ति वालों के आदेश के आगे सिर झुकाते थे। ऐसा कभी नहीं हुआ कि गुरमता के निर्णय के विपरीत कोई चला हो। इस गुरमता की मर्यादा का प्रारम्भ चमकौर से हुआ अर्थात् उस कष्टपूर्ण समय में हुआ। हजूर (दशम गुरू जी) सतगुरू ने स्वयं सिंहों को इसकी पूरी विधि सिखलायी।

श्री गुरू गोबिन्द सिंह के ज्योति–जोत समा जाने के बाद पहला गुरमता बाबा संतोख सिंह की जत्थेदारी में हजूर साहिब में हुआ था और अन्तिम गुरमता नुशहरे की लड़ाई में महाराजा रणजीत सिंह की जत्थेदारी और बाबा फूला सिंह अकाली के प्रबन्ध में हुआ था। इसके बाद फिर गुरमता नहीं हुआ। राज गंवाकर पंथ को ऐसी चोट पहुंची कि मानो मूर्छित होकर गिर पड़ा हो और फिर करवट ही न ले सका। स्वार्थ और पतन, जिससे सतगुरू ने उबारा था, फिर घर कर गये। कितना ही समय पंथ इसी मूर्छित अवस्था में रहा और अकाली और ढाडी दोनों आवश्यक सम्प्रदायों को खोकर फिर सिंह सभा की जत्थेबंदियों में उठा।[1] अब कुछ पूर्वी और विशेष रूप से पश्चिम के सिद्धांतों पर कुछ टूटी फूटी जत्थेबंदी चल रही है और कभी–कभी तो पश्चिम की निम्न से निम्न नीतियों रीतियों का प्रयोग भी इन्होंने किया है। कई बार अच्छी जत्थेबंदी भी हुई है और उन्होंने कुछ अच्छे काम भी किये हैं, परन्तु गुरमते को जिलाने के साधन नहीं मिले हैं। अर्थात् फिर 'गुरमता' नहीं हो पाया बल्कि 'गुरमता' का अर्थ ही बदल गया है।

---

1. ढाडी सम्प्रदाय तो सिखों में से कुछ इस प्रकार खो गया है कि आज सिखों का ढाडी नाम ही पराया लगता है और निहंग सिंह और अकाली गिनती और बल दोनों में ही इतने कम हो गये कि अन्त में अकाल बुंगे पर महन्त और पुजारी रह गये थे। निहंग सिंह और भी घट गये हैं। अब सिंह सभा के विचार वाले लोगों ने अकाली ज़िम्मेदारी पुनः सजीव करने का प्रयास किया है किन्तु निहंग सिंह अलग हो रहे हैं एवं दिन–प्रति–दिन घट रहे हैं। निहंग सिंहों के सम्प्रदाय को नष्ट होने देना सिखों के लिए बहुत हानिकारक है और नये अकालियों को पुराने अक़ालियों के उच्चादर्श तक न ला पा सकना तो और भी घाटे वाली बात है।

लोग अब 'गुरमते' का अर्थ प्रस्ताव (रिजोलूशन) से लेते हैं और इस सीमित अर्थ में ही इस पद का प्रयोग करते हैं। किसी रिजोलूशन को मत तो कहा जा सकता है परन्तु 'गुरमता' नहीं। क्योंकि गुरमता तो एक जत्थेबंदी है, एक उच्च आश्रम है, पवित्रता, नाम और त्याग की नींव पर रचित एक मंदिर है, एक मर्यादा है, जिसमें स्वार्थ, लाभ–हानि, पक्षपात, ईर्ष्या–द्वेष तथा अन्य विधियों से दूसरे को नीचा दिखाने और अपने मंसूबे पूरे करने की कोई गुंजाइश नहीं है। भौतिकवादी पश्चिम के जत्थेबंदी के ढंग और हैं। उनका प्रयोग शुभ मनोरथों के लिए भी ईमानदारी से हो सकता है परन्तु हमारे देश में वह प्रायः पक्षपात और धड़ेबंदी के ढंग से चलता है और वह कई बार सत्य और उपकार का मार्ग छोड़ स्वार्थ और निजी लाभ के मार्ग को चल पड़ता है। यह प्रायः ऐसे होता है जैसे कि किसी बादशाह के अनैतिक आदेश के समय उसके अहं को उकसा कर कुछ लोग अपना मतलब सिद्ध कर लेते हैं, वैसे ही इस पश्चिमी जत्थेबंदी के ढंगों के प्रायः आम लोगों के अहं को उकसा कर शीघ्र उत्तेजित होने वाली संवेदनाओं को अपने स्वार्थ के लिए प्रज्जवलित करके अपनी गरज को पूरा करने का यत्न होता है और कई बार इस विधि में ईमानदारी, सच–झूठ आदि की भी परवाह नहीं की जाती है। गुरमता उच्च मनों का, पवित्र मनों का, स्वार्थरहित मनों का, सांझे पंथ के लाभ–हानि का, स्व के 'मैं मेरी' के मल से रहित (धुला हुआ) केवल पंथ के भले के विचार से चलाये गये आश्रम और मर्यादा का नाम था।

ऊपर हमने गुरमत का हाल बताया है। अकाली और निहंग का संक्षिप्त समाचार दिया है, अकाल बुंगे, वहीरों वाले, गुरूद्वारों की सेवा करने वाले अकालियों के बारे में लिखा जा चुका है। अब कुछ ऐसे अकालियों की ओर ध्यान करते हैं जो कि आध्यात्मिक विधि का अनुसरण कर, पूर्ण पद को प्राप्त कर सभी सांसारिक संबंधों से ऊपर उठ कर जीवन व्यतीत करते थे। इस प्रकार का अकाली अकेला विचरण करता हुआ अपने सम्प्रदाय के सभी गुणों को धारण किये हुए होने पर भी शरीर से कार्य करता था। इस प्रकार का एक अकाली एक विदेशी इतिहासकार कनिंघम ने अपनी आंखों से देखा था जिसके सम्बन्ध में उसने लिखा है–

"एक बार लेखक ने एक अकाली देखा जो सतलुज से लेकर कीरतपुर तक की बिखरी घाटियों के बीच की सड़क की मरम्मत कर रहा था। वह आमतौर पर दुनिया से उपराम रहता था। लोग उसका बहुत सम्मान करते थे और उसके लिए रोटी–कपड़ा ऐसी जगह छोड़ आते थे, जहां से वह आवश्यकता के समय स्वयं ही ले ले। उसके निश्छल एवं हृदय से काम करने वाले आचरण को देख एक हिन्दू नवयुवक गड़रिए पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने भी अकालियों वाली पोशाक पहल ली। वह अकाली का जिक्र सम्मानपूर्ण भय के साथ करता था।"[1]

: २३ :

जिस समय की बात हम लिख रहे हैं, पंथ ने जत्थेबंदी की मर्यादा–गुरमता–के बल पर ही शानदार सफलताएं प्राप्त की हालांकि वे बहुत कम थे, चारों ओर से दुखों कष्टों से घिरे हुए थे, फिर भी तबाह होने से बचे, और फल–फूल कर जगत की सेवा करते रहे।

हमारी कथा की कड़ी जहां तक पहुंची है, उस समय भी पंथ अनेक विपदाओं से घिरा हुआ था। अहमदशाह के फिर से आक्रमण करने की पक्की सूचनाएं मिल रही थीं। उधर मराठे पंजाब में फैल रहे थे। उनकी गतिविधियां विशेष रूप से ध्यान–आकर्षण का कारण बन गयी थीं। इन दोनो शक्तियों की टक्कर में पंथ को जीवित रखना था और इसके लिए सभी आवश्यक प्रबन्ध करते थे। इसके अतिरिक्त पंथ के कई आन्तरिक मामले थे जिनको सुलझाना

---

1. इस वर्णन से स्पष्ट है कि अकाली अन्न, वस्त्र आदि की परवाह नहीं करते थे। दुनिया से विरक्त, कल्याण के कामों में लगे रहते थे। यह बात पश्चिम के लोग जिन्होंने अकालियों को समीप से और उन से व्यवहार करके नहीं देखा, नहीं समझ सकते कि उनमें नाम और वाहिगुरू प्रेम की जीवित लौ जारी है। इसी कारण उनमें त्याग, विराग और सेवा के गुण इतने प्रबल हैं। कई बुरे आदमी अकाली नाम की ओट लेकर लूटमार करने वाले भी निकल आते हैं। उनके कामों का दोष कई बार इस सम्प्रदाय के सिर मढ़ने की कोशिश की गयी है। अब नये अकालियों और निहंग सिंहों में पुरातन उच्च आदर्श के प्रचार करने की आवश्यकता है।

ज़त्थेबंदी को दृढ़ करने के लिए आवश्यक था इसलिए गुरमता का आयोजन किया गया। चारों तरफ से प्रधान इकट्ठे हुए। गुरमता प्रारम्भ हुआ। तीन दिन से समागम प्रतिदिन जुट रहा था। यह सही है कि व्यर्थ की बातों में समय नष्ट नहीं हो रहा था किन्तु मामले अनेक और नाजुक थे। हां, आज गुरमता फिर हो रहा था। तीन दिन की प्रतिदिन की बैठक में, पंथ के इस इकट्ठ ने सब कुछ सुलझाा लिया था। आज चौथा दिन था, छोटे--छोटे मामले तय हो रहे थे। पंथ से जो बिछुड़ गये हैं, उनके परिवारों को सम्भालने के लिए योजनाएं बनायी जा रही थीं। ठीक इसी समय लद्धा सिंह, आगा खां और सतवंत कौर पहुंच गये। वे इस समय खालसा की पोशाक में थे।

जब इन्होंने श्री दरबार साहिब जी के सरोवर श्री अमृतसर के किनारे आकर श्री हरिमन्दिर साहिब के दर्शन किये तो चारों के हृदय आश्चर्य एवं विस्मय से झुक गये। चरों सच्चे हृदय से पवित्र धरती पर झुक गये। सतवंत कौर सख्त कैद में रही थी, सैकड़ों कोस की दूरी पर फेंक दी गयी थी, उसे भला क्या आशा थी कि वह जीते जी हरिमन्दिर के दर्शन कर सकेगी? आज देखिए उस अदृश्य परन्तु पूर्ण न्यायकारी शक्ति के अधिकारी की कृपा से आज देखिये उस वृद्ध पंथ के प्यार का परिणाम जो कि अपने एक घटक को पूर्ण के समान प्रेम करता है, सतवंत के लिये असम्भव भी सम्भव हो गया है, न होने वाला आंखों के सामने हो रहा है। इस दर्शन ने आन्तरिक उमंग, प्यार, विराग, चाव और कृतज्ञता के भाव को उभार कर ऐसा रंग चढ़ाया है कि वह अलौकिक रस के समुद्र में डूबने लगी है।

हरिमन्दिर का दर्शन करना लद्धा सिंह के सम्पूर्ण जीवन की अभिलाषा थी। 'इन दर्शनों में ही वह समा जाये' यही उसकी प्रार्थना थी। पंजाब की विषम स्थितियों और विदेश से पंजाब तक आने के मार्ग की कठिनाइयों ही उसके लिए बाधाएं बनती रही थीं परन्तु आज किसी अलौकिक दया ने उन सब कठिनाइयों को काट कर एक ओर फेंक दिया था। आज जिज्ञासु का 'पुजारी मन' अपने आराध्य को समर्पित हो गया है। पुजारी आराध्य के चरणों में सिर झुकाकर 'स्व' को उस पर न्यौछावर करके मस्ती में बेसुध पड़ा है।

आगा खां, .जी हां, आगा खां की भावना आश्चर्य की सीमा का उल्लंघन कर गई है। उसने कभी सोचा भी नहीं था कि वह पंजाब की भव्य सुन्दरता का दर्शन करेगा। यह अपार सुन्दरता उस की अपनी थी जो कि सब उसके बचपन में ही छीन ली गई थी। उसका केवल शरीर ही नहीं बल्कि मन, विचार, श्रद्धा, प्यार सभी कुछ अनजान में ही उससे अलग कर दिये गये थे। इस सबका ज्ञान उसके लिए बिजली की चमक के समान था। ऐसी चमक के समान जो भाद्र मास की अमावस्या की रात को आसमान में छायी काली घटा में से चीरती चली जाती है–बिना गरजे और बिना आवाज किये। यह अपूर्व एवं अद्‌भुत सौन्दर्य उस पर विशेष प्रभाव डाल रहा था। दर्शन करते ही उसकी पलकें झुपकने से रूक गयीं, मुंह खुला रहा गया, दोनों हाथ ऊपर उठ गये और हथेलियां सिर की सीध में मन्दिर ओर गयीं और कुछ ही पलों में वह ऐसे ही देखता–देखता सतवंत की तरह प्रणाम में झुक गया और अम्मा सांई जी, उसका तो पालन–पोषण ही सिख–मंडल में हुआ था, सिख प्रियजनों को प्यार करने वाली, सिख भावनाओं से भरपूर अपने प्रिय की अन्तिम इच्छा को पूरा करने के लिए जिसने वर्षों की तपस्या की, मौत का साक्षात्कार करके भी जो ज़ीती रही, उसने अपने धर्म–मन्दिर के दर्शन किये। अपने निराश जीवन के बाद आज उसने खिले हुए सूर्य को देखा तो कृतज्ञता और प्रेम के भावावेग में वह सौन्दर्य–रूपी समुद्र के चरणों पर उस प्रकार लवलीन हो गयी जिस तरह बर्फ पानी में लय हो जाती है। चारो ईश्वर–आराधना में झुके हुए हैं। अद्‌भुत अलौकिक रस में मदमस्त, किन्हीं आन्तरिक भावों में डूबे हुए हैं। हे सुन्दर प्रिय जनो, ऐसे ही भाव में डूबे रहो ! इसी भाव में डूबे रहना ही तो जीवन की सच्ची सार्थकता है। यह वह स्वाद है जिसे व्यक्ति भ्रम से अन्य स्वादों में ढूंढ़ता फिरता है, यही स्वाद है जो आज सीधा आपको मिला है। हां, ऐसे ही भाव–विभोर दशा में मग्न पड़े रहो!

समय तो अपनी गति से बीत हा था परन्तु आनन्द–विभोर मनों को बीतता अनुभव नहीं हुआ। कुछ समय के बाद वे उठे और ईश्वर के प्रति कृतज्ञता अनुभव करते हुए सरोवर के किनारे बैठ गये।

थोड़ी देर बाद उन्होंने देखा कि उनके पीछे एक सिंह खड़ा है। सतवंत ने पीछे मुड़कर देख ध्यान किया और पहचान लिया कि वही सिंह जी हैं, वही गुरमुख हैं जो काबुल में सतवंत को मिले थे और जिनकी कृपा से ही वह पंजाब पहुंच सकी है। सभी सिख कैदियों को उन्होंने वहां खोज निकाला था, जो सतवंत से काबुल में बिछुड़ गये थे क्योंकि उन्हें वहां कुछ अन्य काम करने थे परन्तु वह सभी काम करने के बाद भी उनसे पहले यहां पहुंच चुके थे। पंथ में गुरमता होने वाला था। वह आध्यात्मिकता और अपने प्यार के कारण पंथ में सम्मान की दृष्टि से देखे जाते थे। इसलिए उनका गुरमता में पहुंचना जरूरी था। उस समय न डाक थी, न रेल और न तार। फिर भी उनको अफगानिस्तान में गुरमता की गुप्त खबर पहुंच गयी कि गुरमता में उनका पहुंचना आवश्यक है।

सिंह जी ने सतवंत कौर को अलग ले जाकर रास्ते का सारा हाल पूछा जो उसने सुना दिया। अब सतवंत कौर से ही उनको पता चला कि यह जो सहजधारी–सा दिख रहा है, वास्तव में शत्रुजीत सिंह का लड़का है और वह अनेक कठिनाइयों, मुसीबतों का सामना करता हुआ फिर से अपने घर आ गया है। वह सिखी खून की पवित्रता का उदाहरण बनकर आया है। सोलह–सत्रह साल अलग कौम, अलग शिक्षा में पलकर भी, अपने स्रोत को जानते ही अपने देश की ओर चल पड़ा और एक पल की भी देर नहीं लगाई। यह सब सोचकर नाम–रस में लिप्त वह व्यक्ति भी द्रवित हो गया। आंखें में आंसू आ गये। अलौकिक आनन्द में पलकें झुक गयी–"धन्य गुरू नानक ! ध न्य गुरू नानक !" की आवाज हृदय में उठी। कोई आधा घड़ी वह इसी तरह अगम्य अलौकिक आनन्द में मुग्ध रहा। फिर उसने आंखें खोलीं और कहा–"धन्य गुरू नानक ! कलगियां वाले दाता तू धन्य है !! तू धन्य है !! तू धन्य है !!! साहिब श्री गुरू गोबिंद सिंह तू धन्य है ! तू धन्य है !! तू धन्य है !!!"

फिर सतवंत कौर ने उनके सामने आगा खां को पेश किया और उसे बताया कि यह गुरमुख जी हैं, दाता जी हैं, और पंथ में उच्च माने जाते हैं आत्म–रसलीन रत्न हैं। कठिन विपदा के समय यह स्वयं को स्वेच्छा से न्यौछावर करने के लिए तैयार रहते हैं। दुष्कर कार्यों

में भी सफलता प्राप्त करते हैं। अनेक भाषाओं के विद्वान हैं। विहंगम वृत्ति में रहते हैं। प्रायः जब किसी विकट कार्य के लिए जाते हैं तो बालों को खोलकर ही विचरते हैं। जब कहीं दूर मुसलमानों के देश में विभिन्न कामों के लिए जाते हैं तो लोग इनके खुले घुंघराले बालों को चंदन जैसे शीतल चेहरे के आस–पास लटकते देखते हैं तो इन्हें 'बाउरिया वाला बाबा जी' कहते हैं। सिखों में इनका उच्च स्थान है। बलोचिस्तान, गजनी, कंधार, काबुल, जलालाबाद, खैबर तथा कई अन्य स्थानों पर अनेक मुसलमान इनको अपना पीर मानते हैं। यदि वातावरण शांतिपूर्ण हो तो यह एकान्त वन्दना के रस में मग्न रहते हैं और मौज में हों तो इस रूप में चलते हुए अनेक विकट कार्यों को कर डालते हैं। शत्रुजीत सिंह के परिवार की खोज में इन्होंने बहुत यत्न किये थे परन्तु पता नहीं लगा पाये थे। तब भी यह कहा करते थे कि शत्रुजीत सिंह के परिवार का कोई न कोई आदमी अभी भी अफगानिस्तान में जीवित है। अब देखो, इनके द्वारा प्रेरित सतवंत कौर इस पंथ–चंद्रमा का चन्द्र–अंश अपने साथ ले आई है।

अब वे चारों को लेकर गुरमता के दीवान की ओर चले। रास्ते में रूकावट थीं अन्दर केवल वही जा सकता था जो 'गुप्त बोला' (गुप्त शब्द) जानता हो। इसलिए गुरमुख ने चारों को गुप्त शब्द बता दिया कि आज का गुप्त शब्द 'रजतपण' है। तीन स्थानों पर पहरेदार होंगे। उनके कान में 'रजतपण' कह देना और मेरे पीछे अन्दर चले जाना। इसी तरह हुआ। पहरेदार चारों को तीखी नजर से देखते, उन पर शक करते परन्तु गुप्त शब्द (बोलने में यह रूप 'गोबोला' था) सुनकर सहम जाते फिर गुरमुख जी का इशारा देखकर निश्िंचत हो अन्दर जाने देते थे। जब वे अन्दर दीवान में पहुंचे, उस समय ज्ञानी दरबारा सिंह जी शब्द की कथा समाप्त कर चुके थे और अब समाप्ति की अरदास ही शेष थी। तभी गुरमुखजी ने, अरदास से पहले ही, चबूतरे पर खड़े होकर जोर से 'सत्य श्री अकाल' का जयकार गुंजाया और फिर सारे पंथ को बधाई दी। 'खालसा जी ! आज वह बधाई है जिस पर सारे पंथ का खून सच्चे प्रेम की खुशी से उछलने लगेगा। वह मंगलमय बात यह है कि प्यारे शत्रुजीत सिंह का बेटा मिल गया है और आज पंथ के चरणों में आ गया है और साथ ही

वीरता की देवी सतवंत कौर कैद के बन्धन काट अपनी लाज, धर्म, केश और बंदगी बचाकर वापस पहुंच गयी है। इस खबर ने लोगों को उत्साह और उमंग से भर दिया और वे अलौकिक चमत्कार से जगमगा उठे। सत्य श्री अकाल के जयकारों से उस गुप्त मंडल का आकाश गूंज उठा। जब सभी चुप हो गये तो गुरमुख जी ने सतवंत कौर को अपना वृत्तान्त सुनाने के लिए कहा सतवंत कौर ने अपने दुख, सिखी भाव से उन कठिनाइयों का सामना, प्रभु–कृपा, फिर गुरमुख जी का प्यार, नामदान और फिर शेष कथा कि वह कैसे आगा खां से मिली, सुना दी।

आज का सम्मेलन पंथ के जत्थेदारों, चुने हुए महापुरूषों, विद्वानों, शूरवीरों और युद्धवीरों का था। प्रमुख पुरूषों का दीवान ही गुरमता कहलाता था। उन सभी बहादुर और श्रेष्ठ सज्जनों के हृदय सतवंत के दुखों और उसके वीरतापूर्ण कारनामों से भर गये। अपनी कौम और सिखी विश्वास की उच्चता पर गर्व कर, उनके नयन भर गये। इस समय गर्व का, स्वाभिमान का समुद्र हिलोरें ले रहा था, जोश का भावावेग उत्साह बनकर उमड़ रहा था, आर्द्र नयन चमक उठे–उदासी से नहीं बल्कि कृतज्ञता और स्वाभिमान से कि वे किस विद्वत्ता एवं शक्ति के मालिक हैं। हम साहिब द्वारा रचित खालसा हैं। न केवल हमारे विचारों में बल्कि हमारे खून में उसने कैसे प्राण फूंक दिये हैं कि हमारी लड़कियां कठिन से कठिन विपदाओं में फंसकर भी जलते हुए कोयले की तरह जो शीत की रात में अपने लघुतम रूप में भी जलता रहता है और गर्मी देता है, हारती नहीं है। न कठिनाइयां, न भय, न निराशा का अन्धकार, न लोभ के भ्रम, न लालच, न फुसलाहट, हमारे बच्चों को अपने स्थान से हिला नहीं सकती। हम उन्हीं की संतान हैं जिन्होंने सदियों की बे–बस मौतों के कारण एक पर्वत का नाम ही 'हिन्दू कुश' रख दिया है जहां से निकलते हुए हिन्दू कैदी सर्दी न सह सकने के कारण मर जाते थे और आक्रमणकारियों ने उस पर्वत का नाम 'हिन्दू–कुश' (हिन्दूओं को मार देने वाला) रख दिया था। वाह हमारे साहिब! सुन्दर कुंडलाकार केशों वाले कलगीधर तू धन्य है! धन्य है तेरा जीवन और तेरी प्राण फूंकने वाली अलौकिक शक्ति! इन मृतप्राय हिन्दुओं में

तुमने कौन सी न झुकने वाली, सदा जलने वाली जीवन–ज्योति प्रज्जवलित कर दी है कि इनके बच्चे भी तुम्हारे बच्चों की तरह वीरता दिखलाते हैं? हां, सुन्दर केशों वाले! तुमने अपने चारों पुत्रों को हमारे पापों की जगवेदी पर बलि देकर कहा था कि ये मेरे चार पुत्र शहीद हुए हैं किन्तु मेरे लाखों पुत्र और हैं जो खालसा कहे जाते हैं। खालसा मेरा अमर 'पुत्र स्रोत' है। मेरा यह पुत्र अमर है; सदा जियेगा। खालसा अमर है। हां, तुमने हमें पुत्र बनाया था और अमर पुत्र बनाया था। फिर तेरे ये अमर बच्चे क्यों न तेरे ही बच्चों की तरह अडिग, अटल तथा निर्भय हों। इस तरह के भाव ही महापुरूषों, ज्ञानियों, शूरवीरों, त्यागियों तथा नाम–रस में लिप्त रहने वाले महापुरूषों के ह्रदय में हिलोरें ले रहे थे जब सतवंत कौर अपने दुख, अपने प्रयत्न और साहस की कथा सुना रही थी। जब बता चुकी तो 'धन्य सिखी ! धन्य सिखी !' से दीवान गूंज उठा। अब आगा खां के दर्शन दीवान को कराये गये। वह कुछ–कुछ पंजाबी समझने लगा था परन्तु स्पष्ट बोल नहीं सकता था। फिर भी उसने इतना कह ही लिया–"वाहिगुरू जी का खालसा, वाहिगुरू जी की फतह! मेरा सीस गुरू खालसे की सेवा में न्यौछावर हो।"

इस एक वाक्य ने ही सज्जनों के ह्रदय को उमंग तथा उत्साह से पुनः भर दिया। धन्य कलगी वाले का चित्र आंखों के आगे जीवित ज्योति की तरह चमकने लगा।

अब जत्थेदार ने इच्छा व्यक्त की कि आगा खां की धाय मां अपनी शहीद मालकिन का हाल सुनाये। इसलिए प्रेम और त्याग की मूर्ति ने शत्रुजीत सिंह की सिंहनी (धर्मपत्नी) आस कौर और बच्चे (आगा खां) के कैदी बनने से लेकर सतवंत कौर से मिलने तक की समस्त कथा कह सुनायी। इस दुःखपूर्ण करूण कथा को सुनकर कौन था जो द्रवित न होता? आस कौर द्वारा मृत्यु के जहर के प्याले को शहीदी का शर्बत समझकर पी लेना, अपने बच्चे को पंथ की सेवा के लिए जीवित छोड़ जाना, आस कौर के विश्वास कि उसका बच्चा अपने जन्म की कथा सुनकर अपने मूल में पुनः जा मिलेगा, का खरा उतरना, सिखी जीवन के विश्वास और सत्यता के जीते–जागते उदाहरण थे। ये समस्त भाव श्रेष्ठ विराग उत्पन्न करते हैं जिसमें

रक्त ठंडा पड़ने के स्थान पर और अधिक लालिमा युक्त और उभारपूर्ण हो गया था। यह विराग, नाशवान और स्वार्थपूर्ण जगत के आकर्षण से व्यक्ति को ऊंचा उठाकर साहिब जी की प्रेममय मूर्ति की झलक देता है। हृदय सम्मान में, स्वाभिमान से उछल पड़ता कि हमारे दाता सतगुरू गोबिंद सिंह ने हमारे हृदय को किस पारस का स्पर्श दिया है कि विदेशों में, परवश होकर भी, एक ओर भयानक और दूसरी ओर समस्त ऐश्वर्य तथा लालच से घिर जाने पर भी अपनी आन से पतित नहीं होते। मरने में ही जीवन समझते हैं और दासता को मौत से भी बुरा समझते हैं। जहां लोग–सम्बन्धी, रिश्तेदार जो उस 'ज्योतिदाता' गुरू गोबिंद सिंह जी के 'पारस–स्पर्श' से वंचित हैं–उन स्थानों पर, कैदियों की तरह जाकर दो–दो चार–चार रूपयों में पशुओं की तरह बिकते हैं, वहां हमारे बच्चों, हमारी स्त्रियों कोई लालच घेर नहीं सकता, कोई भय झुका नहीं सकता, निडर होकर मौत को स्वीकार कर लेते हैं और टूटते तारे की तरह अपनी मौत में भी अलौकिक प्रकाश की चमक दिखाते हैं। हमारे बच्चों में जिन्हें हमारे 'प्यारे जीवन' का स्पर्श मिला है, उनमें भी हे कलगीधर, तेरा स्पर्श ऐसी शक्ति भर देता है कि इस प्रकार की कठिन विपदाओं में भी वे झुकते नहीं हैं और प्यार की जगवेदी पर अपना सब कुछ न्यौछावर कर देते हैं और अपने प्यारे के वचन की पालना करते हैं। वाह ! वाह !! एक नष्टप्राय देश, एक परतन्त्र देश में, हे चमकते नूर कलगीधर ! वाह ! वाह तुझे !! वाह, वाह वाह तुझे !! सदा वाह ! वाह !! तुझे। मृत को भी जीवन देने वाले, जीवनदान देने वाले ! तेरी वाह ! वाह !!

आगा खां की धाय मां के अमर प्रेम की कथा सुन सभी शूरवीरों के दिल भावावेग में बह गये। आंखों से आंसू, पवित्र आंसू धरती पर गिर पड़े।

आगा खां, लद्धा सिंह और साईं आश्चर्यचकित थे कि सतवंत कौर लड़की है और आज तक यह भेद उसने उन्हें भी नहीं बताया था। किस बहादुरी से उसने खुद को छिपाकर रखा ! वह अपने प्रेम और विश्वास में खरी उतरी है। पंथ में उसकी सिखी, वीरता और

धर्मपरायणता की जय–जयकार तथा सराहना तो हो ही रही थी, इसके साथ ही उसकी बुद्धिमत्ता पर भी साधुवाद कहा जा रहा था। सिख लड़की को जालिम कैद करके ले गये परन्तु वे मूर्ख नहीं जानते थे कि यह मगरमच्छ का बच्चा है, यह निहंग का अंश है, जो किसी की खुराक नहीं बन सकता। इस निहंग के बच्चे ने न केवल स्वयं को स्वतंत्र किया बल्कि अपने दो और बहिन–भाइयों को भी कैद से छुड़ाकर साथ लेकर आयी। वह उन्हें उस पावन धरती पर लेकर आयी, जहां स्वतन्त्रता के लिए, देश, धर्म, विचार की स्वतन्त्रता के लिए महान प्रयत्न हो रहे थे। यह सिख कन्या एक सिख कैदी को ही मुक्त कराकर नहीं लायी है बल्कि आक्रमणकारियों के किले में से छूटने की, 'प्यार स्पर्श' के उच्च उदाहरण की चिनगारी लेकर आयी है जो पंथ और देश के कार्यों में लगकर एक नया रंग और बलिदान के नये अलाव जलायेगी। वह उस धरती पर जहां वह कैद थी वहां भी प्यार की चिनगारी सुलगाकर आयी है जो किसी दिन अपना रंग दिखायेगी। यह था जीवन जो उस घुंघराले बालों वाले ने मुर्दा कौम में भरा था और जगत को एक चमत्कार, सदा अटल चमत्कार, करके दिखाया था।

अब दीवान में अमृत तैयार किया गया और पान कराया गया। इस उल्लासपूर्ण अवसर को पंथ ने अगले दिनों पर टालना पसन्द नहीं किया। आगा खां का नाम अलांबा सिंह रखा गया। उसकी धाय मां ने जो उसकी सगी मां के समान थी और जिसने उसे मां से भी अधिक प्यार दिया था और मानो उसकी सगी मां ही हो गई थी, माई तेजकौर नाम पाया। युगों तक कौम में प्रकाश फैलाने वालों का आज नया जन्म हुआ था।

उस समय जब अरदास होने वाली थी एक प्यारे ने कहा, "खालसा जी ! इनकी कुर्बानियां कितने आदर के योग्य हैं। कितने ही कष्टों को सह कर ये आज अपने देश पहुंचे हैं। वे परस्पर सत्कार और एक–दूसरे का हित करते रहे हैं। अच्छा होगा यदि इन दोनों का विवाह करके इन्हें एक कर दिया जाये।" यह सुनकर सतवंत कौर ने बड़े सम्मानपूर्वक मधुर स्वर में विनय की, "मेरे

गुरूस्वरूप खालसा जी ! मुझे जब अलांबा सिंह जी आगा खां के रूप में मिले और आपस में परस्पर सहायता का वचन दिया तब से और जब उनके और मेरे खून के एक ही कौम के होने का पता चला, मेरी दृष्टि में वह मेरे मां–बाप द्वारा ही पैदा किये भाई के रूप में ही आये। आपके चरण–कमलों तक पहुंचने तक मेरे आन्तरिक नाजुक 'भावों के झूले' में भाई के रूप में ही झूलते रहे। मेरी आत्मा में उनके लिए बहिन का प्यार पनप चुका है। मुझे इस उच्च द्वार से, अपने चरणों की सुगन्धित केसर में से उस सुगन्ध का दान करो कि मेरी पवित्र 'आत्मतरंग' में वह मेरे भाई– सगा भाई होकर प्रकाशित हुए हैं, आखिरी दम तक यह रिश्ता निभ जाये। वह मेरे मधुर भाई हों और मैं आशीष देने वाली बहिन। दूसरी विनती है कि मुझे अब गृहस्थ में न डालों गृहस्थ सुन्दर है, सतयुग का पवित्र आश्रम है, पर भाइयो! मेरी आत्मा पंथ की सेवा में लग चुकी है। इस खून में भावों का समुद्र हिलोरे ले रहा है। पंथ की कठिनाइयों में कष्ट प्राप्त करने और स्वयं को न्यौछावर करके शहीदी पाने की इच्छा बलवती हो चुकी है। मुझे पंथ–सेवा में लगा दो, पंथ के जख्मों पर पट्टी बांधने वाला वैद्य बना दो। मुझे बहिन–भाइयों की सेविका बना दो किन्तु मुझे अब गृहस्थ में मत डालो। यह भूल है, अवज्ञा है परन्तु मैं इसे अब कर चुकी हूं और आपकी बड़ाई इसी में है कि मेरी आन्तरिक धर्म–भावना को परिपूर्ण कर दो। आशीष दो कि मैं जीवन को कलगीधर के प्यार में, वाहिगुरू की याद में ऊंचा बनाकर पंथ सेवा में सफल बना लूं। मैं हुक्म से बाहर नहीं। सन्यासी बनना अच्छा भी नहीं समझती परन्तु मेरे चाव को उमड़ने दो, एक बूंद को समुद्र बनने दो। वर दो कि मेरा यह लघु जीवन, उस जीवनदान–दाता कलगीधर के आदर्श खालसा पर न्यौछावर हो जाये। विचार कर लो कि यदि एक लड़की ने सेवाकार्य की जिम्मेदारी अपने सिर पर ले ली है और बाल–बच्चों की मोह–ममता में नहीं गयी तो इतने बड़े पंथ का कुछ कम नहीं हो जायेगा। इसलिए मेरे बुजुर्गो ! दान दो ! दाता जी से मुझे यह दान ले दो ! दान दो ! दान दो !! दान ले दो–मैं खालसा जी के चरणों में बनी रहूं। मैं खालसा जी के चरणों में समर्पित रहूं।"

कौन था जो उस समय सिखी पवित्रता, पावन पवित्रता, पुनीत पवित्रता पर उछल न पड़ा हो? जी हां, उस समय सिखों में इस पवित्रता का भाव हिलोरें ले रहा था। यह नाम–अभ्यास का प्रताप है। यह भ्रम अथवा कृत्रिमता नहीं है। इसकी प्रशंसा दुश्मनों ने भी की है। बलोची खान के दरबारी लेखक ने लिखा है[1] कि सिखों में विकारपूर्ण दृष्टि का अभाव है। ये आचरण–पूर्ण और पवित्र लोग हैं।

अब आगा खां ने गुरमुख जी को फारसी भाषा में अपने हृदय की बात बताई कि सतवंत कौर को जब से मैं मिला हूं, हम भाई बने हैं। इस पवित्रता के अग्निकुण्ड से मेरा यह सम्बन्ध दृढ़ जो चुका है जबकि मुझे मालूम नहीं था कि यह तो बहिन है। आज मुझे पता लग गया है कि यह मेरा भाई नहीं था बल्कि मेरी बहन है, मेरी सगी बहन। इसका और मेरा प्यार सगी बहन वाले भाव से प्रारम्भ होकर पक्का हो चुका है। वही बहन–प्रेम ही रहेगा। मेरा हृदय उस सिख वीर की भलाई की भावना से कही गई बात को सुनकर मुझे पापी ठहराता है। काश, मेरे कान यह बात कभी न सुनते। मुझे आप पंथ से यह आज्ञा ले दें कि यह बहन हो और मैं भाई होऊं। जिस पवित्रता के भाव में जिस वत्सल प्रेम से हम मिले हैं उसी प्रेम में हम निभाएँ। दूसरा दान यह ले दो कि मुझे सेवा मिले, स्वार्थपूर्ण जीवन में पड़कर अपने लिए कुटुंब रचकर उसके मोह और अपने स्वार्थ के कीचड़ में फंसकर न मरूं। इसलिए मुझे आज्ञा ले दो कि मैं कलगी वाले, सुन्दर केशों वाले, सरदारों के सरदार की सेवा करूं। मैं पंथ की सेवा करूं। सेवा करने से यह देह जो विजातीय अन्न खाकर पली है, दोषमुक्त हो जाए। मेरा खून हिलोरें ले रहा है कि मैं अपनी मां के कातिल से बदला लूं परन्तु बहिन मुझे समझाती रही है कि पंथ की सेवा करो, पंथ की आवश्यकता हुई तो लड़ना परन्तु केवल खून से हाथ रंगकर खूनी होना सिखी आदर्श नहीं है। मुझे दान ले दो कि मेरा जीवन सेवा में सार्थक हो।

---

1. "तनाह हम ना बासद मियाने सगां।" पुनः "कि जानी ऊ सारक न दारन्द दोस्त"। सगों यानो सिखों में व्यभिचार नहीं होता। व्यभिचारी और चोर को यह अपना मित्र नहीं बनाते। (जंग नामा काजी नूर मुहम्मद)।

आस कौर की सहेली, जिसने धर्मदान करके भी कर्तव्य का पालन किया था, जो सतवंत कौर के लिए सांई जी बनी थी और जो अब तेजकौर बन चुकी थी, कहने लगी–खालसा जी ! मैंने आपके एक सुन्दर परिवार की सेवा की है। प्यार और कर्तव्य–पालन के लिए मैंने अपना धर्म भी त्यागा। कोई दान मेरी झोली में डाल दो जिससे मेरा जीवन सफल हो। अलांबा सिंह मेरी गोद में ही पला है। सतवंत कौर मेरे नयनों और हृदय में स्थान पा चुकी है। इन दोनों को मेरी झोली में दे दो। एक मेरा पुत्र और दूसरी मेरी पुत्री हो और मैं दोनों की मां बनूं। ये दोनों बहिन–भाई हों और हम तीनों का खून पंथ की सेवा की जगवेदी में आहुति पाये। हमारे लिए अब संसार के द्वार सदा के लिए बंद कर दो।

कुछ समय विचार करने के बाद यह निर्णय लिया गया कि इनकी इच्छाएं पूरी की जाएं। अलांबा सिंह का संकल्प पूरा हो, वह केवल एक सिपाही नहीं बल्कि जत्थेदार बने और पंथ की सेवा करे। इस पर सभी जत्थेदारों ने कहा कि चार–चार पांच–पांच सिंह हम देंगे। फिर यह अपने प्रयत्नों से अब्दाली के आने तक एक शक्तिशाली जत्था तैयार कर लें और पंथ के अन्य दलों के साथ मिलकर सेवा करें। सतवंत कौर इनके जत्थे में ही रहकर सेवा–कार्य करे। उनका कार्य होगा लंगर की सेवा, और जंग के समय मरहम–पट्टी की सेवा। लद्धा सिंह जी अकाल बुंगे के अकाली दल में शामिल किये जायें। माई तेज कौर सतवंत कौर के साथ ही रहे।

अकालियों वाला बाग तब अकाल बुंगे के पिछवाड़े तक होता था।

जिस तरह दक्षिण–पूर्व की ओर गुरू का बाग आज तक है, इसी तरह उत्तर–पश्चिम की तरफ यह अकाली बाग था। मुनियारी बाजार, काठियों वाला बाजार, माई सेवा का कुछ हिस्सा, पापड़ वाला बाजार, मोहर सिंह के कटड़ी का कुछ हिस्सा इसी बाग में थे। धीरे–धीरे आबादी बढ़ी तो यह बाग भी आबाद होता चला गया। इसका अधिकतर भाग अभी भी पापड़ वाला बाजार के पिछवाड़े है जो अभी तक अकालियों वाला बाग कहलाता है। अब यह एक सुन्दर बगीचे के रूप में है। इस बाग में प्रायः सिंह आकर डेरे लगाया

करते थे। कभी यह वीरान बन जाता था और कभी सुन्दर बाग। अलांबा सिंह को जत्थेदारों ने उस दिन बारह सिंह तथा कुछ धन दे दिया था जिससे कि वह अपने जत्थे के लिए काम प्रारम्भ कर सकें उसने पहला डेरा अकालियों वाले बाग में ही लगाया। अलांबा सिंह समस्त कार्यवाही समझ रहा था। वह समय–समय पर भगवान का धन्यवाद करता कि उसने भयानक जीवन से छुटकारा पाकर प्रेमपूर्ण और वीरता के जीवन को अपनाया है। रात को रहिरास के दीवान के बाद प्रसाद प्राप्त करने के उपरान्त अलांबा सिंह ने सतवंत कौर से पूछा कि अरदास का संपूर्ण भाव समझ नहीं आयां जरा विस्तार से बताओ। सतवंत ने उसे विस्तार से समझाया। जब उसे 'जहां–जहां खालसा जी साहिब तहां–तहां रक्षा रियायत' का भाव विस्तार से समझाया गया तो वह सिख कौम के अतुलनीय प्यार को समझ गद्गद् हो गया।

सतवंत कौर ने कहा कि यह अरदास उन लोगों के लिए करते हैं जो विपदाओं में हैं और पंथ को उसकी सूचना नहीं है या किसी ऐसी जगह में विपदा में फंस गये हैं जहां हमारे भाई पहुंच नहीं सकते या उनके लिए जो आक्रमणकारियों से अकेले संघर्षरत हैं, या मुसीबत में हैं, या कैद में हैं या कैदी के रूप में विदेश पहुंच गये हैं, या दुखी हैं, बीमार हैं। ऐसे लोगों के लिए प्रतिदिन दोनों समय पंथ–सम्मेलन में प्रत्येक सिख अकाल पुरूष से विनती करता है कि 'जहां–जहां खालसा जी साहिब, तहां–तहां रक्षा रियायत।' जिससे वाहिगुरू हर जगह उनके साथ हो और उनकी सहायता करे। शरीरिक सहायता पहुंचाने का यत्न तो होता ही रहता है परन्तु फिर भी साथ–साथ अरदास जारी रहती है। देखिए आप को कितने वर्ष तक ढूंढते रहे। मेरे लिए गुरमुख काबुल गये परन्तु इन प्रयत्नों के साथ अरदास जारी रही। यह अरदास विपदाओं में व्यक्ति को ढाढस देती है। यह रहस्यमय एवं सूक्ष्म शक्ति वाहिगुरू के सिंहासन का स्पर्श पाकर वहां से सत्यता को लेकर विपदाओं से घिरे सिखों के हृदय में साहस का संचार करती है और उनकी कठिनाइयों को सरल करती है तथा जगह–जगह उनकी सहायता करती है।

अब अलांबा सिंह ने अरदास का यह अर्थ सुना तो उसके रक्त में कौमी प्यार की तरंगें उठने लगीं। उसने सोचा कि यह कौम है या एक परिवार? परिवार है या कभी न बिछुड़ने वाले भाइयों का एक क़ुटुम्ब? कुटुम्ब है या शरीर जिसके सारे अंश एक दूसरे के अंग हैं? गुरू कृपा करे कि यह परिवार–प्यार कभी न टूटे, इस बहादुर संगठन में कभी फूट न पड़े। इस अंग–अंगी मिलन में कभी अलगाव न आये।

अलांबा सिंह को जत्थेदारों ने कुछ सिपाही दिये थे जो मिलकर पच्चीस हो गये। इस तरह परदेश से आते ही और सिंह बनते ही वह पच्चीस सिंहों का जत्थेदार बन गया। उसे हुक्म हुआ कि वह भी अपने पिता की तरह नाम कमाये, जत्थे बनाये और पंथ की सेवा तथा देश की आजादी के लिए शेर बनकर गरजे। एक कौम का, जो छोटी–सी है तथा जिसका प्रत्येक सदस्य योद्धा है, उच्च प्यार अलांबा सिंह को मिला। अलांबा सिंह अभी बच्चा ही था परन्तु पंथ ने अपने अपार प्यार से उसे जत्थेदार बना दिया।

दो–चार दिन वे अकालियों वाले बाग में ही टिके रहे। पंथ की ओर से जो धन दिया गया था, उससे उसने सभी आवश्यक समान खरीदा। सतवंत कौर और साईं जी जत्थे की सेवा के लिए साथ ही थे। इन दिनों में अलांबा सिंह ने पंथ की स्थिति, देश की स्थिति तथा राज़नैतिक उतार–चढ़ाव का पूरा ज्ञान प्राप्त कर लियां पंथ ने उसे गजराज सिंह उपजत्थेदार दिया था जो पुराना सिंह था। वह बहुत ही अनुभवी और ईश्वर का प्यारा था। उसने जीवन में अनके उतार–चढ़ाव देखे थे।

अब भाई–बहिन ने कूच की तैयारी की। भाई कहे पहले आपके गांव चलते हैं और आपके मां–बाप को शीतलता प्रदान करते हैं, परन्तु सतवंत कौर कहती थी पहले आपकी बहिन के पास चलते हैं जिससे वह पुनर्जीवित भाई को मिल सके। अलांबा सिंह ने कहा–बहिन तो निराश हो चुकी है और अपने परिवार क़ी मौत का कड़वा घूंट पी चुकी है। उसे कुछ दिन बाद में मिल लेने में भी कोई बुराई नहीं। आपके माता–पिता को आपके मिलने की आशा है। पंथ

की ओर से जो आपकी खोज हो रही है उससे वे परिचित हैं। आशा में वियोग में पीड़ा की कसक अधिक कष्ट देती है और सन्तोष को अन्तर में नहीं आने देती। इसलिए पहले उनके मन को ही शान्ति देना उचित है। सतवंत कौर ने कहा–वे आशा में कुछ दिन और काट सकते हैं। जहां इतना समय निकल गया, वहां कुछ और सही। मेरे देश पहुंचने की खबर पंथ को हो ही गयी है। मेरे गांव के आस–पास का जत्थेदार इस खबर को घर तक पहुंचा ही देगा जिससे वे मुझे मिलने के लिए उत्सुक हो जायेंगे। उनकी गहरी पीड़ा का घाव भर जायेगा। आप जब अपनी बहिन को मिलेंगे तो एक तरह से उसे नया जीवन मिलेगा। जैसे कि आपको नया जीवन मिला है। इस तरह विचार करने के बाद दोनों ने फैसला सांई जी पर छोड़ दिया। उसने पहले बहिन से मिलना ही उचित बताया। जल्दी से तैयारियां की गयीं और वह जत्था बटाला की ओर चल दिया। अलांबा का मन कर रहा था कि वह जल्दी से जल्दी अपने जत्थे को घुड़सवारों का जत्था बना ले। पच्चीस घोड़े खरीदना उस समय सरल नहीं था। जत्थे में अभी केवल पांच घोड़े थे। जत्थेदार, उपजत्थेदार, सांई, सतवंत कौर तथा एक अन्य के पास घोड़ा था। सामान ढोने के लिए दो–तीन खच्चर थे। वैसे सिख सिपाही अपना जरूरी सामान अपने कंधों पर ही रखते थे परन्तु शांति के समय उनका सामान कुछ बढ़ जाता था। लंगर के सामान, रसद–पानी से वजन बढ़ जाता था।

एक दिन प्रातःकाल अमृतसर से यह जत्था बटाला की ओर चल पड़ा। बटाला के बाहर ही जहां बाद में महाराजा शेरसिंह ने बारादरी बनवायी थी, डेरा लगाया। तेजकौर एक हिन्दू औरत का रूप धारण करके तथा एक सिख की अगुवानी में, जो उससे थोड़ा हटकर चल रहा था, शहर गयी। उस मुहल्ले में गयी जहां भण्डारी रहते थे। जब गली में पहुंच कर उसने पूछा तो पता चला कि शत्रुजीत सिंह की लड़की अपने पति के साथ वहां से चली गयी है और इस समय वे दोनों शाहपुर में हैं या बसोहली चले गये हैं। ठीक पता शाहपुर से ही मिल सकता है। यह सूचना पाते ही जत्था शाहपुर की ओर चल पड़ा।

शाहपुर ऊंचे स्थान पर स्थित एक सुन्दर गांव है। पहाड़ों से निकलकर रावी नदी यहीं मैदानों में प्रवेश करती है। शाहपुर रावी के जल से कोई दो–तीन सौ फुट की ऊंचाई पर स्थित है। रावी तक पहुंचने के लिए गांव से रावी तक गऊघाट रास्ता है। रावी में शीतल जल बह रहा था। किनारे पर एक छोटा–सा मैदान था जहां बैठकर बहते पानी के दर्शन का आनन्द लिया जा सकता था। यह रमणीक स्थान था। इसी जगह रावी के किनारे से ऊंचाई की तरफ, पानी से सीधा ऊपर की ओर एक किला था जो अब गिर चुका है। इसका एक बुर्ज अभी भी सलामत है। इस बुर्ज से बहता पानी लगभग दो सौ फुट नीचे है। इस बुर्ज[1] में से नीचे पानी की ओर झांकने पर सुन्दर नदी का दृश्य मन को शीतलता प्रदान करता है। पानी में तैरते हुए तैराक अद्भुत दृश्य उपस्थित करते हैं। दूसरी ओर पहाड़ियों से भी बहुत ही सुन्दर दृश्य दिखायी देता है। इस बुर्ज के साथ किले के थोड़ा इधर कुछ और भी खण्डहर हैं।

: २४ :

इस स्थान पर अब हमारे नये जत्थे का हरावल वेश बदल कर पहुंचा है। बुर्ज के इधर जो खण्डहर और पुराना कुआं है, वहां घूमकर बुर्ज को देख कर फिर गऊघाट के रास्ते से उतर नीचे जल के किनारे चक्कर लगाकर, ऊपर गांव के आस–पास चक्कर लगाकर पुनः लौट डेरे में आन पहुंचा है। सांई जी अर्थात् तेजकौर को एक पहाड़िन के वेश में अगले दिन सुबह भेजा गया। शाहपुर गांव के

---

1. इस बुर्ज को अब डाक बंगले का रूप दे दिया गया है। पर्यटक अब यहीं ठहरते हैं। शाहपुर से छः मील की दूरी पर माधोपुर है जहां महाराजा रणजीत सिंह के समय एक पुरानी नहर की मरम्मत की गयी थी जो लाहौर तक जाती थी। इसकी एक शाखा, जिसे सिखों ने खोदा था दरबार साहिब पहुंचती थी। गांव तुंग से सरोवर तक का हिस्सा अभी भी देखने को मिलता है और दरबार साहिब के अधिकार में है। आजकल की दुआब नहर भी माधोपुर के उसी स्थान से निकाली गयी है।

लोग नहाने–धोने और पानी लेने के लिए गागरें उठाकर रावी नदी की ओर आ–जा रहे थे और एक सुन्दर दृश्य उपस्थित कर रहे थे। तेजकौर सीधी गऊघाट के रास्ते उतरकर जल के किनारे–किनारे गयी। गांव में कोई त्यौहार मनाया जा रहा था। लोग नदी में नहा–धो रहे थे। जगह–जगह ब्राह्मण बैठे हुए थे। उनके आस–पास लोग भी बैठे हुए थे। कोई कपड़े पहन रहा था, कोई उतार रहा था। कहीं–कहीं कथा भी हो रही थी। तेजकौर ने भी एकान्त स्थान में जाकर स्नान किया फिर अकेले बैठे एक ब्राह्मण को देखकर उसके पास जाकर बैठ गयी और एक दुअन्नी उसके आगे रखकर बोली–देवताजी, कथा सुनाओ ! पंडितजी दुअन्नी देखकर गद्–गद् हो गये। एक तो उनकी ओर लोग ही कम आये थे दूसरा यदि कोई आया भी था तो पाव–भर चावल रख गया था थोड़ा–सा आटा रख गया, कोई आठ कौड़ियां रख गया और किसी ने बहुत हिम्मत की तो एक पैसा धर दिया। पंडितजी ने सोचा कि यह सौभाग्यवती माई कौन है जो गरीबी के वेश में है, परन्तु दक्षिणा दो आने की दे रही है? पंडितजी ने ऐसी ही कई बातें सोचीं। फिर उसने माई को कथा सुनायी और फिर आदर से पूछा–बीबी ! क्या आप शाहपुर गांव की हैं? पहले कभी देखा नहीं?

माई ने इस प्रश्न का उत्तर देना उचित नहीं समझा, और उसकी बात काटकर कहा–पंडित जी ! क्या आप हाथ देख लेते हैं? पंडित ने हंसकर कहा–तो माई क्या हम ढोर चराते हैं? यही तो हमारा काम हुआ।

माई ने दायां हाथ आगे किया तो पंडित ने कहा–स्त्री का बायां हाथ देखा जाता है।

माई ने बायां हाथ आगे कर दिया। पंडित जी कभी हाथ की तरफ देखते तो कभी कुछ हिसाब लगाते। कभी उसके माथे और आंखों की ओर गौर से देखते। अंत में बोले–माई, तुमने बहुत वेदना सही है। अब आपकी इच्छा पूरी होने वाली है। फिर उसने अपने थैले में से कुंडली निकाली

और बोला–माई, मैं हाथ भी देखता हूं, ज्योतिष भी जानता हूं, रमल भी जानता हूं। मैं आपको बता रहा हूं कि आप कष्टों में थीं,

विपदाओं से घिरी हुई थीं। अब इच्छा पूरी होने वाली है। बस। यदि पक्का पूछना हो तो अपनी जन्म पत्री ले आओ या जन्म का ठीक–ठीक समय बताओ तो मैं हिसाब लगाकर बताऊं।

माई ने एक और टका पंडित जी के आगे रख दिया और निश्वास लेकर कहा–पंडित जी कुछ वैदगी भी जानते हो?

पंडित– माई वैदगी नहीं जानता। परन्तु यदि आप को कोई व्याधि है तो वैद्य के पास लेकर जा सकता हूं। हमारे गांव में एक बहुत ही अच्छा वैद्य रहता है।

माई– क्या वह भी पंडित है? आपका भाई, जान–पहचान या विश्वासपात्र है?

पंडित– नहीं, पंडित तो नहीं है, किन्तु खरा है। वह सिख है। उसने निघंटु, शुभ्रत पढ़े हुए हैं। मेरा परिचित है। बहुत ही प्यारा आदमी है।

माई– गांव में रहता है क्या? उसका क्या नाम है?

पंडित– आपने नाम से क्या लेना है? मैं आपके साथ चलूंगा।

माई– परन्तु फिर भी?

पंडित– (आसमान की ओर देखकर) नाम है...देखो अच्छा सा नाम

है...नाम है, लाल...(फिर चारों ओर देखकर) नाम है लाल रतन सिंह। हां, वह देखो (गौर से देखकर) हां, वही है ! वह उसकी देवी–सी स्त्री स्नान करके आ रही है। वह बाबा नानक की वाणी का पाठ करती आ रही है, देखो उसे। वह बेचारी कभी नहीं हंसी। (निश्वास लेकर) कभी ऊपर नजर उठाकर नहीं देखती। या तो वह वाणी पढ़ती रहती है या चुपचाप रोती रहती है। कभी अपने घर में विरह के गीत गाती है जिसे सुनकर पत्थर भी मोम हो जाते हैं। वह कोई वियोगिनी है। पर है वह पतिव्रता, देवी–स्वरूप। पति को देवता मानकर पूजती है। इसी का पति वैद्य है।

माई ने पंडित के आगे दो पैसे और धर दिये। फिर चुपचाप उठकर चल पड़ी। पंडित जी जल्दी–जल्दी उसके पीछे–पीछे चल पड़े। उस संगमरमर की तरह श्वेत, रक्त–लालिमा से रहित, निर्बल पर कांतिपूर्ण चेहरे वाली स्त्री के पास जाकर बोले–देवी ! इस स्त्री

को कुछ वैद्य की आवश्यकता है। हमारे चरणों की प्रेमी है। उदार–आत्मा है। मैंने इन्हें सिंह जी का पता बताया है। घर जा रही हो तो इन्हें साथ ले जाओ। सिंह जी को मेरी ओर से आशीर्वाद देना। मैं स्वयं भी उनसे मिलूंगा आज त्यौहार का दिन है, सभी आशाओं से आ रहे हैं, नहीं तो मैं स्वयं ही इन्हें वैद्य जी के पास लेकर आता।

उस स्त्री ने न तो पंडित की ओर देखा और न ही माई की ओर। बायें हाथ की अंगुली से उसने माई को साथ–साथ चलने का संकेत किया, थोड़ा–सा सिर हिलाया और अपनी राह पर शरद ऋतु की धीरे–धीरे बहने वाली नदी की तरह चलती रही। पहाड़ी नदियों के पत्थर पर बहने से विपल पल पल की मधुर ध्वनि की तरह वह सुखमनी का पाठ कर रही थी और छोटे–छोटे कदम उठाकर आगे बढ़ रही थी। माई भी पीछे–पीछे चल रही थी। चढ़ाई चढ़कर वह औरत एक तरफ को हो गयी और एक छोटे से चबूतरे पर बैठ गयी–

सभ ते ऊंच ताकी शोभा बनी।।
नानक इह गुणि नामु सुखमनी।।

पढ़कर पाठ की समाप्ति की, अरदास करके माथा टेका, और आसमान की ओर आर्द्र नेत्रों से देखकर बोली–

दाता ! स्वर्ग के दाता !!

जहां जहां खालसा जी साहिब तहां–तहां रक्षा रियायत समस्त पंथ अरदास करता है, मैं भी अरदास करती हूं। मेरी मां, मेरा बिछुड़ा भाई तथा उसको पालने वाले की रक्षा रियायत करो। बिछुड़ों से मिला दो। एक बार मां और भाई से मिला दो।

इस प्रकार अरदास करती वह चुप हो गयी। उसके गले से मधुर ध्वनि निकली और उसने एक गीत गाया–

धीयां दे दिल खुसण माए। दूर गयीआं नी मांवां।
दूर गयीआं नां परतियां हाय। दूर गयीआं नी मांवां।
आंदरां कलवल हो हो टुटण, भैणां बिना भरावां।
दूर गये सी वीर जिनां दे, दूर गयीआं नी मांवां।
बिछुड़ फेर न मिलियां मांवां, दूर गयीआं जो मांवां।

वीर विछोड़ा कहिर विछोड़ा, भैणां नाल भरावां।
धीयां हावे भर भर मुकियां, मिलियां फेर न मांवां।
वीरा वीरा रूंनी वीरा। वीरा वीरा गांवां।
वीर विछुँनी दे आ जा वीरा। आ वीरा गल लावां।
मांवां बाझों जीवण औखा, औखा बाझ भरावां।
वीर विछुँनियां जीण न भैणा, शाला। मैं मर जावां।
धीयां दे दिल घायल माये। दूर गयीआं नी मांवां।
दूर गयीआं ना परतियां हाय। दूर गयीआं नी मांवां।[1]

कुछ क्षण वह चुप रही और फिर बोली—हे वाहिगुरू! दाता! सांई! धन्य गुरू नानक ! सांई जी कृपा करो ! कृपा करो ! कृपा करो! मैं फिर विराग में चली गयी। मैंने तो आपकी इच्छा को सिर—माथे स्वीकार कर लिया था। बापूजी (पिताजी) आपके दर (द्वार) चले गये। मैंने उन्हें अपने हाथों से विदा किया। वह हंसते हुए गये। उन्होंने मुझे गले लगाया और प्यार किया। बापू जी के बिछोड़े को मैंने सह लिया परन्तु दाता ! वह तेरे देश में गये। अपने घर गये हैं, वह तेरे पास सुखी हैं, आपके द्वार पर कीर्तन का आनन्द ले रहे हैं। मुझे वहीं से प्यार भेजते हैं। उनका बिछोड़ा तो है परन्तु मुझे ज्ञात

1. बेटियों का दिल डूबे ऐ माता ! दूर गईं माताएं।
दूर गईं नहीं लौटी हाय ! दूर गईं माताएं
टूट रही अंतड़ियां हलचल से, बहिनें भाइयों के बिन।
दूर गए हैं भाई जिनके, दूर गईं माताएं।
बिछुड़ी नहीं मिली माताएं, दूर गईं माताएं।
भैया बिछुड़न विपदा बिछुड़न, बहिनों का भाइयों से।
बेटियां सिसक तड़प कर मर गईं, किन्तु मिली नहीं माताएं।
भैया मेरे ! भैया भैया लौटो भैया ! भैया भैया गाऊं।
भैया बिछुड़ी के ऐ भैया ! आ मिल गले लगाऊं।
बिन माताओं कठिन है जीवन, कठिन बिना भाइयों के।
भैया बिछुड़ी जीएं न बहनें, काश मैं मर ही जाऊं।
बेटियों के है घायल हृदय, दूर गईं माताएं।
दूर गईं नहीं लौटी हाय, दूर गईं माताएं।

है वह कहां है? उनका मुझे दुख नहीं, किन्तु हे ईश्वर ! मुझ तुच्छ पर कृपा कर। मां और वीर (भाई) का पता नहीं कहां गये हैं? किस हाल में हैं? किन विपदाओं से घिरे हैं? किन कष्टों को सह रहे हैं? युग बीत गया परन्तु कुछ भी पता नहीं चला। वे क्या कर रहे होंगे? सांई जी ! इतना ही बता दो कि वे अपने देश पहुंच गये हैं क्या? जिससे मेरे दिल का घाव भर जाये। मुझे सन्तोष मिले। उनका असह्य वियोग ! मैं कैसे जियूँ? इच्छा ! आपकी इच्छा !! मेरी भूल क्षमा करना। मेरी भूल पर नाराज न होना। मैं आपकी तुच्छ बच्ची हूं। मेरे धैर्य और मेरे प्रयत्नों पर साधुवाद कहो। हे क्षमाशील ! प्यार वाले! भूल तो मेरा स्वभाव है, मेरा अधूरापन है, मेरे संघर्ष, श्रेष्ठ होने की इच्छा और हाथ–पैर मार कर तैरने और पार पहुंचने की चेष्टाएं हैं। इसलिए हे वाहिगुरू! इस तुच्छ बच्ची की पीठ पर अपना हाथ रखो, दिलासा दो। वीर और अम्मा से बिछड़ी तुच्छ बच्ची को अपनी छाती से लगा लो। अपने अमृतरस से भरपूर होंठों से मेरा माथा चूमो, मेरी पीठ पर हाथ फेरो और कहो तुम मेरी ही गोदी में हो, मैं तुम्हारा हूं, तुम्हारा ही हूं। हां दाता, तुम मेरे ही रहो। तुम मुझे अपनी गोद में खिलाओ।

इसी तरह निवेदन करती हुई वह घर की ओर चल पड़ी। उसने नजर उठाकर भी नहीं देखा कि उसके साथ–साथ कौन आ रहा है। वह धीरे–धीरे चलती घर पहुंच गयी। तेजकौर की आंखें निरन्तर बरस रही थीं।

गांव में एक सुन्दर स्थान में वैद्य जी का घर था। घर के बाहर की ओर उनका चिकित्सालय था। साथ ही लम्बी ड्योढ़ी थी। उस ड्योढ़ी से वह अन्दर गयी और चारपाई पर लेट सो गयी। उधर माई वैद्य जी के पास ऐसे जाकर बैठ गयी जैसे रोगी वैद्य के पास बैठते हैं। वैद्य जी ने सम्मान से पूछा–आओ माई जी ! क्या रोग है? कहां से आये हो?

माई– वैद्य जी ! मैंने एकान्त में बात करनी है। यहां तो और लोग आते जाते होंगे?

वैद्य– यदि ऐसी बात है तो एकान्त में बैठ जाते हैं परन्तु आज त्योहार है और लोग स्नान करने गये हैं। यदि कोई अधिक बीमार हुआ तो वही आज आयेगा। इसलिए आप यहां ही आज निस्संकोच बात कर सकती हैं।

माई– मैंने जरा पूछताछ करनी है और फिर अपनी व्यथा कहनी है। आशा है आप ऊबेंगे नहीं।

वैद्य– माई जी ! वैद्य भी भला ऊबता है। रोगी की जीभ और वैद्य के कान तो प्रकृति ने ही बड़े दिये हैं।

माई– आपका ही नाम लाल रतन सिंह है?

वैद्य– जी हां।

माई– आप ही शत्रुजीत सिंह जी के जामाता हैं।

वैद्य– (चौंककर) जी...हां...।

माई– मैं बे–अदबी (असम्मान) कर रही हूं...किन्तु मेरा काम गुरू इच्छा से सुखदायी हो।

वैद्य– (कुछ सोचकर) जी हां, वाहिगुरू भला करे।

माई– क्या इस स्त्री का छोटा भाई और माता कैद में पड़कर काबुल चले गये थे?

वैद्य– (घूरकर फिर गौर से देखते हुए) जी, यह पहले की बात है।

माई– यह स्त्री नदी से अपनी देवी समान माता तथा वीर का बहुत विराग करती आयी है।

वैद्य– आप तो इलाज के लिए आयी हैं, फिर यह सब कुछ क्यों पूछ रही हैं?

माई– आपका विवाह मेरे जाने के बाद हुआ था, इसलिए आप मुझे नहीं पहचान सकते। यदि आपकी पत्नी मुझे देखती तो शायद पहचान जाती परन्तु विराग में होने के कारण उसने मेरी ओर देखा ही नहीं।

वैद्य– (चौंककर फिर सन्देह की दृष्टि से देखते हुए) अच्छा तो आप अपने ही हैं। फिर तो आप तसल्ली से अपनी बात बताइए।

माई– मैं आपकी पत्नी की मां की सहेली और उनके बच्चों की धाय मां थी।

वैद्य– पुनां, पुनां, हां (छत की ओर देखकर) पुनां भी तो साथ ही कैद हो गयी थी।

माई– चिरंजीव रहो। पुनां, जो कभी पुनां थी, परन्तु अब फिर पुनां हो गयी है। मैं ही पुनां हूं।

वैद्य– (दोनों हाथ जोड़कर, शीश झुका कर, सम्मान से देखकर) आपका स्वागत है, धन्य भाग ! धन्य दाता ! धन्य गुरू ! धन्य मेरा सुन्दर कलगीवाला ! धन्य ! आप कुशलता का समाचार सुनायें और शीतलता प्रदान करें।

माई– वैद्य जी ! आपकी पत्नी की माता अपने स्त्रीत्व, धर्म और सिखी सिदक की रक्षा में अफगानिस्तान में शहीद होकर स्वर्ग सिधार गयीं।

वैद्य– (पलकें झुकाकर) वाह, वाह ! सतगुरू ! धन्य ! धन्य ! धन्य तू दाता ! शुक्र ! शुक्र, शुक्र ! धन्य सिखी ! धन्य सिखी ! धन्य सिखी, धन्य सिखी ! (आसमान की ओर देखकर) अम्मी ! तुझे सतगुरू के चरणों में निवास मिले। तेरे लिए सभी द्वार खुले हों। अम्मी तू धन्य!

माई– (आर्द्र नयनों से) पर बेटा जी ! शत्रुजीत सिंह का बेटा जीवित है। देश वापस आ गया है, वह कुशलतापूर्वक है। कौवों के नीड़ में पलकर कोयल का बच्चा घर वापस आ गया है। वह पूर्ण नवयुवक है। सिखी सिदक ने उसमें प्राणों का संचार कर दिया है। और अब देश में पूरा खालसा बनकर आ गया है।

वैद्य– वाह वाह ! शुक्र ! वाह–वाह शुक्र ! लाज रखने वाला सतगुरू है। तू धन्य है ! मेरा अपना वाहिगुरू, क्षमाशील दाता, तू धन्य है! कृपा करो, कृपा करो ! जीवन दान देने वाला, मृत को जीवन देने वाला, आन, शान, स्वाभिमान, सम्मान, बल, साहस देने वाला दाता गुरू ! बाट, घाट में सहायता करने वाला, विपदाओं में रक्षा रियायत करने वाला, तू धन्य है। (माई की ओर देखकर) अम्माजी यदि आपको कष्ट न हो तो सारी व्यथा–कथा सुना दो जिससे मन को चैन आ जाये।

माई– बेटाजी ! बीबी व्याकुल अन्दर गयी है। वह विराग में थी, परंतु ईश्वर की इच्छा को मानने वाली है। इच्छा हो यदि उसे भी बुला

लो जिस से उसके हृदय को भी शांति मिले। आपबीती सारी कथा मैं दोनों को इकट्ठे ही सुना दूं।

वैद्य– ठीक है परन्तु उसे कभी–कभी प्यार के आवेग का दौरा पड़ता है। बाद में वह निढाल हो जाती है। इस समय उसे सभी हाल बताना उचित नहीं होगा। इस अवस्था में उसे खुशी और व्यथा दोनों ही असह्य होंगी। आप बैठो, मैं अन्दर जाकर उनको थोड़ी–सी दवाउलमुश्क[1] दे दूं जिससे उसको कुछ ताकत आ जाये।

वैद्य जी अन्दर गये तो उस समय बीबी गहरी नींद में सो रही थी। नब्ज, आंखें, दांत और श्वास की परख करने पर उन्हें तसल्ली हो गयी कि वह बेहोश नहीं है बल्कि सुख की नींद सो रही है। इसलिए उसे सोया छोड़कर चले आये परन्तु वह गहरी सोच में पड़े हुए थे।

वैद्य– माई जी ! लालमन तो सो रही है। हां आप गुरमता के समय पहुंचे थे कि बाद में?

माई– ठीक गुरमता के समय ही। आखिरी दिन गुरमता में सम्मिलित भी हुए थे। बेटा जी ने वहीं अमृतपान भी किया था।

वैद्य– फिर तो आपको गुप्तबोला (गुप्त शब्द) का भी पता होगा। मुझे भी आमन्त्रण मिला था, किन्तु यहां कुछ पंथ के कार्य ऐसे थे कि पहुंच नहीं सका।

माई– तो आप मुख्य लोगों में से हैं। फिर तो गुप्त शब्द आपको भी पता होगा। जिसे पता हो उसे बताने से कोई हानि नहीं। इससे आपकी तसल्ली भी हो जायेगी। बेटा जी (मुस्करा कर) इस बार गुप्त शब्द रजतपण था।

वैद्य जी के नयन चमक उठे। मन में जो थोड़ा बहुत संशय था, वह भी दूर हो गया। हृदय में प्रेम उमड़ने लगा।

वैद्य जी– ठीक है, माता जी ! क्षमा करना। समय बड़ा नाजुक है और हम सब की जान सदा हथेली पर है। इसलिए फूंक–फूंक कर कदम रखना पड़ता है।

---

1. कस्तूरी से बनी एक औषधि का नाम जिसे दिल (हृदय) और दिमाग (बुद्धि) को शक्ति देने के लिए हकीम प्रायः देते हैं।

माई– बेटा जी कोई बात नहीं। सलामती इसी में है।

अब माई जी ने आरम्भ से लेकर वैद्य के पास पहुंचने तक की सारी व्यथापूर्ण कथा कह सुनायी। वह चुपचाप बैठा सोच में डूबा हुआ, भावनाओं और संवेदनाओं से रहित–सा कथा को सुनता रहा। वह अन्दर से चेतन था जैसे जलते कोयले को जान–बूझकर राख के नीचे दबा दिया हो।

वैद्य एक बार फिर अन्दर गया। बीबी अभी भी सो रही थी। यह तसल्ली करने के बाद वह माई के साथ अलांबा सिंह के डेरे पर गया। माई जी ने सारी कथा अलांबा सिंह को बतायी। अलांबा सिंह अभी पंजाबी अच्छी तरह नहीं बोल पाता था परन्तु भाव व्यक्त कर ही लेता था। उसकी भाषा का अफगानी लहजा बहुत मीठा लग रहा था पर लाल रतन सिंह फारसी जानते थे। दोनों प्रेम से फारसी में खुल कर बातें करते रहे और अकथनीय रस में डूब गये।

फिर बीबी के सम्बन्ध में सलाह करने के बाद यही निर्णय लिया गया कि लाल रतन सिंह धीरे–धीरे बीबी को खबर सुनायें और जब तक भाई–बहन के मिलन को सहने योग्य वह न हो जाये तब तक दोनों का मिलन न हो। इस बात पर वैद्य जी ने दो दिन लगाये। सारी स्थिति बुद्धिमत्तापूर्वक उसके सामने रखी। उन्होंने धीरे–धीरे मधुर वचनों में प्रियजनों की दुखपूर्ण और शहादत की कथा सुनाकर उसकी वर्षों की भूख को तृप्त किया। उसके विरह से तप्त मन को सदा प्यार से स्थिर रखने के लिए वे उसे 'लालमन' से सम्बोधित किया करते थे। भाई से मिलने के लिए इस तरह उन्होंने लालमन को तैयार कर लिया। अम्मा तेजकौर घर आकर पहले लालमन को मिली। तेज कौर का चेहरा बहुत बदल चुका था परन्तु लालमन उसके नैन–नक्श से पहचान गयी। अम्मा–अम्मा कहती वह उससे चिपक गयी। वैद्य जी ने अनेक उपाय किये थे परन्तु फिर भी लालमन उस प्रेम–आलिंगन में ही बेसुध हो गयी। बीबी बहुत ही नाजुक मन और शरीर वाली थी। धीरे–धीरे होश में आयी। वह बावली–सी मां की ओर देखती और उस के गले से चिपक जाती। बार–बार उसका हाथ, उसका माथा चूमती और रो–रोकर कहती–अम्मी...अम्मी...अम्मी ! जब होश आया तो एक गहरा निश्वास

लेकर बोली–सांई जी ! मुझे तो मां के वियोग ने वर्षों तक घायल रखा, पर अम्मी के कष्ट सुनकर, उनकी मौत की खबर सुनकर मेरे घाव को कोई ऐसा चीर (औषध) मिल गया है कि कभी ठीक न होने वाला 'दिल का जख्म' कुछ भर गया है। दर्द तो है परन्तु अब मुझे शीतलता मिली है। मां तो अपने घर पहुंच गयी है, मैं मूर्ख थी। मुझे इसका ज्ञान नहीं था, इसलिए मैं रोती रही। अम्मी तो बापू जी से भी पहले वाहिगुरू के देश पहुंच गयी। हां, परन्तु अब मेरा हृदय ठंडा हो गया। मैं मां से बिछुड़ गयी हूं परन्तु अब मन में कोई घबराहट, कष्ट, दुख नहीं। (ऊपर की ओर देखकर) जियो, मेरी अम्मी जियो। दाते के देश में जियो। अब मैं आप से आ मिलूंगी। मुझे शीतलता मिली कि मेरी मां हमारे वाहिगुरू द्वारा सज्जित 'तलवार की धार' से निकल कर स्वर्ग पहुंच गयी है। वह सुखी रहे, सुखी रहे। सुखी रहें अम्मी जी! बापू जी ! हां, मुझे पालने वाली मां ! तू मिल गयी है, तू ही मेरी अम्मा है (गले से लगाकर और उसकी ठोढ़ी को पकड़कर) बोलो अम्मा, तू ही मेरी अम्मा है न?

माई– जियो, मेरे बच्चे जियो ! मेरा संसार में और कौन है? तू और तेरा वीर ही मेरी आंखों के तारे हो।

लालमन– अम्मा ! अब मुझे भाई की छाती से लगा दो। मैं कसकर अपने भाई से मिल लूं। ओह ! उस चांद से माथे को चूम लेने दो। अम्मी के जैसे नयनों को एक बार देख लेने दो। मेरी मां के जिगर के टुकड़े को इस मेरे तड़फते हुए टुकड़े से मिला दो जिससे मां के दो बिछुड़े 'जिगर के टुकड़े' मिल कर एक हो जायें। वह स्वाभिमानी और गर्वीला शीश बहन की तरसती छाती से लगकर वर्षों की सुलगती छाती को शीतलता प्रदान करे।

मल्हार की लम्बी ध्वनि में वह बोली–शीतलता प्रदान करने वाली, शीतलता प्रदान करने वाली–यह कहती हुई वह फिर धाय मां की छाती से चिपक बेहोश हो गयी।

वैद्य जी ने अब अम्बर, कस्तूरी और केसर से एक दवाई बनाकर उस की जीभ पर रखी। हाथ–पैर को सहलाया। इस से कुछ समय के बाद वह होश में आ गयी और शरीर में कुछ स्फूर्ति अनुभव की।

वीर (भाई) मिलाप

चतुर वैद्य जी और अम्मा की सलाह यही थी कि भाई–बहिन का मिलन अभी नहीं कराया जाये परन्तु अलांबा सिंह का मन और अधिक इन्तजार नहीं कर सकता था। उसने पिता जी को नहीं देखा, मां को कहीं देखा, गैर लोगों में उसका पालन–पोषण हुआ। उसने मां–बाप के देखों के बारे में सुना है। इससे वियोग और विरह के जख्म और गहरे हुए हैं। उसने इन जख्मों की पीड़ा को सहा है। उसकी एक ही बहिन है जिससे मिलना बाकी है। उसी के प्यार में उसने पिता के कृपापूर्ण नयनों को देखना है। उसकी निगाहों में उसने मां के ममतापूर्ण नयनों को देखना है। मां की गोद तो उसे अब नहीं मिल सकती परन्तु बड़ी बहिन की गोद में उसने मां कीी गोद को ढूंढना है। इस तरह अलांबा सिंह का प्रेम उमड़ पड़ा और वह जल्दी से बहिन को मिलने के लिए चल पड़ा। सतवंत कोर ने भी उसके प्यार के उमड़ते सागर को देख उसे रोकना उचित नहीं समझा, इसलिए वह भी साथ ही चल पड़ी।

उधर वैद्य जी के घर अभी तीनों वैसे ही बैठे हुए थे। लालमन अम्मा की छाती से सिर लगाये उसकी गोद में ही बैठी हुई थी कि आज्ञाकारी शत्रुजीत सिंह के पवित्र खून का सजीला जवान, शेर–सी आन–बान वाला, अभिमान और जवानी से भरपूर, सिर को तानकर चलने वाला, स्वाभिमान और जवानी से भरपूर, गर्वीला, सम्मानपूर्णता की मूर्ति किन्तु इस समय अत्यधिक रसीला, सुन्दर चांद–सा मुखड़ा लिये, कोमलता और ममता की मूर्ति बनकर बरामदे में आ गया। वह सामने आकर खड़ा हो गया। लालमन का सिर अभी अम्मी की छाती से लगा था, उसकी बाहें अम्मा के गले को घेरे हुए थीं। खुले नयन आकाश की ओर देख रहे थे। उन खुले नयनों ने अपने पिता और मां जैसे नयनों को एक नजर में ही पहचान लिया। वह बिजली की फुर्ती से उठी और उड़कर वीर से चिपक गयी। भाई ने अपनी बहिन को भुजाओं में ले लिया। आलिंगनबद्ध दोनों, माता–पिता के जिगर के टुकड़े, एक तन के दो टुकड़े जो मिलने के लिए तरस रहे थे, तड़प रहे थे, आज मिल गये। इस मिलन ने इनके

शरीरिक अलगाव को दूर कर दिया। इस मिलन में वे शरीर की सुध को भूल गये। शरीर अचेत हो गये, आत्मा से आत्मा का मिलन हुआ। 'वीर–आत्मा', बहिन–आत्मा' गलकर, पिघल कर पवन का रूप धारण कर उड़कर किसी और देश चली गयीं और किसी अमर मिलन में मिल गयीं। आह ! स्वर्ग के देवता, सच्चे एवं शुद्ध प्रेम पर फूलों की वर्षा करने वाले, अदृश्य है किन्तु प्रेम फुहार बरस रही है। भाई–बहिन के मिलाप में दोनों बेसुध–बेहोश पड़े हैं। दो पवित्र आत्माओं का मिलन हुआ है। आसमान से पवित्रता और दिव्य सुगन्ध वाले पुष्पों की वर्षा आसमान से जरूर हो रही होगी। कोई अगम्य रस–फुहार पड़ रही होगी, कोई अदृश्य आनन्द छा रहा है–शीतल, मीठा–मीठा और शांत। पास बैठे हुए जन–माई, सतवंत और वैद्य जी आनन्दमग्न हो रहे थे। भाई–बहिन बेहोश पड़े हैं। ईश्वर दया करे, दया करे।

सदीव वस्से रहिमत पवित्र प्यारां ते। (सदा ही बरसे कृपा पवित्र प्यार पर)।

सचेत हुए तो दोनों बहन–भाई सांई (धाय मां) की गोद में बैठ गये। एक जांघ पर पुत्र और दूसरे पर बेटी। दोनों ने एक–एक हाथ मां के कन्धे पर रख दिया तथा दूसरा हाथ गोद में पड़ा था। आज जन्म देने वाली मां नहीं थी पर पालने वाली, साथ निभाने वाली मां है जो अपने पाले हुए पेड़ को अमृतफलों से लदा देख रही है। देखो, देखो जी, देखो आकाश में बैठी उनकी मां इस प्यार पर खुशी के फूल बरसा रही है। बिंब पृथ्वी पर चित्रित हो रहा है, प्रतिबिंब आकाश में बन रहा है। पृथ्वी की मां को सुखों का स्पर्श मिल रहा है। वात्सल्य रस का सार सुगन्ध बन आकाश की ओर चढ़ रहा है जिसका आनन्द स्वर्ग में बैठी अम्मा ले रही है। वाह वाह ! पवित्र प्यार, तेरा चमत्कार ! वाह ! वाह ! मां कभी बेटी का माथा चूमती है तो कभी बेटे का। वह बलैयां लेती है। प्यारी आस कौर की याद करके रोती है। काश ! यह दृश्य मेरी प्यारी देखती। काश ! इस सुख को वह भोगती ! काश ! यह सूर्य उसके नयनों के लिए उदित होता। यह सुगंधित पवन उसके श्वासों को सुगन्धित करती। काश ! इस जगह वह होती और इस दृश्य का आनन्द लेती। और मैं देखती कि

मेरी प्यारी, शीतलता प्राप्त करती, रसमग्न हो जाती, स्वाद लेती और मुग्ध हो जाती। हाय तूने इस प्यारे संगम का दृश्य नहीं देखा। वह ऐसे सोचती तो आंखों से आंसू बहने लगते। फिर वह कृतज्ञता अनुभव करती—दाता सतगुरू ! तू धन्य है, तू धन्य है कि प्यारी की आज आशा पूरी हो गयी। उसने आंखों को मूंद लिया। आंखें जो रसमग्न थीं, खुलीं। वैद्य जी ने देखा कि लालमन भाई और मां के मिलन में अभी मग्न है। आंखें चाहे अभी भी बंद थीं, किंतु माथे पर चमक और लालिमा थी। उसके चेहरे पर लालिमा कभी नहीं आयी थी परन्तु आज उसके मुख पर गुलाब की पंखुड़ियों जैसी लालिमा सुशोभित है। सतवंत कौर ने देखा कि उसका भाई अपनी बिछुड़ी बहिन को मिल रहा है। प्यार की सरिताएं बिछुड़कर अलग—अलग स्थानों पर बहती आज मिल गयी है। मालिक की कृपा देखो, संयोग हो गया—दोनों में मेल हो गया।

"नदियां वाह विछुंनीया मेला संजोगी राम।"

नदियां तो बहाव से अलग—अलग ही हो जाती हैं, संयोग से हे राम ! उनका मिलन होता है। वह बिछुड़ना जिसमें मिलने की कोई आशा न हो, जिसका अन्तराल बढ़ता चला जाता हो उसे ही बिछुड़ना कहा जाता है। ऐसे बिछुड़ने वालों का मिलन हो अनन्त में समाने पर ही होता है। परन्तु यहां तो उस अनन्त ने 'अन्तवान देश' में मिलन संयोग भेज दिया है। अतः देखिये बहाव (स्वभावतः) द्वारा ही बिछुड़ने वाली नदियां ('नदियां वाह विछुनियां') अन्तवान देश में ही मिल रही हैं। वात्सल्य रस की यह तस्वीर खिंची रहे। भाई—बहन के पवित्र प्रेम की यह समाधि लगी रहे। पवित्र—प्रेम का यह बिंब खिंचा रहे।

: २५ :

सतलुज के पार, काफी दूरी पर खत्रमां नाम का एक गांव है। हो सकता है इसे खन्ना खत्रियों द्वारा बसाया होने के कारण ही खत्रमां कहा जाता हो। यहां एक सिख परिवार रहता है। अखण्ड पाठ की समाप्ति हो रही है। संगत बैठी है। अरदास हो रही है। अरदास करने वाले सिंह ने अरदास के अन्त में कहा—हे सच्चे पातशाह ! तेरे प्रेमियों

की ओर से, सर्व साधु संगति की ओर से, विनती है कि पातशाह ! दूर गये और बिछुड़े जन, जो अनेक दुखों में हैं परवश हैं, उनकी रक्षा करो, रियायत करो, अवगुणों को चित न धरो, क्षमा करो और उनके मार्ग सरल करो। यात्रा आसान करो, देश वापस लाओ, बिछुड़ों को मिलाओ, मन की शांति दो। हे दाता ! कृपा करो। हे स्वामी ! यदि आपकी इच्छानुसार हमारे प्रियजन आपके देश में पहुंच गये हैं तो अपनी बिजली की चमक फेंक हमारे अन्धकारमय हृदयों को प्रकाशित करो जिससे हम देख लें कि वे आपके द्वार पर उन्हें सुखों में संलग्न देखें। हृदय शांत हो, छाती शीतल और मन सुखी हों। आपका कीर्तन और आपका नाम हमारे मन पर राज्य करे। दाता ! इस परिवार की एक मासूम कन्या परोपकार करती परवश हो गयी है, उसकी रक्षा करो, उसकी लज्जा–धर्म बचाओ। आप उसके मार्गदर्शक रक्षक, और मुक्ति दाता हैं। कृपा करो, सावन के मेघ के समान बरसो। माता–पिता आपकी अनुकम्पा में रमे हैं। आपकी कृतज्ञता को स्वीकार कर संघर्षरत रहें। उनके हृदय में आप निवास करें, उन्हें सहारा दें जिससे वे आपकी अनुकम्पा की मधुरता को अनुभव करें, नानक नाम चढ़दी कला, तेरे भाणे सरबत दा भला।" (हे प्रभु ! गुरू नानक आपसे नामदान, उन्नतिशील भाव और तुम्हारी इच्छा से सबका भला मांगते हैं।)

अरदास में सभी का मन एकाग्र था। अरदास समाप्त हुई फिर भी सभी एकाग्र मन निश्चल खड़े थे। फिर सभी के सिर झुक गये। मुक्तिदाता के चरणों में गिर पड़े। सभी के शीश "सहज पद विमल" में झुक गये। फिर सावधान हुए। कड़ाह प्रसाद बांटा गया और छोटी सी साधु संगति विदा हुई समाप्ति के बाद सतवंत कौर की मां ने पति को भोजन करवाया। उसके बाद वह छत पर जाकर चौबारे में बैठ गयी। उसके पति बाहर काम–काज पर चले गये। मां बैठी तो कसीदा लेकर थी पर विचार इधर–उधर दौड़ने लगे। उसका मन नहीं मान रहा था कि बच्ची मर गयी है। इसलिए उसे विश्वास था कि वह एक बार आकर मिलेगी। बेटी के विचार और उसके साहस बचपन से ही श्रेष्ठ थे। छोटे–छोटे कामों में भी वह बड़ों जैसी बातें करती थी। दुखभरी राह की कठिनाइयां अति अधिक हैं। गंगा में

प्रवाहित अस्थियां कभी वापस नहीं आतीं। इतनी कठिन यात्रा से भला कौन वापस आ सकता है। बाउरियां वाले गुरमुख बड़े उपकारी है। वे कइयों को वापस लेकर आये हैं। इस बार वे फिर गये हुए हैं। (ऊपर देख कर और विह्लल होकर) हे दाता, हमारे बाउरी वाले प्यारे के काम में बरकत डालो। उनकी स्वयं अगुवाई करो जिससे वे इस बार मेरी बच्ची को वापस ले आयें। बाउरी वाले सांई लोग ! तेरा युग–युग भला हो। नाम के प्यारे, तुझे और अधिक नाम का ध्यान रहे। मेरे हृदय को भी शीतलता प्रदान करो।

बसन्त कौर इसी तरह से ईश्वर के आगे अरदास (प्रार्थना) कर रही थी। अपने दुख, उदासी और मन के भावों को व्यक्त कर रही थी। वह बहुत कुछ सोच रही थी, अनेक विचार उसके मन में आ जा रहे थे कि नीचे से छोटी लड़की ने आकर कहा–मां जी, जटाओं वाले संत जी आये हैं–जटाजूट वाले, भगवें कपड़ों वाले। उन्होंने पिताजी को पूछा तो मैंने बताया कि वे बाहर गये हुए हैं, इस पर उन्होंने आपके बारे में पूछा। मैंने बताया कि आप छत पर हैं तो कहने लगें, पूछकर आओ कि हम ऊपर आ जायें कि बेबे जी (माता जी) ही नीचे आयेंगी। बसंत कौर ने कहा–बेटी, उन्हें ऊपर ही ले आओ। बेटी नीचे उतर गयी। कुछ ही क्षणों में संत जी ऊपर आ गये बसंत कौर सम्मान के साथ हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी। सिर झुकाकर उनका अभिवादन किया। संत जी को बैठने के लिए चौकी दी और स्वयं मूढ़े पर बैठ गयी।

बसंत–आप देर से आये। अखण्ड पाठ की समाप्ति पर नहीं पहुंचे।

संत जी– बेबे जी ! बड़े संत जी[1] का शरीर कुछ शिथिल है। इसीलिए नहीं आ पाया। मैं तो अभी भी नहीं आ सकता था परन्तु संत जी ने कहा–मैं कुशलता से हूं, तुम जाकर सुनी–सुनायी बात बता आओ। हो सकता है उपाय करने से कुछ पता चल ही जाये।

---

1. यह सन्त जी और जटाओं वाले साधूजी उन दिनों पंथ की सेवा–माला के मनके थे।

बात यह है कि कल हमारे गुरूद्वारे में अमृतसर से दो सिंह आये थे। वे संत जी से कुछ गुप्त वार्तालाप कर रहे थे। जो मुझे संत जी ने बताया वह इस प्रकार है कि बाउरियां वाले महापुरूष काबुल की धरती से कई सफलताएं प्राप्त कर लौटे हैं। यहां तक कि शत्रुजीत सिंह का बेटा भी वापस ले आये हैं।

बसन्त कौर— (चौंककर) हैं, वह तो छोटा—सा, दूधपीता बच्चा था। जहां तक मुझे याद है वह तो लगभग बीस साल पहले कैद हुआ था। उसे उन्होंने कैसे पहचान लिया और उसे कैसे ढूंढ़ा।

संत जी— माई जी ! यह तो पता नहीं। वे बता रहे थे कि उसकी माता तो जाते ही शहीद हो गयी थी। लड़का बड़े खान का बेटा बन गया था, वहीं उसका पालन—पोषण हुआ। उसे मां का गुटका, कड़ा, और कृपाण मिल गयी जिससे उसे मालूम हुआ कि वह सिंह है, पठान नहीं। बस उसका कायाकल्प हो गया। उसका स्वाभिमान जाग उठा। वह देश में पहुंच गया है और पंथ ने उसे अमृतपान कराकर सिंह बना लिया है।

बसंत— धन्य कलगीवाला! धन्य दाता! धन्य कैदियों के मुक्तिदाता !

धन्य भक्तों की रक्षा रियायत करने वाले ! वाह, वाह !! मेरे सांई जी, तू वाह ! तू धन्य ! वह इसी तरह से कहती जा रही थी और आंखों से आंसू गिरते जा रहे थे। प्यारे दाता ! कृपालु दाता ! धन्य तेरा प्यार !

संत जी— माई जी, मुझे पक्की बात तो ज्ञात नहीं। परन्तु वे यह भी कह रहे थे कि दो स्त्रियां भी गुरमुख जी साथ लेकर आये हैं। क्या पता उनमें अपनी सतवंत भी हो। मुझे संत जी कह रहे थे कि मैं आपको बता आऊं जिस से आप अमृतसर जी से पता लगवायें। आप अब स्वयं ही बेटी का पता लगायें जिससे वियोग के क्षण कम हो सकें।

पंथ के प्यार से बसंत कौर का हृदय गद्गद हो गया। पंथ ने शत्रुजीत सिंह के बेटे को ढूंढ़ने के लिए बीस वर्ष तक चेष्टाएं कीं। शत्रुजीत सिंह के लड़के के मिल जाने की खबर से वह फिर गद्गद हो उठी जिसमें वह अपने वियोग को भूल गयी। उसका हृदय ईश्वर

की प्रशंसा में मग्न हो गया। संत जी की बातों से बेटी की याद और तीक्ष्ण होकर उभर आयी। विरह की पीड़ा 'शायद वह आ ही गयी' हो ऐसी आशा, किन्तु पक्की खबर न होने का संशय, इन भावनाओं ने उसके हृदय को झंझोड़ दिया मन कर रहा था कि वह संत जी से और बहुत कुछ पूछे। परन्तु उन्होंने जितनी बातें सुनी थी बसन्त कौर को बता दी थीं। उससे अधिक वे नहीं जानते थे। उसे फिर विचार आया कि यदि शत्रुजीत सिंह का बेटा मिल जाये तो शायद उससे बेटी का पता चल जाये। इस सम्बन्ध में जब बसन्त कौर ने संत जी से पूछा तो उन्होंने बताया कि वे सिंह रात को बता रहे थे कि शत्रुजीत सिंह का बेटा अपनी बहिन और बहनोई को मिलने गया है।

बसन्त– कहां !

संत जी– (झुककर और मन्द स्वर में) उसका बहनोई लाल रतन सिंह पहले तो बटाला में रहता था परन्तु अब कंधी चला गया है। रावी की कंधी, शाहपुर कंधी।

बसंत– कुशल तो है न?

संत– (और मन्द स्वर में) वहां वे पंथ–सेवा के लिए चले गये हैं। विद्वान वैद्य हैं। आसपास के गांव में यहां तक कि बसोहली के लोग उनके आभारी हैं। वैद्य के प्यार से उन्होंने जगह–जगह, गांव–गांव सेवक बना लिए हैं। यदि कोई पंथ का प्यारा या जत्था किसी कठिनाई में फंस जाये तो काफी लोगों को सम्भाल लेते हैं। यदि एक–एक घर में एक–एक सिख या, गांव–गांव में दो–दो, चार–चार सिंह भेज दें तो एक बड़ी गिनती को आश्रय मिल जाता है। उनके अहसान और प्यार के कारण लोग उनकी सेवा करते हैं और भेद भी रखते हैं। स्वयं वह एक शिला के समान शान्त और मौन रहते हैं परन्तु अन्तर से दीप्त रहते हैं। उनका जीवन ऊंचा और नाम और प्यार से भरपूर है। संकट के समय में वह पंथ की सेवा कर के अपने जीवन को सफल बना रहा है। जब बीमार या घायल सिख पहुंच जाते हैं, तो उनके इलाज, रहने–सहने तथा अन्न–वस्त्र आदि का भी प्रबन्ध करते हैं। माता जी ! यह है लाल रतन सिंह का ज़ीवन। आपको स्वयं भी बहुत कुछ मालूम होगा। शत्रुजीत सिंह जी की लाडली बेटी बीबी लालमन कंवर भी उनके साथ ही सेवा के लिए

तैयार रहती है। उसका शरीर जरा ढीला रहता है। कभी–कभी मां और भाई के वियोग में निढाल हो जाती है। वैद्य जी अपनी दवाइयों से उसे ठीक कर लेते हैं।

यह सुनकर बसन्त कौर की आंखों में आंसू आ गये। बेटी के वियोग की पीड़ा तीव्र हो गयी। होंठ और कलेजा कांपने लगे। संत जी ने देखा कि उन्होंने बीबी के मर्मस्थल को छेड़ दिया है। किन्तु अच्छा, यह समय भी बीत जायेगा, जैसे पहले बीत गया है। बसन्त कौर ईश्वर–इच्छा को मानने वाली थी। कुछ ही समय में 'जो ईश्वर की इच्छा' कह कर वह स्वस्थ हो गयी और उसने आंखों को पोंछते हुए कहा–पति जी बता रहे थे कि आपने 'तिराह' जाना है।

संत जी– जी हां, बड़े संत जी को पंथ का आदेश मिला है कि तिराह में एक सिख परवश है। एक कबीला हिन्दुओं का भी परवश है। उन्हें मुक्त कराना है। दोनों को वहां से निकालना है। उन्हें मुक्त कराने का आदेश मुझे हुआ है।

बसंत कौर– यों ! क्या बाउरियां वाले उधर नहीं जाते।

संत– मैं पश्तो साफ बोल लेता हूं और उधर की बोली पश्तो है। बाउरी वाले पश्तो जानते तो हैं परन्तु वे फारसी में अधिक कुशल हैं। मैं एक–दो बार पहले भी तिराह हो आया हूं। वहां मेरी जान–पहचान के सेवक और शिष्य बहुत हैं। उनकी सहायता से मैं काम निकाल लेता हूं। साथ ही बीबी जी, मैं तो एक सेवक हूं और बाउरी वाले एक रत्न हैं। उन्हें तो सम्भाल कर रखना चाहिए। मैं तो कभी भी नहीं चाहता कि वे उस कठोर धरती पर जायें। उन्हें तो पंथ को जान से अधिक प्यार से और बुरी नजर से छिपाकर रखना चाहिए। बहुमूल्य आत्माओं को खतरे में नहीं डालना चाहिए। उन्हें तो बचाकर रखना चाहिए।

बसन्त– आप सच कह रहे हैं। वे तो पंथ के लाल हैं। परन्तु आपको लाल चोले वाले हिन्दू समझ कर क्या वहां के लोग तंग नहीं करते?

संत– नहीं बेबे जी ! वहां तो हम उनके फकीर बनकर जाते हैं। उनके फकीर बनकर उनको अपना मुरीद शिष्य बना लेते हैं। इस तरह सहायता के ढंग हम निकाल लेते हैं। नहीं तो बेबे जी, शेर की

दाढ़ी में से मांस निकालना कोई सरल काम तो नहीं?

बसन्त– ईश्वर आपका भला करे। क्या आप मेरी सतवंत को ढूढ़ने का कष्ट नहीं कर सकते।

संत जी– मेरा तो सिर हाजिर है। जो कभी खबरें आयीं हैं पहले उनका पता लगा लो। मेरे जाने में अभी महीने भर का समय है। अगर सतवंत आ गयी हो तो बहुत अच्छी बात है। नहीं तो मैं सभी सीमावर्ती जगहों में खोज करूंगा और अफ़गानिस्तान जाने की भी कोशिश करूंगा।

बसंत कौर– गुरु कृपा करें ! आपके मन में सदा ईश्वर का नाम रहे।

जटाओं वाले संत जाने की जल्दी में थे। उनका डेरा पटियाला रियासत में था। आप पंथ के सेवक थे। प्यारे–प्यारे सिख इस तरह साधु बनकर, वेश बदलकर स्वयं कष्टों में रहकर पंथ की सेवा करते थे। जो सहजधारी थे, वे उसी रूप में बस्तियों में रहते थे, काम–काज करते, व्यापार–नौकरियां करते हुए भी पंथ की चुपचाप हर तरह से सहायता करते। इस प्रकार के सिखों को कौम में "खुलासा सिख" भी कहते थे। इनके घरों में-छिपने के स्थान थे। इनकी बुद्धि कठिनाइयों तथा समस्याओं को हल कर लेती थी। इनकी कमाई पंथ की सहायता करती थी।

: २६ :

अब संत उतावले हो गये थे। बेचैन बैठी बसन्त कौर को छोड़कर चले गये। बसन्त कौर का मन उतावला था कि जल्दी से उसकी बेटी का पता चले। मन अब घबरा तो नहीं रहा था, परन्तु बेचैनी थी। वह चाहती थी कि उड़कर जाऊं और बेटी को ढूंढ़ लाऊं जैसे कोयल उड़कर अपने बच्चे को खोज लेती है। किन्तु फिर निराशा भी थी कि पता नहीं आयी भी है या नहीं। हो सकता है उसका पता अभी न लगा हो।

इस प्रकार सोचते हुए रात हो गयी। पति जी आ गये। उन्हें सब कहानी उसने सुनायी। वे भी चिन्ता में पड़ गये। फिर बोले–यदि गुरमता के समय बेटी शत्रुजीत सिंह के पुत्र के साथ पहुंच गयी है

तो अब घर पहुंचने वाली होगी या बाउरी वाले दाता हमें खबर भेज देंगे और मन को शीतलता प्रदान करेंगे। वह बहुत ही कोमल हृदय वाले हैं, पवित्र प्रेम का रूप हैं। ईश्वर के नाम में मुग्ध रहते हैं। ईश्वर की भक्ति में लगे रहते हैं। उनको खबर तो भेजनी चाहिए थी। अकाल बुंगे की तरफ से भी खबर आनी चाहिए थी इसलिए विश्वास है कि बेटी नहीं आयी है।

बसन्त– पति जी आप युग–युग जिएं ! सैकड़ों कारण हो जाते हैं, आप पता तो मंगवायें। यह जो अब आश्चर्य पूर्ण बात उठी है जिसने नई चिन्ता उठाई है वह तो किसी ठिकाने लगे।

पति– सत्य वचन ! मैंने तो आपके साथ विचार करने के लिए ऐसा कहा है। सुबह किसी को पंजाब भेजूंगा। रास्ते की कठिनाइयों का क्या समाचार है जान लूं, फिर मैं स्वयं भी जाने के लिए तैयार हूं। अकाल बुंगे के जत्थेदार को मिलूंगा, बाउरी वाले दाता जी से मिलूंगा। जब वे पिछली बार अफगानिस्तान गये थे तो बेटी के लिए मैं स्वयं जाकर मिला था।

इस तरह पति–पत्नी के बीच वार्तालाप होता रहा। बातें करते–करते ही वे सो गये। परन्तु नींद अच्छी तरह से नहीं आयी। बार–बार नींद टूटती रही।

दिन बीतते गये, और बीतते हैं; समय कभी रूका है? दुख हो सुख हो, स्थिरता हो, मन उचाट हो घबरा रहा हो, जो भी हो, दिन बीतते जाते हैं, सो बीतते ही गये। मां कभी घबरा जाती, कभी अरदास करती, कभी स्थिर होती, कभी उच्च भाव में विचरती और कभी चिन्ता निमग्न होती। सतवंत के पिता ने एक विश्वासपात्र व्यक्ति को अकाल बुंगे के जत्थेदार की ओर भेजा, एक अन्य को पटियाले की तरफ भेजा जिससे शायद वहां से कोई सज्जन गुरमता में गया हो और कोई खबर लाया हो, परन्तु अभी तक कहीं से काई लौटकर नहीं आया था।

माता–पुत्री मिलाप

एक पहर रात बीत चुकी है। चन्द्रमा की चांदनी छिटक रही है। जिन पानियों पर पड़ रही है वे प्रकाश के आश्रय चंद्रमा का दर्शन कर रहे खिलखिला कर हंस रहे हैं, जिन रेतों पर पड़ रही है उनके चमकते कण चांद की ओर निहारते हुए झूल कर नयनों में चमक जगा रहे हैं। प्रकृति निश्चल है। सभी सोये हुए हैं। तारे सोये हुए नयनों को देख–देख कर संकेत करते हुए से जगमगा रहे हैं परन्तु सोये हुए नयन सोये ही पड़े हैं, उन्हें कुछ खबर नहीं कि आकाश से कौन प्रकाश की वर्षा कर रहे हैं।

बसन्त कौर के घर का द्वारपट धीरे से किसी ने खटखटाया। सिंह जी तो सो गये थे पर बसन्त कौर अभी जाग रही थी। दीपक टिमटिमा रहा था। बसन्त कौर अपने बिस्तर पर लेटी झरोखों से आ रही चांदनी को देख रही थी। तारों से बात कर रही थी। आवाज सुन चौबारे में से धीरे से बोली–कौन है?

आवाज– जटाओं वाले।

आवाज पहचान कर बसन्त कौर जल्दी–जल्दी नीचे उतरी। ताला खोला, सांकल खोली, बोली–आओ, आपका स्वागत है। परन्तु उसी क्षण उसे याद आ गया कि चौबारे पर बैठने के लिए जगह नहीं है। 'सांकल लगा आइएगा' कहती हुई वह जल्दी जल्दी ऊपर चली गयी जिससे उनके बैठाने के लिए प्रबन्ध कर सके। जल्दी से चारपाई उठाई और संत जी के लिए बिछा दी और थोड़ा हटकर चटाई बिछाकर बैठ गयी। उसने मन में सोचा–कुशल हो, संत जी इस समय क्यों आये हैं। शायद कुशलता की ही खबर लाये हों। शायद मेरी अनहोनी आशाओं पर जो सांप जगा गये थे आज उसी की फुंकार को शांत करने आये हों। इस प्रकार के अनेक विचार बिजली की गति से उसके मस्तिष्क में कौंध गये। इतने में सीढ़ियों पर चढ़ने की आवाज आयी। किन्तु पग धीरे–धीरे रखे जा रहे थे–खड़ाऊं की आवाज भी बहुत धीमी आ रही थी। बसंत कौर ने सोचा–रात होने के कारण संत जी जान बूझकर ही धीरे–धीरे कदम रख रहे होंगे जिससे कि पड़ोस के लोग जाग न जायें। वह यह सोच

ही रही थी कि बेटी सतवंत के बिछोड़े के दृश्य उसकी आंखों के आगे घूमने लग पड़े। उसके नयन आर्द्र हो गये। 'हाय सतवंत' इस विचार ने ही उसके हृदय को झकझोर दिया। इतने में 'भगवे वस्त्रधारी संत जी' आ गये। बसन्त कौर के आर्द्र नयनों ने उनको अन्दर आते हुए देखा। पर संत जी चौकी पर नहीं बैठे। वह तो एकदम बसन्त कौर की गोद में गिरे और कस कर उसे आलिंगन में ले लिया। एक क्षण के लिए बसन्त कौर चौंक उठी—संत जी और फिर इस तरह उनका मेरी गोद में बैठना—यह क्या? परन्तु इससे भी जल्दी गोद में बैठी सूरत के मुंह से आवाज निकली—'अम्मी' और उसने उसे फिर आलिंगन में ले लिया। उसने अम्मी को कस लिया। भागते जाते समय के क्षण के भी अंश में, मां के तड़पते हृदय ने उस मीठे स्पर्श को और उस ममतापूर्ण आवाज को पहचान लिया। और पहचानते ही स्वतः ही उसकी बाहों ने बेटी को अपने अन्दर समेट लिया। एक बेसुधी—सी छा गयी। चारों भुजाओं ने एक दूसरे को कसा हुआ था। हाय प्यार ! सभी पीड़ाओं को हर लेने वाला प्यार ! वाह—वाह ! उस कसाव में दोनों को होश ही नहीं रहा। शक्ति से अधिक कसाव, पर कसाव की पीड़ा नहीं। शरीर और पास—पास हो जाने के इच्छुक ! परन्तु इससे अधिक और पास कैसे हों? पास से पास तो मन होते हैं, वे भी हो गये थे। एक दूसरे में विलीन हो गये थे। प्रेम और ममता के अथाह आकर्षण से मन एक हो गये थे। वे बेसुध थे, अचेत थे। चेतना—चेतना में विलीन हो गयी थी। चेतनाएं अचेत क्यों हैं? चेतना—चेतना से मिलकर आनन्द मग्न हो रही है। शरीर को एक करने का उन्होंने प्रयत्न किया परन्तु दोनों के मन एक हो गये है। उनके मनोरथ पूरे हो गये हैं। मन—मन में लीन है। रंग प्रगाढ़ होता जा रहा है। मां बेटी के प्रेम में और बेटी मां के प्रेम में खो गयी थी। वे इसी तरह खोये रहे। प्रेमी जनो ! यही वह क्षण है जिसे देवता भी प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं—यही "प्यार संगम" है जो सभी प्रकार के अलगाव दूर कर देता है।

भाग्य हो तो खोया हुआ स्व किसी ऊंचे शिखर पर पहुंच मिलता है। हां, मां—बेटी ! हां, बेटी—मां ! तुम इसी तरह खोयी रहो ! जब तक समय आज्ञा दे दोनों इसी तरह एक—दूसरे में खोयी रहो !

'स्वत्व के घुल मिलने' वाली समाधि ने, इस अपने स्वत्व को भूल अपने ही स्वत्व (अपनेपन) में समाहित होने वाली समाधि ने अब एक नया मोड़ लिया। लम्बे–लम्बे सांस आये। मां का हाथ बेटी की पीठ पर फेरा जाया जाने लगा।

पहली आवाज आई– सतवंत !

दूसरी आवाज आयी– अम्मी जी, अम्मी !

फिर से बेसुधी की लहर छा जाती है। बार–बार वह लहर आकर सिर में आ लगती है, फिर कुछ कम होती है, बार–बार आ लगती और शिथिल पड़ती है, पीठ पर हाथ फेरा जाता है, माथा चूमा जाता है और फिर चेतना को कम करती है। अब मां बेटी के मुखड़े को देखती है और उसे फिर गले से लगा लेती है। ऐसे मिलते हुए उसे संशय ने आ घेरा यह सतवंत है या सतवंत का स्वप्न? आंखें तो इस प्यार के नशे में बार–बार मुंद जाती हैं। जब खुलती तो सतवंत को देखती है तब मन कहता कि यह स्वप्न है जो (पहले भी) कई बार आया है। वह फिर पुत्री को आलिंगन में कस लेती है। ज़ोर से कसती है। कसकर आलिंगन में लेती है। किन्तु सोचती है कहीं आज भी यह स्वप्न ही न निकले।

फिर पूछती है– सतवंत तू ही है?

पुत्री– अम्मी जी।

मां– तुम स्वप्न तो नहीं हो?

पुत्री ने फिर उसे कसकर आलिंगन में ले लिया। मां की छाती से उसने सिर को सहलाया। फिर बोली–अम्मी मैं हूं, मैं।

मां बोली– पर हाय ! स्वप्नों ने कई बार मुझे छला है।

वह फिर बेटी को भुजाओं में कसती है। पीठ पर चुटकी भर कर देखती है। सिर के बालों को टटोल कर देखती है। फिर पीठ को हाथ से दबाकर उसे छाती से लगाकर देखती है। अपने हाथ को दांत से काट कर दर्द अनुभव करती है। हां, आज स्वप्न नहीं है। वह होश में आ जाती है। नयन छम–छम बरसते हैं। रोम खड़े जो जाते हैं। हृदय उल्लसित होता है। मीठे–मीठे, गर्म–गर्म ओस के मोतियों जैसे आंसू सतवंत की गालों पर गिर रहे हैं। प्यार का आन्तरिक

समुद्र हिलोरें लेकर बाहर आ रहा है। दोनों प्रियजन एक दूसरे से मिल रहे हैं। अब न तो मां "प्यार–समाधि" में है, और न ही उसे कोई सन्देह है। बेटी को आलिंगन में लेकर सिर पर, पीठ पर हाथ फेरती है, नयनों से आंसू बरस रहे हैं। नयन बार–बार भर आते हैं। वह भुजाओं में उसे फिर कस लेती है। छाती से बेटी को बार–बार लगाकर वह थकती नहीं। वह विह्वल है। मां अपने ही जिगर के टुकड़े का स्पर्श पाकर "स्पर्श–रस" लेकर खुश हो रही है। कलेजे को कुछ होता है। क्या होता है? कौन बताये? बेटी मिल गयी है। मिलन में ही खुशी है। पर यहां इस समय कुछ हो रहा है। क्या हो रहा है? कुछ हो रहा है। मां अपने सिर को कुछ ऊपर उठाती है। बेटी की ठोढ़ी को हाथ से ऊपर उठाती है। बरसते आंसुओं के दर्पण में, बेटी का दर्शन सतरंगी बिंब में करती है। माथ चूमती है। फिर उसे कसकर गले से लगा लेती है। मां के आंसूबिंदू ओस के मोतियों के समान बेटी की ठंडी–ठंडी गालों पर पड़ रहे हैं पर बेटी के आंसूबिंदु उसकी अपनी गोद में ही गिर रहे हैं। "सतवंत ! लो बेटा लो। यह प्यार ! यही प्यार तुझे सैकड़ों मील से खींच लाया है। इसी प्यार से सब मुसीबतें सह ली जाती है। "प्यार–क्षण, आन्तरिक प्रेमानुभूति के क्षण" को भोग रहे हैं। "रस–प्रेमानुभूति", "प्रेम–अनुभव", "प्रेम–रसलीनता" हां यही प्रेम की गंभीरता के भाव हैं। बेटी ! यही तो जीवन है।"

पता नहीं कितना समय बीत गया। अम्मी अभी तृप्त नहीं हुई थी। उसी रंग में मुग्ध बेटी को छाती से अलग करना नहीं चाहती थी। बेटी का मुंह देखने के लिए थोड़ा–सा उसे अलग करके देखती है। फिर छम–छम रो पड़ती है। "मेरी बेटी, अब स्वप्त मत बनना, मेरे जिगर के टुकड़े, अब फिर छाया मत बन जाना !"

गुरुमुख मिलन

दूसरा पहर बीत गया। सिंह जी ने करवट ली। नींद टूट गयी। चन्द्रमा का प्रकाश अन्दर आ रहा था। दीपक बुझ चुका था। सिंह जी को लगा कि जैसे कोई बैठा हुआ है। सोचा, शायद बसन्त कौर बैठकर पाठ कर रही होगी। परन्तु दूसरे ही क्षण उसने देखा कि बसन्त कौर फर्श पर बैठी हुई है। फिर उसकी गोद में भगवे रंग की कोई वस्तु दिखायी दी। गौर से देखा तो भगवे वेश में उसकी गोद में कोई बैठा हुआ नजर आया। तारों की ओर देखकर रात का कुछ अन्दाजा लगाया। फिर घबराकर उधर देखा। सचमुच कोई भगवा रंग के वस्त्रों में गोद में बैठा हुआ है। घर में भगवे रंग के किसी बच्चे के कपड़े नहीं थे। घर में भगवा रंग की कोई चादर तक भी नहीं थी। तो यह कौन है? क्या मेरी आंखें ठीक से खुली नहीं है? शायद थकान के कारण नींद गहरी आ गयी थी। तभी आंखें ठीक तरह से खुल नहीं रही हैं। अभी नींद पूरी नहीं हुई है। परन्तु फिर उसे कुछ आनन्द का अनुभव हुआ। नाम तो सिंह जी के प्राणों में बसता है—नाम का जाप तेज हो गया, "एकु सबदु मेरे प्रानि बसतु है" उसके श्वास—श्वास से नाम का जाप हो रहा है। सिंह अपने नाम के प्रवाह में पहचानने की कोशिश कर रहे हैं। फिर गौर से आंखें खोल कर पत्नी की तरफ देखते हैं। सिंह जी कहने लगे—है तो भगवा वेश में और है भी मेरी प्राणप्रिय की गोद में। इस गोद में कोई बहुत ही नाम का रसिया बैठा हुआ है। क्या यह चमत्कार है? ओह, हृदय पहचान गया। सुगन्ध आ गयी। कहीं वेश बदल कर, लम्बी यात्रा करके मेरी बेटी तो नहीं आ गयी? मेरे जिगर का टुकड़ा ही तो गोद में नहीं बैठा हुआ? मन को और सोचने की जरूरत नहीं रही। सहसा मुंह से आवाज निकली—सतवंत ! और उसी क्षण आवाज आयी—बापू जी...। और अगले ही क्षण जिगर का टुकड़ा जिगर से जाकर लग गया। पिता की प्यारी गोद में बेटी आकर बैठ गयी। पिता की छाती से बेटी ने अपना सिर लगा लिया। पिता का हाथ उसके सिर को सहला रहा था—बेटी जी ! बेटी जी ! पिता की नाम—रस से भरपूर रसना कह रही थी। हां उन्हीं नाम—रंग में रंगे नयनों से ओस की बूंद—सा कोई

मोती गिरता बेटी के शीश के दसम द्वार में गिरकर समा जाता। बेटी का शरीर तरंगित हो रहा था। पिता के प्यार में वह बेसुध–सी हो गयी। छम–छम अमृत वर्षा हो रही थी। वे नाम में मग्न थे। नाम–अभ्यास की सिद्धि का आस्वादन कर रहे थे। सतवंत अचेतन ऐसी अवस्था में मुग्ध थी। कभी वह रस–सागर में डूब जाती, कभी नाम–रस की लहर उसे बहा ले जाती। कभी कलेजे में एक आगमिक आकर्षण की कसक पैदा होती और कभी प्यार में नयनों का पूर्णतया अश्रुवर्षा करना ! 'अहा, हे प्यार–राम (प्रेम रूपी भगवान)! तुम्हारे सागर की अनन्त लहरें नित नवीन ! कौन इन्हें गिने और इनका वर्णन करे? हा, यह तू ही है, तू आ जा, तू हृदय को झंझोड़ दे, सारी देह को सचेत कर दे।' इस समय बेटी प्यारी गोद में, नाम–रस के रसिया की गोद में आनन्दमग्न बैठी है। वह रसमग्न बैठी है। हां, वह मदहोश है, जिस मदहोशी में कलेजा कसक खाता है, लीन होता है, रस में डूबता है। सतवंत कृतज्ञता की ऊंचाइयों पर उड़ान भर रही है। फिर नयन भर आते हैं। फिर नाम के रंग की कोई लहर उठती है–दिल "रसमग्न" हो जाता है। फिर स्वतः ही तरंगित होकर विरह की तरंग और मिलन के रंग में लहरें खाता है। फिर स्वयं स्थिर होकर किसी श्रेष्ठ रंग में मग्न हो जाता है। मां देख रही है। नयन बार–बार भर आते है। हृदय को शीतलता मिल रही है। अब मन कह रहा है–यह स्वप्न नहीं है, प्रत्यक्ष है। फिर तसल्ली करने के लिए अपने आपको चुटकी काट कर देखती है। फिर बेटी के शरीर पर हाथ फेर कर देखती है। फिर उठकर चलकर देखती है। पति जी की चारपाई पर हाथ फेरकर देखती है–चारपाई खाली है। फिर नीचे बैठा देखकर उनके चरणों को हाथ लगाकर देखती है। वह अनुभव करती है कि ये पति के चरण है। पर देखो ! वह किसी श्रेष्ठ रंग में आरूढ़ हैं कि उनके चरणों का स्पर्श बसन्त कौर को अलौकिक आनन्द प्रदान कर तरंगित करता है। वह पहले ही "प्रेम–राज" का झूला झूल रही थी। इस स्पर्श से उसे अपने अन्तर में एक श्रेष्ठ रस की अगम्य लहर अनुभव हुई। वह जानती थी कि उसके पति नाम–रसिया है। कभी–कभी उनके स्पर्श

में उसने यह अलौकिकता देखी भी थी। पर आज वह रस अपने पूरे वेग में था और मूसलाधार बरस रहा था। बसन्त कौर उसी तरह पति के चरणों का स्पर्श लेती, उनके चरणों को पकड़कर ही रह गयी। उसी संग में रंग–मग्न हो गयी। अपने अन्दर नाम के रस में और पति के रंग में स्थिर हो गयी।

प्रियवर ! यह प्रेम–मूर्ति, यह प्यार का दृश्य, यह पवित्र, पावन गुरूमुख के प्रेम का रंग, यह प्रेम के देवता का आराध्य स्थान, इसी तरह लगा रहे। इसी तरह मीठी–मीठी रस–रंग की फौहार पड़ती रहे। नाम का प्रवाह मन्द–मन्द फुहार की तरह चलता रहे। चन्द्रमा झुक–झुक कर झरोखे में से प्रेमी जनों का दर्शन करता रहे। तारे लटक–लटक कर खिड़कियों में से इन प्रेमियों का स्पर्श पाकर टिमटिमाते रहें।

: २७ :

हमने एक रात सतवंत कौर को अपने मां–बाप से मिलते हुए देखा। पहले किसी ने द्वार खटखटाया था और बसन्त कौर के पूछने पर आवाज आयी थी–"जटाओं वाले" किन्तु भगवे वेश में सतवंत कौर ही आयी थी।

असल में बात यह थी कि पंजाब में जगह–जगह मराठे घूम रहे थे। लाहौर पर मराठे अधिकार कर चुके थे। अटक और मुलतान तक के किलों पर उनका अधिकार था परन्तु जगह–जगह सुरक्षित स्थानों पर सिख भी अपने पैर मजबूती से जमा रहा थे। मराठे सिखों के साथ खुलकर लड़ते नहीं थे, परन्तु सिखों और मराठों में मेल भी नहीं था। समय ने ऐसा बुद्धिमान आदमी नहीं दिया था जो मराठों और सिखों को एक करके, मिलकर विदेशी अफगानों से टक्कर लेने के लिए तैयार करवाता। सिख दबते तो नहीं थे परन्तु सावधान थे। हालांकि आदीना बेग से भी मामला ले लिया था और सीमा पर भी धावा बोलकर नज़राना ले आये थे। परन्तु तब भी वे जानते थे कि अभी हमारी शक्ति पूरी नहीं है। अफगानिस्तान से बहुत बड़ी फौज के आने की सूचनाएं भी कानों में पड़ रही थीं। अहमदशाह फिर से आ रहा है यह जानकर ही सिखों ने गुरमते का आयोजन किया था

और उन्होंने इस स्थिति में क्या करना है, इसका निर्णय ले लिया था। अहमदशाह काबुल से चल पड़ा है—यह खबर सुनकर मराठे पंजाब से भागने लगे थे। इस दुविधा में कि कहीं मराठों से सामना न हो जाये या अब्दाली के आने से क्या गुल खिलें, राजपथ पर बसे खन्ना नगर की ओर से सतवंत और अलांबा सिंह के जत्थे का खुल्लमखुल्ला जाना उचित नहीं समझा गया। अलांबा सिंह नया जवान था। उसे किसी सुरक्षित स्थान पर रखकर सिखों ने अस्त—व्यस्त जीवन के लिए तैयार करना आवश्यक था। इसलिए उसे महाराजा पटियाला के सुपुर्द कर दिया गया। जहां उसे बहत्तर जवान और देकर उसे सौ जवानों का जत्थेदार बना दिया गया। वह वहीं रहकर काम—काज सीखने लगा। सतवंत को जटाओं वाले संत जी के साथ भगवे वेश में घर भेजा गया जिससे वह मां—बाप को मिल भी ले और किसी को पता भी न चले क्योंकि यह अनिश्चित था कि अब्दाली के आने से देश का क्या हाल होगा। खन्ना की तलाशी होने की भी पूरी आशंका थी। इसलिए सतवंत भगवे वेश में संतजी के साथ रात को आयी थी। द्वार 'जटाओं वाले' संतजी ने ही खटखटाया था और उन्होंने ही कहा था—'जटाओं वाले' उनको ही यह कहकर कि "दरवाजा बन्द कर आना" बसंत कौर स्वयं उनके बैठने के लिए स्थान बनाने छत पर चढ़ गयी थी। यह चौबारा ड्योढ़ी के ऊपर गली की तरफ है। ड्योढी से अन्दर आंगन में आकर संत जी तो वहीं चारपाई बिछाकर बैठ गये और सतवंत जो संत जी के पीछे छिपकर खड़ी थी, और मां को नजर नहीं आयी थी, भगवे वेश में ही मां के पीछे—पीछे ऊपर आ गयी थी। संत ड्योढ़ी में इसलिए रह गये थे क्योंकि माता—पिता और बेटी के मिलाप के समय वे जानते थे प्रेम का सागर हिलोरें लेगा और वे उसमें विघ्न डालना नहीं चाहते थे।

संत जी तो पौ फटने से पहले ही चले गये थे परन्तु सतवंत गुप्त रूप से लगभग पंद्रह दिन अपने मां—बाप के घर रही। गांव में भी किसी को पता नहीं चला कि इनकी बेटी आ गयी है। इसके बाद वह भी पटियाला चली गयी और अपने भाई के जत्थे में सेवा कार्य में लग गयी।

मराठे तो अब पंजाब को छोड़कर जा चुके थे। अब्बदाली बेरोक–टोक बढ़ता आ रहा था। सिख भी उसकी फौजी ताकत का अन्दाजा लगाकर इधर–उधर हो गये थे। वह शक्ति को एकत्रित करना चाहते थे और इस तरह से लड़ते थे जिससे वे अपनी ताकत को खो न दें। वे प्रत्येक समय के परिवर्तन को अपनी शक्ति को बढ़ाने का कारण बना लेते थे और कभी भूल से भी अपनी शक्ति को नष्ट नहीं करते थे। लाहौर पहुंचकर अब्बदाली ने बिना किसी रोक–टोक के अधिकार कर लिया और करीम दाद खां को हाकिम नियुक्त करके स्वयं दिल्ली की ओर कूच किया।[1] उसे बताया गया कि मराठे तो चले गये हैं और सिख तितर–बितर हो गये हैं। जहां उनका अधिकार था उन स्थानों को भी छोड़ गये हैं। आपके चले जाने के बाद वे फिर सिर उठा लेंगे और किसी के दबाये भी नहीं दबेंगे। वे मराठों से भी नहीं दबे, दुआब का नवाब भी उनसे डरता है। आपके पीछे उन्होंने सरहिंद पर हमला किया था। यह सुनकर अब्दाली ने पांच हजार सैनिक और कुछ तोपें देकर अब्दुल्ला खां को पंजाब की गश्त लगाने के लिए नियुक्त किया जिससे वे जहां भी सिख सिर उठायें उनको कुचल दें।[2] परन्तु सिख अबोध नहीं थे कि अपने आपको इस तरह तबाह होने देते। उनके पैर तो धीरे–धीरे जम रहे थे। उनका जो कुछ भी था, अपने दम पर ही था। दिल्ली की जो थोड़ी बहुत बची–खुची ताकत थी उसे भी अफगानिस्तान नष्ट कर देने पर तुला हुआ था। इन स्थितियों में सिख बहुत बचाकर पैर रख रहे थे। तबाही के समय वे अपने को बचा लेने के दांव–पेंच चलाते थे।

अब्दुला खां, जिसे सिखों से निपटने के लिए नियुक्त किया गया था, वही था जो अब्दाली के साथ उसके पहले आक्रमण के समय काश्मीर गया था। उसने काश्मीर को मुगलों के अधिकार से छीनकर पठानों के अधिकार में सम्मिलित किया। बाद में महाराजा रणजीत सिंह ने ही पठानों से काश्मीर को मुक्त करवाया था। काश्मीर के इतिहास में यह समय बहुत ही दुखदायी रहा था।

---

1. तारीख–ए–लाहोर, कन्हैयालाल।
2. खालसा तवारीख।

अब्दुला खां पंजाब में से घूम निकला, परन्तु उसे सिखों का कोई दल नहीं मिला। गांवों और शहरों में रहने वाले लोग जो अपने काम काज में व्यस्त थे, अब्दाली के मार्ग में रूकावट का कारण नहीं बने। उसने भी उन्हें कष्ट देने की मूर्खता नहीं की।

अब्दाली दिल्ली की ओर लगातार बढ़ता चला जा रहा था। सरहिंद पर उसने पड़ाव डाला। अगला पड़ाव खन्ना पड़ा। घर–घर की तलाशी ली गयी परन्तु सभी हिन्दू–मुसलमानों से उसको यही पता चला कि जिस लड़की को कैद करके काबुल ले जाया गया था वह वापस नहीं लौटी है। दिल्ली पहुंचकर उसने वजीर–अमीरों को, उमरावों को कत्ल करके नजीब खां को वजीर बना आगे बढ़ा।[1] मथुरा में मराठों को हरा वह लूट मचाई कि बड़े–बड़े मन्दिरों के हीरे–जवाहरात और सम्पत्ति लूट ली, असंख्य धन–दौलत लेकर और हिन्दुओं के वैभव को एवं सम्मान को धूल में मिलाकर ही दिल्ली लौटा।[2] वहां से भी जो मिला लेकर तीन महीने में ही मालामाल होकर वह सरहिंद पहुंच गया। यहां जैन खां को नवाब नियुक्त किया।[3] यहां पर कोटला और रायकोट के मुसलमान राजपूतों ने पटियाला के नरेश आला सिंह की अब्दाली से शिकायत की। अब्दाली ने पटियाला राज्य की राजधानी बरनाला की तरफ कुछ सेना भेज दी। महाराजा आला सिंह ने एक ओर तो सारी शक्ति इकट्ठी करके शहर की रखवाली का प्रबन्ध किया और अब्दाली की सेना की गांवों से ही आरम्भित लूटमार और चालाकी से टक्कर लेने का भी प्रबन्ध किया। दूसरी ओर कुछ बुद्धिमान लोगों को बीच बचाव करवाने वाले बनाकर अब्दाली से संधि कर ली। इससे अब्दाली ने आला सिंह को सम्मानित किया और वह उनके राज्य पद को और पक्का कर गया।[4] इस समय पठानों के साथ जो मुठभेड़ सिखों की हुई उसमें अलांबा सिंह ने बड़ी वीरता दिखायी थी। यह लड़ाई शीघ्र

---

1. जकाउल्ला
2. दौलत–ए–दुर्रानीआं।
3. उमदात–उत–तवारीख।
4. महाराजा आला सिंह कृत भाई कर्म सिंह जी।

ही समाप्त हो गयी थी किन्तु घायलों और दुखियों की एक बड़ी संख्या सतवंत कौर और साईं जी (तेज कौर) की सेवा और ध्यान के लिए एकत्र हो गई। इन घायल लोगों में कुछ दुर्रानी भी थे जिनके इलाज का प्रबन्ध भी इन बहादुर सिख स्त्रियों ने किया। इनके मन में यह विचार ही नहीं आया कि वैरियों की सेवा का काम उन्होंने अपने सिर क्यों ले लिया है। संयोग का चमत्कार देखिए कि नवाब असमतुल्ला खां, जिसके घर सतवंत गुलामी की हालत में रही थी–जो फातिमा का घरवाला था–जिसकी जान सतवंत ने पहले काबुल में बचायी थी इन घायलों में ही था। सतवंत ने उसे पहचान लिया था। इसी कारण वह उसके सामने नहीं आ रही थी। उसकी सेवा का काम साईं जी के सुपुर्द किया गया। जिन घायलों को थोड़ी–बहुत चोट लगी थी उन्हें पट्टियां बांधकर तीन–चार दिन में ही सरहिंद पहुंचा दिया गया। अब्दाली ने इस व्यवहार को पटियाला नरेश की मित्रता का प्रमाण समझा और बहुत प्रसन्नता व्यक्त की। सिखों के इस व्यवहार का उसके दिल पर अच्छा प्रभाव पड़ा। बरनाला के राज्य वैद्य और सतवंत कौर जैसी निस्वार्थ सेविकाओं की सेवा से अन्य जख्मी तो ठीक हो गये परन्तु नवाब असमतुल्ला खां की हालत खराब हो गयी। सरहिंद से अब्दाली ने अपने जर्राह (शल्य चिकित्सक) भेजे किन्तु वह स्वस्थ न हो सका। वह वहीं मर गया। उसकी लाश सरहिंद भेज दी गयी। वहीं उसे दफना दिया गया।

जिस समय वैद्य ने बता दिया कि यह बच नहीं सकता और कुछ ही दिन का मेहमान है तो सतवंत उसको मिलने चली गयी और उसी की भाषा में उसने खुलकर उससे वार्तालाप किया। अंत समय में उसको ऐसे सज्जन के–जिसने अपने प्राणों की बाजी लगाकर उसकी जान बचाई थी–दर्शन करना बहुत सुखदायी लगा। सतवंत ने उसे वाहिगुरू के देश के उपदेश दिये तथा अन्य आध्यात्मिक बातें सुनाकर उसकी आत्मा को शांति प्रदान की। वह मृत्यु के समय भगवान के नाम में मस्त हो गया। उसकी यह इच्छा थी कि किसी तरह सतवंत फातिमा से जा मिले जिससे उसके शेष दिन कष्टों में न बीतें। परन्तु यह होना बहुत कठिन था। वह जानता था सतवंत

उस देश को कैद समझती है और फातिमा उसके वतन को छोड़कर यहां आयेगी नहीं। परन्तु फिर भी उसने एक पत्र अपनी पत्नी को लिखा जिसमें उसने उसे अपने अन्तिम प्यार के पश्चात मर जाने के बाद कुछ काम करने के लिए बताये और लिखा कि–अब्दाली ने पंजाब में प्रबन्ध पक्का कर लिया है। आशा है अब पठान राज्य को कोई नहीं हिला सकेगा। इसलिए यहां शान्ति है। यदि उसका (फातिमा का) मन सतवंत के बिना मिले सुखी न रह सके तो वह भारत में चली आये और सरहिंद के पीर[1] के डेरे में आकर ठहरे और वहीं प्रबन्ध करके बीबी सतवंत को मिल ले। यह खत उसने सतवंत के हाथ में दिया और उसके पहले के तथा अब के अहसानों का धन्यवाद देता वह इस संसार से कूच कर गया। असमतुल्ला खां ने मरने से पहले एक पत्र अब्दाली को भी भेजा जिसमें सिखों के द्वारा की गयी सेवा सिखों के नेक सलूक और उनके प्रेमपूर्ण तथा फकीरी जीवन का जिक्र किया और यह विनय की कि वह इनसे सन्धि कर लें। यह एक अल्लाह को मानने वाले हैं और न काफिर हैं और न ही मुशरिक। इनके बारे में आप तक जो खबरें पहुंचती रही हैं वे गलत थीं और उन्हीं के कारण इन फकीरों पर जुल्म होते रहे हैं। अच्छा तो यही है कि मुसलमानों में तथा सिखों में कभी विरोध न हो। जैसे भी हो इनसे संधि कर ली जाये। परन्तु अहमदशाह पठानी राज्य की स्थापना करना चाहता था। वह सिखों को इसलिए मारना चाहता था क्योंकि वे उसके इस उद्देश्य की पूर्ति में बाधक थे।

अहमदशाह ने अब लाहौर की तरफ कूच किया परन्तु सतलुज के पार पहुंचते ही उसके लूट के माल पर रात को छापे पड़ने लग पड़े। सिख सवारों के जत्थे रात को जंगलों से बाहर निकलते तथा विदेशियों द्वारा अपने देश के लूटे गये सामान को छीनकर भाग निकलते। दिन में वे जंगलों में ही छिपे रहते थे। उनको ढूंढना और पकड़ना कठिन था। इस तरह जो माल हाथ लगता उससे वे शस्त्र,

1. अफगानिस्तान के कई अमीरों के परिवारिक पीर (धार्मिक गुरू) यहां (सरहिंद में) हुआ करते थे।

घोड़े तथा युद्ध के लिए आवश्यक सामान खरीदते। यहां तक कि वे अपनी तोपों का निर्माण भी करने लग पड़े थे। बादशाह ने बुलंद खां को पांच हजार की सेना सिखों को पकड़ने के लिए दी परन्तु उसके हाथ सिखों का कोई भी जत्था नहीं आया। अन्त में उसने अपना सम्मान रखने के लिए बहुत से असैनिक सिखों को ही मार दिया। कई गांव लूट लिये तथा कई कामगार और जमीदार सिखों को पकड़ लिया। पांच–दस सिख अगुआ भी उसके हाथ लग गये। उसने उन सभी को लाहौर में अब्दाली के आगे पेश किया जिनमें से कुछ के नाम ही इतिहास की स्मृति में सुरक्षित रह पाये हैं–वे हैं रावन सिंह, केहर सिंह, हाठी सिंह और गिर्झा सिंह। अब्दाली उनके कद, सुडौल शरीर, तथा उन्हें स्थिर और निर्भय देखकर हैरान रह गया। उसने पूछा–आप लोग कौन हैं? हाठी सिंह ने उत्तर दिया–हम सिंह हैं।

अब्दाली– सिंह क्या होता है।

हाठी सिंह–शेर।

अब्दाली– शेर हाथी से लड़ता है। क्या तुम भी हाथी से लड़ सकते हो?

हाठी सिंह– वन में घूमने वाला शेर हाथी को मार देता है, पिंजड़े में पड़ा हुआ नहीं।

बादशाह ने कहा– एक खूनी हाथी लेकर आओ।

हाठी सिंह के बन्धन खोल दिये गये। ढाल और तलवार उसको दी गयी। भगवान की कृपा से उसने बहुत निपुणता से तलवार चलायी और अचानक सूंड पर वार करके उसका अगला हिस्सा एक ही झटके में काट दिया। हाथी चीखता–चिल्लाता भाग गया। दुर्रानी ने एक पठान पहलवान से गिर्झा का द्वन्द्व–युद्ध करवाया। भगवान ने सिंह की भुजाओं को शक्ति प्रदान की। उसने पठान को चारों खाने चित्त गिरा दिया।

अब्दाली ने यह देखकर सभी सिखों को छोड़ दिया। मुसलमानों की ओर देखते हुए अब्दाली ने कहा–कौम में बहुत कम सिख हैं पर दिल्ली और क़ाबुल यदि इन पर काबू न पा सके तो यही सिख राज करेंगे। आप इनको प्रेम द्वारा ही परास्त करो। लाहौर के नवाब को उसने कहा–इनको आप अपना मित्र बना लें और वैर–विरोध की

भावना को दूर करने की कोशिश करें। इनसे संघर्ष करने का अर्थ इन्हें शक्तिशाली बनाना है। अब्दुल्ला खां और बुलंद खां को उसने आदेश दिया कि वे सिखों का पीछा करना छोड़ दें।

अब्दाली अपनी ओर से पैर पक्के करके चला गया। उसके जाते ही सिख फिर जंगलों से बाहर निकल आये और अपने अड्डों को सम्भालने लगे। बीकानेर के राजा के आमन्त्रण पर सभी सिख मालवा में इकट्ठे हुए। फिर से नये जत्थे बनाकर सिख वहां पहुंचे। माझा और मालवा के सभी जत्थेदार इस समय एक जान और एक रंग में इकट्ठा थे। अभी तक जाति–भेद, देश–भेद, आदि की कोई भावना सिखों में नहीं आयी थी।

जब सिख दक्षिणी पंजाब की ओर चले गये तो अलांबा सिंह को गुरू स्थानों की रक्षा के लिए दरबार साहिब भेजा गया। उसके अधीन दो सौ जवान थे। आदेश था कि किसी के साथ लड़ाई करने में पहल मत करना। लाहौर और काबुल के बारे में पूरी जानकारी रखना। खतरा होने पर शीघ्र पंथ को सूचित करना। वे जानते थे कि यदि मैदानों में अब्दाली न हो तो पंजाब उनका है। किसी अन्य का वहां दखल नहीं हो सकता। अब तो वे दिल्ली पर विजय पाने की भी सोच रहे थे। अब्दाली सिखों की वीरता का प्रशंसक तो था परन्तु चाहता वह भी यही था कि या तो सिख उसकी शरण में आ जायें या उनका मटियामेट कर दिया जाये। इसलिए सिख भी चौकस रहते थे। अभी तक वे उसकी ताकत के आगे झुकते नहीं थे बल्कि उन्हें रोष यह चढ़ता था कि कोई किसी के घर आकर क्यों दखल देता है। अब्दाली अपने घर में बसे, हिन्दुस्तान में आकर लूटमार करने का क्या मतलब है? किन्तु वे अपने चारों ओर हिन्दू–मुसलमानों को एक साथ मिलकर देश के सांझे शत्रु का सामना करने के लिए तैयार नहीं देखते थे। इसलिए उनके सिर पर जो कुछ भी आ बनता था, उसे अकेले झेलते थे। देश को सुखी और स्वतन्त्र करना है और अपना राज्य स्थापित करना है–यह मस्ती सिखों के मस्तिष्क में उमड़ती रहती थी।

वे गुरूधामों की रक्षा के लिए चौकस रहना चाहते थे तथा पंजाब के हालात के बारे में भी पूरी जानकारी चाहते थे। इसीलिए अलांबा सिंह अमृतसर में आ गये। जिस जगह को आजकल निहंगों की छावनी कहते हैं, वहीं उन्होंने अपना डेरा लगाया।

सत्संग– मिलाप

ऊपर लिखे गये समाचारों को छः महीने हो गये थे। एक दिन सन्ध्या के समय जब चन्द्रमा उदित हो गया था। सतवंत श्री दरबार साहिब की परिक्रमा में हरि की पौड़ी की दायीं ओर सीढ़ियों के पास बैठी थी। दरबार साहिब में एक जत्था जो यात्रा पर आया था–कीर्तन कर रहा था कि तभी बाउरी साईं जी आ गये और सतवंत के पास ही आकर बैठ गये। सतवंत ने दर्शन करके शीश झुकाया और सम्मान के साथ कुशल–क्षेम पूछी। उन्होंने हाथ से संकेत किया। सतवंत उनके साथ–साथ चल पड़ी। साथ तेजकौर भी गयी जो साथ ही बैठी हुई थी।

बाउरी वाले संत जी उनको अकाल बुंगे के ऊपर ले गये और फिर पिछवाड़े ले गये। वहां एक सिंह के वेश में सिंहनी खड़ी थी और साथ ही एक भुजंगी सिंह भी था। उनके पहुंचते ही वह सिंहनी उठकर एकदम सतवंत के गले से लग गयी और फारसी में बोली–अजीजा अजीजा। आह ! प्यार का दिल की गुफाओं में छिप–छिपकर बैठना और फिर उछल–उछलकर बाहर की ओर आना। सतवंत के कान आवाज को पहचान गये। कोमल तथा कसकर किये गये आलिंगन ने प्यार के बांध तोड़ दिये। सतवंत ने कस लिया। वह अपनी प्यारी फातिमा को आलिंगन में कस रही है जिसने कठिन समय में कभी उसके साथ प्यार किया था। जिसके प्यार के बदले सतवंत उसके घर दीपक जला आयी थी। वही दीपक जो जलने के बाद बुझा नहीं। वहीं नाम की लौ, अन्तरात्मा की लगावट फातिमा को वहां ले आई और किस प्रकार दूरियां हटकर प्रेमी के गले में लग रही हैं। वही असमतुल्ला का आखिरी खत फातिमा के सतवंत के लिए तड़फ रहे दिल को पंख लगाकर उसे

पंजाब ले आया है। उसके आन्तरिक सत्संत–प्रेम ने अपने प्यार के आलम्बन को कैसे ढूंढ़ लिया है? प्रेम ने मन बदला था, मन के वेश, देश, मत, धर्म सभी कुछ बदल दिया। अपनी प्रियतम सतवंत के नक्शे– कदम पर पूर्णतया चलने का संकल्प लिये फातिमा समस्त 'अपने' से संन्यास धारण कर सदा के लिए अपना देश छोड़कर, प्यार के देश में आकर उसके गले से लग गयी है। वह उससे मिली है कि एक हो गयी है। प्यार–आन्तरिक प्यार वाली, विभिन्न मतों की आत्माएं, विभिन्न रीति– रिवाजों में पली आत्माएं कैसे आन्तरिक प्यार से एक हो गयी हैं। फातिमा उसे आलिंगन में कस–कसकर विह्वल हो रही है, नयन छम–छम बरस रहे हैं, कंठ गदगद है। सतवंत अजब तरंगों से उसे कस रही है। जैसे–जैसे मिलन शीतलता व्याप्त होती है, प्यार की तृप्ति होती है। ज्यों–ज्यों प्यार का रंग बढ़ा, त्यों–त्यों प्यार–समाधि प्रगाढ़ हुई। त्यों–त्यों ओंठों में कुछ (मानो) पीया, नयनों ने आन्तरिक आकार्षण ग्रहण किया, सिर को कुछ चढ़ा। ज्यों–ज्यों पवित्र अग्नि का परस्पर स्पर्श हुआ, त्यों–त्यों विस्माद (मस्ती) के रंग चढ़े जिनके चढ़ते ही फातिमा मानो बेसुध हो गई।

वाह–वाह ! ये बहनें नहीं, मां–पुत्री नहीं, रक्त की साझीदार नहीं, सत्संग की प्रेमिकाएं हैं। सत्संग का प्यार है, प्यारों का आकर्षण ही उन पर कहर बरसा रहा है, उन्हें झंझोड़–झंझोड़ कर दिलों में समाता जा रहा है। उनके दिल रस में मग्न होते जा रहे हैं। वे मग्न हैं। जी हां ! सुरत सुरत में समाती जा रही है। यह प्रेम की अचेतनावस्था है। सुरत में मिलकर, उच्च सुरत को प्राप्त कर बेसुरत होना यही है। हां, दोनों बेसुरत हो रही हैं। सुरत पिघल–पिघलकर सुरतों में समा रही है। इसे ही प्रेम में मदहोश होना कहते हैं। यही दोनों का एक होना है। वाह वाह प्यार ! वाह वाह ! उच्च पवित्र उन्मन मनों का मनों में समा जाना ! हां यह मदहोशी है ! पता नहीं अपने आप में कौन थीं या हैं परन्तु अपने–अपनेपन में मन मनों में घुलमिल गये हैं। रंग और रस भर रहा है। आनन्द है, रस है और मदहोशी है। इस प्रेम–मूर्ति पर मैं बलिहारी जाऊं।

मिले रहो, मिले रहो, जो बिछुड़—बिछुड़ कर मिले हो, मिले रहो! इस प्रेम—मूर्ति पर बावरियां वाले गुरूमुख के प्रेमपगे, पवित्र स्नेहसिक्त नेत्र आध्यात्मिक पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं। हां, उनके आकाशी दाता आकाश में खड़े अपनी कृपाओं की मीठी—मीठी फुहार डाल रहे हैं। हां, आकाश और आकाश से परे जगत—पालक अपने आध्यात्मिक प्रेम की रस—वर्षा कर रहे हैं। वह मूर्ति ऐसी ही बनी रहे, हां जी, सत्संग—प्रेम का यह चित्र ऐसा ही खिंचा रहे। सदा दिखती रहे यह मूर्ति, प्रेम की ज्योति की वर्षा करती रहे यह चित्रकारी। प्रेम की सुगंधि इस प्यारे चित्र से सुगन्ध बिखेरती रहे, समय दर समय हमें मग्न करती रहे, मनों को प्रेम के जगाए हुए मनों को, रस मग्न करती रहे। हां, तन, मन, स्वत्व सभी कुछ मग्न करती रहे, स्पर्श देती रहे, प्राण फूंकती रहे और सदा जिये वह चहेता पंथ जिसके चमन में ऐसे फूल खिलते हैं।

........0........